समभाव–समदृष्टि के
सब़क

दिनांक 01 अक्टूबर 2017 - 25 मार्च 2018

एकता का प्रतीक

प्रकाशक
सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
"वसुन्धरा" ग्राम भूपानी–लालपुर रोड फरीदाबाद–121002 (हरियाणा)
ई–मेलः info@satyugdarshantrust.org
website: www.satyugdarshantrust.org
© सर्वाधिकार सुरक्षित सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
ISBN : 978-93-85423-13-0

प्रथम संस्करण
मार्च, 2018

समभाव–समदृष्टि के

सबक़

दिनांक 01 अक्टूबर 2017 - 25 मार्च 2018

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार

★ महामन्त्र★

साडा है सजन राम,
राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है।

उसी को जानो,

मानो और वैसे ही

गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु,
शरीर नहीं है।

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं,

ज्ञान को अपनाओ ।

निमित्त में नहीं,

नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

अनुक्रमणिका

क्रमांक		विवरण	पृष्ठ संख्या
	अक्टूबर 2017		
		कर्मेन्द्रियों के समुचित कार्य-5	
1.	दि: 01 का सबक़	हस्तेन्द्रिय	1
2.	दि: 08 का सबक़	आत्मनिरीक्षण	8
3.	दि: 15 का सबक़	प्रसन्नता-1	18
4.	दि: 22 का सबक़	प्रसन्नता-2	32
5.	दि: 29 का सबक़	प्रसन्नता-3	44
	नवम्बर 2017		
6.	दि: 05 का सबक़	मानसिक संतुलन/असंतुलन	62
7.	दि: 12 का सबक़	काम	74
8.	दि: 19 का सबक़	क्रोध	87
9.	दि: 26 का सबक़	लोभ-1	101
	दिसम्बर 2017		
10.	दि: 04 का सबक़	लोभ-2	114
11.	दि: 10 का सबक़	मोह	132
12.	दि: 17 का सबक़	अहंकार-1	145
13.	दि: 24 का सबक़	अहंकार-2	156
14.	दि: 31 का सबक़	आत्मनिरीक्षण	166
	जनवरी 2018		
15.	दि: 07 का सबक़	निर्विकारिता	176
16.	दि: 14 का सबक़	शुद्धता	187
17.	दि: 21 का सबक़	आत्मशुद्धि	201

अनुक्रमणिका

क्रमांक		विवरण	पृष्ठ संख्या
18.	दिः 28 का सबक़	आत्मज्ञान/आत्मबोध	219
	फरवरी 2018		
19.	दिः 04 का सबक़	आत्मनिरीक्षण	233
20.	दिः 11 का सबक़	धारण/धारणा-1	240
21.	दिः 18 का सबक़	धारण/धारणा-2	258
22.	दिः 25 का सबक़	अभ्यास	271
	मार्च 2018		
23.	दिः 04 का सबक़	वैराग्य	284
24.	दिः 11 का सबक़	अमरता-1	298
25.	दिः 18 का सबक़	अमरता-2	309
26.	दिः 25 का सबक़	आत्मनिरीक्षण	325

दिनाँक 01 अक्टूबर 2017 का सबक़

कर्मेन्द्रियों के समुचित कार्य-5
हस्तेन्द्रिय

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों यदि मात्र इतना ही कर लिया तो आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार हो जाएगा और अपनी वास्तविकता समझ में आ जाएगी। वास्तविकता समझ में आ गई यानि यथार्थ का बोध हो गया तो संसारी भाव स्वभाव हमारे व्यक्तित्व पर अपना दुष्प्रभाव नहीं डाल सकेंगे क्योंकि आत्मीयता अनुरूप भाव-स्वभाव अपना कर हम संकल्प जनित शारीरिक स्वभावों पर फ़तह पाने में सफ़ल हो जाएंगे। इस उपलब्धि के दृष्टिगत सजनों आवागमन के चक्रव्यूह से आजाद होने हेतु यह परम पुरुषार्थ अवश्य दिखाओ और अपना मानव जीवन सफ़ल बनाओ।

सजनों अभी तक हमने जाना कि वह जो किया जाए यानि कार्य को कर्म कहते हैं। काम करने वाले को कर्म कर्त्ता कहते हैं। कर्मों की प्रकृति अनुरूप ही कर्त्ता का भाग्य बनता या बिगड़ता है। कर्म कर्त्ता का कार्य करने के स्थान पर बने रहना और अपना काम करने में चतुर होना आवश्यक होता है क्योंकि कर्मों की प्रकृति अनुरूप ही कर्त्ता का भाग्य बनता या बिगड़ता है। कर्मों की प्रकृति ही पाप या पुण्य कहलाती है और प्रत्येक जीव को जन्म-जन्मांतर के किए हुए पाप-पुण्य के कर्मफल अनुसार तब तक लाख चौरासी यानि भिन्न-भिन्न प्रकार के रूपों को धारना पड़ता है, जब तक वह आत्मिक ज्ञान के प्रयोग द्वारा अपनी कर्मेन्द्रियों के उपयोग में भली-भांति निपुण अर्थात् कर्मनिष्ठ नहीं हो जाता।

सजनों कर्म के इस महत्त्व को देखते हुए प्रत्येक सजन को सुझाव है कि वह अपना हर कर्म ध्यान से करे और कोई भी काम करते हुए, उस कार्य में ही अपने मन को लीन रखे। इस प्रकार अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखते हुए ही कर्मेन्द्रियों से कार्य लेना सुनिश्चित करे।

कर्मेन्द्रियों के समुचित प्रयोग के संदर्भ में सजनों आज हम अध्ययन करेंगे अंतिम कर्मेन्द्रिय, हस्तेन्द्रिय का। आओ इसके विषय में जानते हैं:-

हस्तेन्द्रिय

ग्रहण, त्याग और आदान-प्रदान यह ही इस इन्द्रिय का धर्म है। समस्त हस्त के कर्म जैसे काम करना और चीज़ें पकड़ना इसके अंतर्गत आ जाते हैं। यह आदान-प्रदान, उठाने, खाने

आदि का कार्य स्थूल रूप में इस स्थूलेन्द्रिय यानि लम्बे-लम्बे हाथों द्वारा होता है। हाथ से लिखना, हाथ से भोजन करना या पानी पीना, शरीर की रक्षा व सफ़ाई से रख-रखाव करना, भार उठाना, खेलना, युद्ध में शस्त्र का प्रयोग करना, नाना प्रकार से उनका संचालन करना, पापियों को दंड देना, मशीनादि चलाना, आत्मरक्षा करना, परहित की भावना से दूसरों की सेवा करना, अभिवादन करना, अन्न उपजाना, आदर-सम्मान करना, धन-उपार्जन हेतु भिन्न-भिन्न प्रकार के साधन जुटाना, पालन-पोषण करना, सभी को स्नेह, प्यार और आनंद की अनुभूति कराना इत्यादि कार्य सब ही कर्म आदान-प्रदान में आ जाते हैं। सजनों हस्तेन्द्रिय के इसी महत्त्व को देखते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

अपने रिहायशी व शरीर रूपी मकान को साफ़ सुथरा रखो। हर एक चीज़ घर में तरीके से रखो। हैसियत अनुसार खुराक खाओ। बच्चों की पालना व बुर्जुगों की सेवा ठीक से करो।

स्पष्ट है सजनों इस इन्द्रिय के अभाव में मानव का पालन-पोषण व अच्छी तरह रक्षण नहीं हो सकता। हम कह सकते हैं कि हस्तेन्द्रिय द्वारा ही शरीर में सुन्दरता आती है तथा जगत के समस्त कार्य करने में यह मानव की सहायता करती है।

गाय, भैंस, गधा, घोड़ा सब पकड़ने का काम मुख से करते हैं। पंचनख वाले शेर, चीता, कुत्ता, बिल्ली आदि अगले पंजों से पकड़ने का काम करते हैं। हाथी हाथ का काम अपनी

सूँड से लेता है। मानव योनि में इस इन्द्रिय का अद्भुत विकास हुआ है क्योंकि मानव योनि कर्म और ज्ञान प्रदान योनि है। मानव के हाथ का कौशल सराहनीय है। तभी तो मानव इतनी सुन्दर कलाकृतियाँ व मनमोहक कारीगरी कर लेता है। मानव के हाथों ने ही इस भोगात्मक जगत की रचना की है। गगनचुंबी इमारतें, मशीनरी, बड़े-बड़े कारखाने, मोटर, रेल, हवाई जहाज़ आदि सब इस हाथ की करामात का ही बखान कर रहे हैं।

बुद्धि में जो विचार आए उन्हें लेना, समझना और लिपिबद्ध करना भी इन्हीं हाथों का काम है। कागज़ पर जब उभार कर अक्षर बनाए जाते हैं तो अंधा व्यक्ति उन पर उँगली रखकर हाथ द्वारा ही पढ़ लेता है। इस प्रकार संसार के सब व्यवहार, व्यापार, क्रियाक्लाप हाथ से ही होते हैं। हाथों को कर्मों का प्रतीक भी माना जाता है तभी तो अपना हाथ जगन्नाथ की कहावत बनी है।

हाथों का समुचित प्रयोगः-

हाथों का प्रयोग हाथ जोड़कर सर्वव्यापक भगवान को साक्षी मानकर सबके अभिवादन के लिए करना चाहिए। इन्हीं हाथों को जोड़कर ईश प्रार्थना यानि विनती करो। विनम्रता से हाथ जोड़कर अपनी गलती की क्षमायाचना करो। संयमपूर्वक परस्पर हाथ से हाथ मिलाते हुए अपनी सामूहिक शक्तियों को एकीकृत कर सत कार्यों में लगाने का संकल्प लो अर्थात् जन कल्याण की भावना से एकता के सूत्र में बंधने के लिए दृढ़ निश्चयी हो जाओ। हाथों के हमेशा सच्चे यानि ईमानदार बने रहो अर्थात् इन हाथों से कदापि चोरी न करो।

इन हाथों से हमेशा गिरते हुओं को उठाओ अर्थात् दीन-दुखियों, निर्बलों और विकलांगों की सेवा व सहायता करो।

ईश्वर ने हाथ दिए हैं परिश्रम करने के लिए, इसीलिए कभी पराश्रित और अकर्मण्य मत बनो। पुरुषार्थ के बल पर अपने हाथों के सही उपयोग द्वारा अपना हर कार्य स्वयं सिद्ध करो। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

पुरुषार्थ सजनों यत्न करो, ओन्हां इक सवाल समझाया है।
अनेक सवाल छुड़ाये के ओ नगर निवासियो,
महाबीर जी पर उपकार दिखाया है।

सभी चराचर जीवों में समरूप भगवान है। अतः इन हाथों से कदापि किसी पर प्रहार मत करो। हाथ उठाने का अर्थ है मारना अर्थात् हिंसा। यह मानव धर्म के प्रतिकूल है। इसीलिए न तो क्रोधवश होकर निहत्थे, निर्दोष सजनों, औरतों व बच्चों के ऊपर, न ही शोकाकुल स्थिति में अपने ऊपर हाथ उठाओ।

अपने हाथ कभी किसी के आगे माँगने के लिए न पसारो। हाथों का प्रयोग हमेशा दूसरों को देने के लिए ही करो। यह सम्पन्नता व उदारता की निशानी है। हाथ पर हाथ रख कर मत बैठो अर्थात् निराश हो व्यर्थ समय न गँवाओ। कभी भी किसी शारीरिक गुरु के आगे हाथ मत जोड़ो क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

विचार ईश्वर आप नूं मान, अविचार ईश्वर इक जान।

जब ऐसा कर लिया तो

किस अग्गों सजनों ओ हथ जोड़े,
किस अग्गों टेके वह मत्था
किस अग्गों टेके वह मत्था।।
जेहड़ा है नाम ओ शब्द है गुरु,
किस अग्गों रखे ओ भेटां, किस अग्गों रखे भेटां।।

हाथों से सब कार्यव्यवहार करते हुए अपने चित्त को ईश्वर की तरफ रखो अर्थात् हथ कार वल, चित्त यार वल रखो। इस उद्देश्य में सफलता प्राप्ति हेतु ही सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:

कार्यव्यवहार करते हुए हमारा ख़्याल महाराज जी के साथ जुड़ा रहे।

यानि

कार्यव्यवहार करते हुए निगाह उस चमत्कार के साथ जुड़ी रहे।

कहते हैं कि हाथों की लकीरों पर ही मनुष्य का भाग्य आश्रित है। अतः इसे उज्ज्वल बनाने के लिए सच्चे कर्मयोगी बनो और धर्मसंगत, निष्काम भाव से अपना फ़र्ज़ अदा हँस कर करो। सावधान रहो कभी इन हाथों द्वारा दुराचार न हो और न ही किसी का अनिष्ट हो। इनसे हमेशा सुकर्म और परोपकार ही करो। सदा याद रखो कि ऐसा करने से ही दुर्भाग्य, सौभाग्य में बदल सकता है क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

उत्तम दा सीस ताज सुकर्म,
उत्तम दा अटल राज सुकर्म।।
सुकर्मों में उत्तम जकड़ता है, दुःख-कलेश कष्ट में आवे।
तो भी सुकर्म वह छोड़ता नहीं,
सच वर्ते, सच वर्त-वर्तावे, सुकर्मां नूं धारण कर,
फिर किसी से ओ डरता नहीं।

अंततः सजनों जानो कि कलियुग कर्म युग है। इस जीवन का सुख-दुःख, सफ़लता और विफलता कर्मों को, धर्म या अधर्म अनुसार करने का, परिणाम हैं। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि हम हर कर्म केवल अपने कर्त्तव्यों का पालन करने हेतु सिद्धि और असिद्धि, मान-अपमान में समानभाव रख कर, निष्कामता से करें। ऐसा करने से हम परिणाम की अभिलाषा त्याग कर, स्वभावतः काम करने वाले अर्थात् कर्मशील बनते हैं और साहस तथा दृढ़ता के साथ अपने कार्य में प्रवृत्त रहते हैं। यह होता है अपनी कर्मेन्द्रियों के सदुपयोग द्वारा, कर्म करते हुए भी अकर्त्ता भाव में स्थित रहना और कर्मफल से मुक्त हो जाना। याद रखो ऐसा सुनिश्चित करने वाले सद्बुद्धि उदार इंसान पर सदा परमेश्वर का हाथ बना रहता है।

सबकी जानकारी हेतु सजनों आगामी सप्ताह अब तक हमने जो भी ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों के विषय में पढ़ा-समझा व अपनाया है, उस संदर्भ में अपना आत्मनिरीक्षण करेंगे।

आत्मनिरीक्षण
(ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों के विषय में)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत कक्षाओं के दौरान सजनों हमने ईश्वर में विश्वास रखते हुए, सदाचार का चलन अपना, सर्वोच्च आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक मूल्यों पर ईमानदारी से खरा उतर, निश्चित रूप से इसी जीवन में परमपद प्राप्त करने योग्य बनने हेतु, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के विषयों के ग्रहण के प्रति, इन्द्रिय निग्रह की महत्ता को जाना व समझा। यह अपने आप में अपने वास्तविक गुणों के प्रयोग द्वारा अंतर्निहित बुराई पर विजय प्राप्त कर नेकी की राह पर चलते हुए एक परोपकारी इंसान की तरह अपना व जगत का कल्याण करने के लिए

तत्पर होने की बात है। जानो कि परोपकार करना आदि अच्छाई कहलाता है और हर प्राणी अपनी यथार्थ पहचान इसी अच्छाई द्वारा ही बनाता है। हम भी सत्य धर्म के निष्काम रास्ते पर सुदृढ़ता से बने रह, परोपकार प्रवृत्ति में ढल कर निष्काम भाव से दूसरों की भलाई या मदद करते हुए यश कीर्ति को प्राप्त कर सकें, उसके लिए जानो कि सत्य से जब अच्छाई के सारे रास्ते खुल जाते हैं तो ही मनुष्य सत्यवादी बनता है। ऐसा सत्यवादी ही बुराई पर अच्छाई का झंडा फहराने की सामर्थ्य रख सकता है और इस प्रकार अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकता है। आओ अब इसी विषय में अपना आत्मनिरीक्षण करते हैं:-

1. क्या हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर, मन-चित्त को हर परिस्थिति में शांत व ख़्याल को अफुर रखने में समर्थ हो पा रहे हैं? अन्य शब्दों में क्या हम पंच तत्त्वों, मन और इन्द्रियों की विकारी सत्ता से स्वतन्त्र रह, इस जगत में नित्य भाव अनुसार, निर्विकारी जीवनयापन करने की योग्यता हासिल कर पा रहे हैं?

2. क्या हम 'ब्रह्म विद्या' द्वारा, सांसारिक विषय बंधनों में बाँधने वाली व हमें अधिकाधिक भौतिक सुखों की उपलब्धियों तक सीमित रखने वाली 'अविद्या' का नाश कर, सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने का यत्न कर पा रहे हैं?

3. क्या हम अपने मन के दासत्व से इन्द्रियों को मुक्त करा, उन्हें उनके निज धर्म में स्थिर करने की यानि कान को कान के धर्म में, आँखों को आँखों के धर्म में, जिह्वा, नाक, त्वचा

आदि को उनके धर्म में स्थिर कर, अंतर्मुखी हो दिव्यता को धारण कर पा रहे हैं और अपने आपको इस लौकिक प्रपंचना से मुक्त रख अपने अलौकिक स्वरूप में स्थित होने की सामर्थ्य जुटा पा रहे हैं?

4. क्या हम विभिन्न रूप, रंग, रेखा से अलंकृत जो दैहिक प्राणी है उन की ओर से अपनी दृष्टि (ध्यान) हटाकर जो इस देह का अधिष्ठात्रा परमात्मा है यानि देहेश्वर है उसके साथ जोड़ पा रहे हो? आशय यह है कि सच्चेपातशाह जी के इस कथन के अनुसार 'जहाँ ख़्याल वहाँ दृष्टि', क्या समस्त कार्यव्यवहार करते हुए हमारा ख़्याल और दृष्टि प्रभु की तरफ स्थिर रह पाता है यानि अन्दर ख़्याल अक्षर वल व दृष्टि महाराज जी नाल जुड़ी रह पाती है?

5. क्या हम शब्द विचार पकड़ कर विराट् पर खड़े हो पा रहे हैं यानि विचार के साथ सबमें भगवान निगाह आ रहा है और इस तरह सर्वभगवानमय दृष्टि हो पा रही है? कहने का तात्पर्य यह है कि क्या हमारी अन्दर की वृत्ति दर्शन में और बाहर की वृत्ति एकरस राम रूप-कृष्ण रूप में सबको देख पा रही है?

6. क्या हम सजन अपने-पराए, अमीर-गरीब, तेरे-मेरे जैसे संकीर्ण भाव के स्तर से ऊपर उठकर समस्त विश्व को अपना ही कुटुम्ब मानते हुए उनके साथ समभाव से विचर पा रहे हैं और तदनुकूल समदृष्टि अर्थात् सबको एक नज़र से देखते हुए उनके साथ सजनतापूर्ण व्यवहार कर पा रहे हैं?

7. क्या हम अपने कानों का सदुपयोग करने हेतु इन द्वारा

सदैव जो प्रणव ध्वनि यानि अनाहत नाद हमारे अन्दर हर पल गुँजायमान है, उसको निरंतर सुनने का प्रयास कर पा रहे हैं और इस सक्षमता को ग्रहण करने हेतु भीतरी मौन साध पा रहे हैं?

8. क्या हमारा ख़्याल, मूलमन्त्र जो आद् अक्षर है, अफुरता से उसके अजपा जाप से हृदय में गुंजायमान सार्थक ध्वनि के साथ जुड़ा रह, उस दिव्य धुर की वाणी के भाव या धर्म को ग्रहण करते हुए उसे अर्थसहित यथा जीवन व्यवहार के दौरान प्रयोग करने की कला सीख पा रहा है?

9. क्या हम बताई युक्ति अनुसार सत्-शास्त्र का विचार कर, कर्णेन्द्रिय से केवल अच्छी व सार्थक यानि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित विचारयुक्त उपयोगी और हितकारी बातें ही सुन, उन्हीं का वर्त-वर्ताव करने में सक्षम हो पा रहे हैं या फिर अभी भी यानि इतना कुछ सुनने-समझने के पश्चात् भी, संसारी बातों को सुनने के कनरस में फँस, बुरी व अश्लील, असंगत और अप्रासंगिक यानि निन्दासूचक बातें ही कर रहे हैं?

10. क्या हम अपने स्थूल व सूक्ष्म शरीर की स्वस्थता हेतु अपनी रसनेन्द्रिय यानि जिह्वा को वश में रखते हुए रसास्वादन का गुलाम बनने के स्थान पर, आत्मसंयम द्वारा उचित यानि सात्विक आहार-विहार अपना पा रहे हैं?

11. क्या हम अपने व्यक्तित्व को उज्ज्वल बनाने हेतु अपने स्वभावों व आचरण को पवित्र रखते हुए, चहुं ओर उनकी सुगंधि फैलाने में सक्षम हो पा रहे हैं या नहीं?

12. क्या हम अपनी वाणी अर्थात् वाक् शक्ति जिसे सरस्वती भी कहते हैं, को कंचन रखते हुए सदैव आवश्यकता अनुसार सीमित, सन्तुलित, सत्य, सार्थक, प्रिय, हितकारी और मधुर वचन बोलने की आदत विकसित कर पा रहे हैं यानि जी-जी का, सजनता युक्त व्यवहार कर पा रहे हैं?

13. क्या हम किसी शब्द के यथार्थ अर्थ के विपरीत, कुछ कहकर किसी को अपनी बातचीत के जाल व आडम्बर में फँसा कर धोखा तो नहीं देते अर्थात् चतुराई का भाव तो नहीं अपनाते? कहने का अभिप्राय यह है कि कहीं हम ऐसी बात तो नहीं करते जिससे बात बढ़े व जिससे बात के दो अर्थ निकले ?

14. कहीं हम परस्पर बातचीत के समय या किसी के सम्मुख अपना अभिप्राय प्रकट करते समय, वचन की कठोरता, गाली-गलौच युक्त अपशब्दों असत्य-भाषण व निंदा-चुगली का प्रयोग तो नहीं करते या फिर बीती हुई बातों का अर्थात् भूतकाल का रोना तो नहीं रोते?

15. क्या हम कुछ भी बोलने से पूर्व विवेक से उसकी जाँचना-तोलना करते हैं व वाणी से सभी का सम्मान करते हैं?

16. क्या हम संयम, तप, त्याग और ध्यानाभ्यास द्वारा काम पर फ़तह पाने वाले निष्काम साधक बन पा रहे हैं? अन्य शब्दों में क्या हम अपनी अप्राकृतिक, अस्वाभाविक काम वासना का दमन कर रति राग से परे रह अपने अन्दर वैराग्य की भावना प्रबल कर पा रहे हैं?

17. क्या हम सच्चेपातशाह जी के वचनानुसार परस्पर कदम से कदम मिलाते हुए अनुशासित मिल्ट्री की एकरस चाल चलते हुए बेखौफ़ा-बेखतरा सद्‌मार्ग यानि उन्नति-पथ पर अग्रसर हो पा रहे हैं या अभी भी मनमत के बहकावे में आकर कुरस्ते पर ही चल रहे हैं?

18. कहीं हम मानव धर्म के प्रतिकूल इन हाथों का प्रयोग किसी निहत्थे, निर्दोष, औरतों व बच्चों के ऊपर प्रहार करने हेतु तो नहीं करते।

19. क्या अपना हाथ जगन्नाथ इस कहावत के अनुसार हम सच्चे पुरुषार्थी व कर्मठ बन अपने बलबूते पर समस्त कार्य सिद्ध करने में जुटे हुए हैं। कहने का आशय यह है कि कहीं आलस्य व दुश्चिंता ने हमको घेर कर अकर्मण्य तो नहीं बना दिया और इसी कारण हम इन हाथों से किसी का भला करने के स्थान पर चोरी इत्यादि तो नहीं करते?

सजनों हम समझते हैं कि अपने मंगल हेतु हर सजन ने अपने यथार्थ अवस्था से परिचित होने के लिए यह आत्मनिरीक्षण की क्रिया समुचित ढंग से की होगी और पाई गई कमियों को यादगिरी में रखते हुए आत्मसंयम द्वारा एक श्रेष्ठ मानव बनने का संकल्प ले लिया होगा। याद रखो कि आत्मा का स्वभाव सुख-दुःख, हानि-लाभ, जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-गमी, मान-अपमान, अमीरी-गरीबी के प्रभावों से अछूते रहना है, इसलिए तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है कि 'विचार ईश्वर आप नूं मान'। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य की सच्ची प्रकृति ईश्वरत्व है। हमें आत्मसुधार हेतु इसी मूल स्वभाव पर स्थिरता से बने रह एक

चरित्रवान इंसान की तरह इस जगत में निरासक्त व निष्पाप रहते हुए इस मानव चोले की अनमोलता व सर्वोत्कृष्टता को सिद्ध करना है और परमात्म स्वरूप होकर इस जगत में विचरना है। सजनों याद रखो ऐसा सुनिश्चित करने पर ही हम अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्तियों में प्रसन्नता के वातावरण का निर्माण कर सकेंगे और समभाव-समदृष्टि के सबक़ अनुसार परस्पर सजनता के व्यवहार में स्थिर बने रह बुलंद आवाज में कह सकते हैंः-

समभाव दी होसवे फतह, समभाव दी होसवे फतह,
समभाव दी होसवे फतह।

सजनों आप सब ऐसा करने में कामयाब हो सको इस हेतु ध्यान से सुनो कि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ आपको अपने जीवन लक्ष्य के प्रति सचेत करते हुए क्या कह रहा हैः-

(सजन श्री शहनशाह हनुमान के मुख के शब्द)

शब्दः

दुनियां ते आके एकता पकड़ो इन्सान।
फिर तुसां ईश्वर नूं पाओ महान।।

(सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी दे मुख दी बोलियां)

ओ इन्सान इस दुनियां ते तूं की करन आया।
ओ ज़रा सानूं दस तो सही,
ओ ज़रा सानूं दस तो सही, तूं की करन आया।।

ओ इन्सान तैनुं किस बनाया ओ इन्सान तैनुं किस बनाया।
ओ ज़रा सानूं दस तो सही,
ओ ज़रा सानूं दस तो सही, तूं की करन आया।।

ओ किसने कीता है तैनुं पैदा किसने तैनुं है उपजाया।
ओ ज़रा सानूं दस तो सही,
ओ ज़रा सानूं दस तो सही, तूं की करन आया।।

(अब इन्सान उत्तर देता है)

जिवें सुनार गहना बनाये,
नग पालश नाल सराफ सजाये।
हुण मैं दस्सां ही क्या,
हुण मैं दस्सां ही क्या, मैं की करन आया।।

ईश्वर स्वरूप मैं आया, ईश्वर ने मैनूं है सजाया।
हुण मैं दस्सां ही क्या,
हुण मैं दस्सां ही क्या, मैं की करन आया।।

कर्मानुसार माता दे गर्भ विच आया,
कारियां दे कारीगर ने इन्सान बनाया।
उस ईश्वर ने अंग अंग मेरा है सजाया।
हुण मैं दस्सां ही क्या, हुण मैं दस्सां ही क्या,
मैं की करन आया।।

(श्री साजन जी कह रहे हैं)

ईश्वर सिर ताज जे खालस सोना,
ईश्वर सिर ताज जे खालस सोना।
गर तुम हो ईश्वर खालस सोना,
फिर खोट तेरे बदन में क्यों निगाह आया।
ओ ज़रा सानूं दस तो सही,
ओ ज़रा सानूं दस तो सही, तूं की करन आया।।

है खोट तेरे बदन में तां पकड़ तूं आप नूं।
शहनशाह हनुमान जी तैनूं पकड़ना सिखाया,
एहो तरीका तुहानूं समझाया।
ओ ज़रा सानूं दस तो सही, ओ ज़रा सानूं दस तो सही,
तूं की करन आया।।

(अब इन्सान उत्तर देता है)

मैं खालस सोना आया,
ईश्वर नूं भुला के आल्हा जन्म गंवाया।
खोट भर लिया इस बदन में,
बेसमझी दे विच आके जीवन सफल न बनाया।
हुण मैं दस्सां ही क्या, हुण मैं दस्सां ही क्या,
मैं की करन आया।।

(अब श्री साजन जी कह रहे हैं)

शब्द:

हनुमान जी दे चरणों में आ,
इन्सान बुद्धि अपनी ठिकाने ला।
उन्हां दे वचनां दी पालना करके ईश्वर नूं रिझाई जा।।
इस जगत ते तूं इन्सान जो आया,
उस ईश्वर नूं तैं क्यों नहीं पाया।

आल्हा जन्म तैनूं अनमोल मिलया, वृथा ऐवें गंवाया।।
उस ईश्वर दे मिलने दी तैनूं है चाह,
इष्ट देव अपने नूं तूं मना।
समभाव समदृष्टि दा रस्ता देवन तैनुं बता,
फिर तूं उस ईश्वर परम पिता नूं पा।।

जद इन्सान नूं समझ है कि मैं वस्त हां पराई,
फिर वी इन्सान नूं समझ न आई।
फिर वी करे अजब अजीब कमाई,
फिर वी ईश्वर उस परम पिता दे मिलने दी समझ न आई।।
ओ इन्सानों उस ईश्वर नूं तुसां मिलना चाहवो,
बुद्धि अपनी टिकाणे लावो।
उस परम पिता नूं पावो, उस परम पिता नूं पावो।।

सजनों कितने सुन्दर ढंग से इस कीर्तन के माध्यम से कलियुगी इंसानों को सतवस्तु में आने की युक्ति बताई गई है। निःसंदेह इस युक्ति को प्रवान करने से बुद्धि टिकाणे आ जाएगी और स्वतः ही कलियुगी भाव स्वभाव छूट जाएंगे व सतयुगी भाव-स्वभावों को धारण करना सहज हो जाएगा। फिर समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार परस्पर सजन भाव का व्यवहार करते हुए एकता व एक अवस्था में बने रहना कोई कठिन कार्य नहीं रहेगा।

सबकी जानकारी हेतु अपने मन व इन्द्रियों को वश में रखते हुए, परमपद जैसे महान उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु अन्दरुनी व बैहरुनी वृत्तियों में प्रसन्नता के वातावरण का निर्माण कैसे करना है और इससे हमें क्या लाभ प्राप्त होने वाला है, इस विषय में हम आगामी सप्ताह जानकारी प्राप्त करेंगे।

दिनाँक 15 अक्टूबर 2017 का सबक़

प्रसन्नता-1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों इन्द्रिय विषयों का अध्ययन करने के उपरांत हमने जाना कि इस संसार में सबसे बड़ा कार्य है इच्छाओं का शमन करना अर्थात् संकल्प रहित होना जिसके लिए आवश्यकता है इन्द्रिय निग्रह की। इन्द्रियों की प्रवृत्ति विषयों की ओर न हो, यही अवस्था परिशमन की है जिसके लिए आवश्यकता है अपने आप को जानने की व पहचानने की कि मैं यथार्थ में कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, क्या करने आया हूँ और इस कारण शरीर को धारण करने के उपरांत, किस बात का विचार एवं ध्यान रखते हुए मुझे अपने जीवन का परम प्रयोजन सिद्ध करना है?

कहने का आशय यह है कि जब अंतःस्थित परमेश्वर पर आस्था रखते हुए, निरंतर अभ्यास, वैराग्य और जागरुकता के साथ, आत्म यथार्थ (आत्मा) की खोज की जाती है तो इंसान सहज ही आत्मज्ञान के प्रकाश में, तटस्थ और साक्षी भाव से मार्ग अवरोधक इच्छाओं को पढ़ते हुए, उनकी व्यर्थता व निरर्थकता का बोध कर, मानसिक रूप पर उनसे मुक्ति पाने का प्रयास करता है। इस प्रयास के अंतर्गत, वह उन इच्छाओं की प्रकृति, गति और नियति को जानता है तथा उनकी निस्सारता पर विचार करते हुए, उन्हें सहलाने, पोषणे और आहुति देकर प्रज्वलित करने यानि पूरा करने की बजाय, दुत्कारते हुए, मन के क्षितिज से बाहर निकाल फैंकता है। इस तरह वह उन इच्छाओं के कारण, अपने मन में पनपे दोषों, विकारों, उपद्रवों और स्वार्थपरता आदि का शमन कर, अपने अंतःकरण व भाव-स्वभावों का शोधन करता है और राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह, अहंकार जैसे शत्रुओं का नाश कर, संकल्प कुसंगी पर विजय प्राप्त कर लेता है और कह उठता हैः-

शुकर होया ए रोग निकलिया है,
सारी उमर खुशी विच गुजारी।
आये ब्रह्मचारी आये गदाधारी,
आये ब्रह्मचारी आये गदाधारी।

निःसंदेह सजनों आरंभ में इच्छाएँ अनंत होती है परन्तु अंततोगत्वा एक परमात्म प्राप्ति की इच्छा रह जाती है और आत्मबोध होने पर जब यह इच्छा भी शमित यानि विलय हो जाती है तब बंधनमान जीव स्वतन्त्र हो जाता है और उसे

पूर्ण शांति व अखंड संतोष प्राप्त होता है। इस प्रकार सजनों इस महान उपलब्धि को प्राप्त कर जो कामनाओं से रहित हो, आत्मेश्वर में स्थित हो जाता है, उसका फिर कभी पतन नहीं होता अपितु वह तो ब्रह्म नाल ब्रह्म हो, चित्त की अखंड प्रसन्नता को प्राप्त कर, सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप में लीन हो जाता है यानि अपने सच्चे घर में स्थित हो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार कह उठता है:-

सच्चे घर दे अन्दर जाऊँ ओय,
ओथे लख लख खुशियां मनाऊं ओय।
जगे जोत दूसरी वस्तु न कोई ओय,
ओथे जोत ही जोत नज़र आई ओय।
ओथे जोत ही जोत नज़र आई ओय,
जैंदी त्रिलोकी दे विच रौशनाई ओय।

इसलिए सजनों कहा गया है प्रसन्नता अर्थात् निर्मलता अध्यात्मप्रसाद है। इस प्रसाद को प्राप्त करने पर बुद्धि निर्मल हो तुरंत स्थिर हो जाती है और अविद्यादि से रहित हो, सच्चाई को धारण करने वाली होती है तथा उस बुद्धि में भ्रान्ति व विपर्यय--ज्ञान यानि किंचित् मात्र भी विपरीत जगतीय ज्ञान नहीं होता। इस तरह नश्वर जगत का यथार्थ बोध होने पर बुद्धि संयोग-वियोग, रोग-सोग, खुशी-गमी से उबर आत्मस्वरूप में स्थित हो जाती है। इससे सजनों स्पष्ट होता है कि प्रसन्नता एक कुदरती न्यामत है जो सौभाग्यशालियों को ही प्राप्त होती है।

इस संदर्भ में सजनों हम सब यह भी जानते हैं कि हर मानव जीवन में प्रसन्नता को पसंद करता है और प्रसन्न रहना

चाहता है इसलिए अपने समग्र प्रयास द्वारा, वह हर हाल में, दुःख को टाल कर प्रसन्नता को प्राप्त करना चाहता है। यहाँ विडम्बना की बात तो यह है कि जिस प्रसन्नता को वह हर कीमत पर पाना चाहता है, उसकी महत्ता को समझते हुए भी वह व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक परिस्थितियों के वशीभूत हो दुःखी हो जाता है यानि चाह कर भी आजीवन प्रसन्न नहीं रह पाता, आखिर ऐसा क्यों?

सजनों यदि इस क्यों का उत्तर हम तलाशें, तो हमें ज्ञात होगा कि प्रसन्नता की राह में सबसे बड़ी बाधा है कि मनुष्य अत्याधिक आशा लगा बैठता है। इसी कारण वह जीवन के वास्तविक आनंद से अनभिज्ञ हो, भौतिक पदार्थों की आशा लगा उनकी उपलब्धि में ही, अपनी प्रसन्नता को तलाशने लग जाता है। ऐसे में आप ही बताओ कि भला उसको सच्चा सुख कैसे मिल सकता है? निःसंदेह महत्त्वाकाँक्षाओं के दलदल में घिरे व भौतिक पदार्थों की उपलब्धि में रत, विकारग्रस्त इंसान के लिए, यह आशा-निराशा, सफ़लता-असफ़लता, चिंता-व्याकुलता, तनाव-अवसाद, संयोग-वियोग आदि का दुःखमय दुष्चक्र तोड़कर, सहजता व सरलता से इस प्रसन्नता को प्राप्त कर पाना सहज नहीं हो पाता। यही कारण है कि तनावपूर्ण व्यस्त दिनचर्या के कारण प्रसन्नता एक कृत्रिम प्रक्रिया बन गई है। हँसती मुस्कुराती जीवनचर्या स्वस्थ जीवन का मूलभूत आधार है यह जानते हुए भी अधिकतर इंसान प्रसन्न रहना भूल गए हैं। माथे की विषाद रेखाएँ, तनी हुई भृकुटियाँ और गंभीर ग़मगीन चेहरा इसका साक्षात् उदाहरण है। ऐसा इसलिए भी होता है क्योंकि महत्त्वाकांक्षाएँ जब तक समाप्त नहीं होती तब तक

मन-मस्तिष्क को शांति उपलब्ध नहीं हो पाती। परिणामतः प्रसन्नता को प्राप्त करना दुष्कर हो जाता है। अतः याद रखो यदि प्रसन्नता को पाना चाहते हो तो आशा-तृष्णा को छोड़कर, जीवन के वास्तविक यानि सच्चे आनंद के अर्थ को समझो और इस हेतु दैनिक दिनचर्या में प्रत्येक कार्यव्यवहार प्रसन्नचित्तता से करने की आदत डालो तथा इस प्रकार अपने घर-परिवार व समाज में खुशहाली ले आओ। इस सन्दर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

आशा तजो तृष्णा तजो, भैणां दिल तो तजो अभिमान।
इको रूप पछान लवो, बली पूरण कर देसन काम।।

सजनों उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि प्रसन्नता कोई ऐसी चीज़ नहीं जो किसी दूसरे पर आश्रित हो अपितु यह तो स्वयं पर ही निर्भर करती है। यदि हमारे अंदर भरपूर संतोष है और हमारा मन तुष्ट है तो न केवल स्वयं हँसते-मुस्कुराते रहना हमारी प्रकृति में सम्मिलित हो सकता है, अपितु दूसरों को भी हँसते हुए देखना हमारी फ़ितरत बन सकता है। जीवन में प्रसन्नता के इसी अद्वितीय महत्त्व को समझते हुए आओ सजनों सविस्तार प्रसन्नता के विषय में जानते हैंः-

सजनों प्रसन्नता शब्द का अर्थ है प्रसन्न होने की अवस्था या भाव, पवित्रता, स्वच्छता, निर्मलता, प्रफुल्लता, संतोष, तुष्टि, हर्ष, आनन्द, कृपा आदि। प्रायः खुशी, मोद, उल्लास, आनन्द आदि प्रसन्नता के पर्यायवाची के रूप में इस्तेमाल होते हैं परन्तु इनमें सूक्ष्म अंतर होता है। खुशी भौतिक धरातल पर व्यक्त होती है जैसे कि बच्चा खिलौना पाकर खुश होता है और किलकारी मारता है। जीवन में वास्तविक

ख़ुशी प्राप्त करने हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

धर्म ते चलीं अधर्म न करीं, खुशी विच उमर बिता।
नी सुरति बली जी दा ध्यान लगा।।

मोद प्रायः मानसिक होता है। उल्लास मन-तन की पूर्ण प्रसन्नता का द्योतक शब्द है, पर आनन्द दुःख-सुख से परे आध्यात्मिक स्तर की यानि प्रबलतर कोटि की प्रसन्नता है। याद रखो प्रेय यानि सांसारिक विषयों की प्राप्ति से प्रसन्नता और श्रेय यानि शुभ और शुद्ध आचरण से आनन्द प्राप्त होता है। अतः आनन्द की प्राप्ति हेतु सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार:-

सब कुछ महाराज नूं सौंप के, भैणां हो जावो आनन्द।
शरणी आवो महाबीर जी दी, पूरण परमानन्द।।

प्रसन्नता इंसान के मन की वह अवस्था होती है जिससे भावों में निर्मलता पनपती है व उसे पूर्ण संतोष प्राप्त रहता है। प्रसन्नता से मानव मन उल्लासित रहता है। व्यक्ति के मानसबोध की प्रकृति के अनुरूप ही आलम्बन उसे न्यून या अधिक प्रसन्नता प्रदान करते हैं। व्यक्ति का मानसिक स्तर जितना उच्चतर होता है, उतने ही उच्चतर आलम्बन से वह प्रसन्न होता है। छोटी-मोटी खुशी ऐसे व्यक्ति को प्रसन्न नहीं कर सकती। इन्द्रियजन्य सुख का प्रभाव मनुष्य पर जितना कम और अस्थायी होने लगता है, त्यों-त्यों वह उच्चतर भावों की ओर अग्रसर होने लगता है। ऐसी अवस्था में सच्चा एवं सात्विक आनन्द ही उसे प्रसन्नता प्रदान करता है। इस

अवस्था को प्राप्त होने के उपरांत सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सुरत कह उठती हैः-

सांवरे सांवरिया सिंगार है तुम्हारा, दिल लै गया हमारा।
देख देख कैसी आ रही प्रसन्नता ओ सांवरे सांवरिया।।

सजनों आलम्बन तीन प्रकार के होते हैंः सात्विक, राजसी एवं तामसी। आलम्बन भेद से प्रसन्नता भी तीन प्रकार की होती है। उच्चतर भावों की ओर अग्रसर व्यक्ति निरन्तर सात्विक आनन्द की खोज में रहता है इसलिए परोपकार, सेवा, त्याग आदि में आनन्द प्राप्त करता है। उसकी अहंता की भावना भी क्रमशः घटती जाती है। इस कारण वह घृणा, द्वेष, वैर, शत्रुता आदि नकारात्मक मूल्यों से दूर होकर, सर्वत्र ऐक्यभाव और प्रेम का प्रसार करता है और उसी में प्रसन्न रहता है।

प्रसन्नता मन की सन्तुष्टि, इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट की मुक्ति से उत्पन्न मानसिक संचारी भाव भी है। ग़रीब धनवान का, कमज़ोर बलवान का, भक्त भगवान का संबल पाकर जो विश्राम पाता है, वह भी प्रसन्नता है। शारीरिक या मानसिक भूख, इन्द्रिय सुख, विषय भोग की प्राप्ति से भी सामान्य लोग प्रसन्न हो जाते हैं। अतः पेट के स्तर पर, मन के स्तर पर और आत्मा के स्तर पर जीने वाले व्यक्तियों की प्रसन्नता तामसी, राजसी और सात्विक होती है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रसन्नता मानसिक भावों के स्तर पर निर्भर करती है। मन में प्रसन्नता के उत्पन्न होने पर तद्नुकूल कायिक चेष्टाएँ भी प्रकट होती हैं यथा मुस्कुराना, हँसना, बदन का लाल होना, रोमांच, पुलक आदि अर्थात् प्रसन्नता पहले मानसिक, तदुपरान्त भौतिक होती है।

त्याग के द्वारा भी प्रसन्नता की उपलब्धि होती है। त्याग से जो प्रसन्नता मिलती है, निःसंदेह वह अद्‌भुत होती है। सामान्य लोग रोग से मुक्ति, ऋण से मुक्ति, पेचिश से मुक्ति, शत्रु से मुक्ति पाने पर प्रसन्न होते हैं। स्पष्ट है प्रसन्नता लौकिक और आनन्द आध्यात्मिक मनःस्थिति है।

याद रखो निष्काम सजन पुरुष सदैव प्रसन्न रहते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि भक्ति, ज्ञान, समर्पण द्वारा जब चित्त पर पड़ा हुआ अज्ञान यानि मोह-माया का आवरण हट जाता है, तब व्यक्ति को अपने वास्तविक आनन्दस्वरूप का दर्शन होता है। यह आनन्द या प्रसन्नता की स्थिति है। अन्य शब्दों में पवित्र सात्विक वृत्ति पर आधारित मनःस्थिति के पारदर्शी व शान्त होने पर व्यक्ति को सत् से भरपूर चित्त में आनन्द स्वरूप का बोध होता है। ऐसे निष्काम कर्मयोगी व स्थितप्रज्ञ लोग जीवन-मरण, लाभ-हानि, जय-पराजय में समरस रहते हैं तथा हर तरह की परिस्थिति में प्रसन्न रहते हैं। इस आधार पर विश्वास, आस्था, धैर्य, सन्तोष, निर्वेद, निग्रह, निर्लोभ, निरोगता, स्वावलम्बन, प्रेम, स्वतन्त्रता व त्याग प्रसन्नता के उपकारक तत्व हैं। हम कह सकते हैं कि अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में समान रहना प्रसन्नता की कसौटी है। आशय यह है कि व्यक्ति द्वारा प्रतिकूल स्थितियों में अपना धैर्य न खोना तथा लाभ-हानि की चिन्ता न करना उसकी स्थिर प्रसन्नता का द्योतक होता है।

सजनों मन प्रसन्न होने से तन भी प्रसन्न हो जाता है परन्तु इन दोनों के प्रसन्न होने पर आत्मा प्रसन्न हो जाए, यह आवश्यक नहीं क्योंकि तन-मन की प्रसन्नता का आलम्बन इन्द्रियजन्य

सुख होता है जिससे आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं होता। किसी अपराध बोध से अथवा मिथ्या आरोप या कलंक के कारण आत्मा जब बोझिल होती है तो तन-मन के सुख उसे प्रसन्नता प्रदान करने में सफल नहीं होते। जब मन में हताशा और निराशा डेरा जमाये रखती है तो अनेक प्रकार के सुख उसे प्रसन्न नहीं कर पाते। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तन-मन एवं आत्मा के सामान्य, स्वस्थ और सुखी होने पर ही व्यक्ति की प्रसन्नता निर्भर होती है। अतः सजनों:-

होके प्रसन्न चरणां विच राहवे,
जिवें कमल फुल दा सूरज नाल जोड़।
जय सियाराम जय जय सियाराम,
जय सियाराम जय जय सियाराम।।

आजकल की भागदौड़ वाली दुनियाँ में अधिकतर इंसान मानसिक रोगी होते हैं। ऐसे अप्रसन्न (दुःखी) व्यक्ति कुछ करना नहीं चाहते क्योंकि उनका मन निराश रहता है। मन निराश होने पर शरीर भी रोगी हो जाता है क्योंकि ऐसे निराश, क्रुद्ध, चिन्ताग्रस्त, आवेशित मन से खाया गया भोजन स्वास्थ्यकर न होकर विष बन जाता है। ऐसे रोगियों के लिए प्रसन्नता वरदान है क्योंकि प्रसन्नता जीवन में नवीन उत्साह भरती है। इसके अधीन हुआ मनुष्य कठिन से कठिन कार्य भी कर लेता है। याद रखो पैसे से, शोहरत से, ऐश्वर्य से कभी भी मनुष्य को वह प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती जो वास्तव में महान उद्देश्य की प्राप्ति में निहित होती है। अतः प्रसन्नता और शोक को मन की विभिन्न स्थितियाँ समझते हुए मन को वश में रखो और इस तरह निष्काम कर्म करने वाले योगी बन, चिरस्थाई आनन्द को प्राप्त करने की चेष्टा करो।

अंततः इस चिरस्थाई आनन्द को प्राप्त करने हेतु सजनों जान लो कि इंसान को अपने अन्दर आनन्द का अनुभव तभी होता है जब उसे आध्यात्मिक ताप (अर्थात् वह दुःख जो मन, आत्मा और देश इत्यादि को पीड़ा दे जैसे शोक, मोह, ज्वर आदि) से मुक्ति मिल जाती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

ताप लथा रघुनाथ मिले, दासी होई प्रसन्न।
रोग सारे मिट गये, मिल गये सूरज चन्द।।

ऐसा होने पर इंसान आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर, उसमें लीन होने का सुख प्राप्त कर, अपने नित्य शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वभाव पर बने रह, ब्रह्म का अंश विशेष आत्मा होने का सत्य जान जाता है। इस सत्य का बोध होने के पश्चात् वह, कर्मों का कर्त्ता व फलों का भोक्ता बनने की भूल कर, जगतीय पदार्थों में बंधनमान नहीं होता। यह सदा संतोषमय बने रह प्रसन्नचित्तता से सही मायने में स्वावलंबी होकर जीवन जीने की बात होती है। याद रखो ऐसा पराक्रमी व्यक्ति ही परोपकार यानि दूसरों की भलाई के लिए ख़ुद को दुःख या विपत्ति में डाल उनका हितकारी सिद्ध होता है और आत्मोन्नति द्वारा आत्मोद्धार कर सकता है। अतैव सजनों :

इंसान हो इंसानी दिखाओ,
संकल्प का झुखना छोड़ प्रसन्नता में आओ।
हाँ प्रसन्नचित्त रहते हुए,
प्रसन्नता के ही गीत गाओ।
इस प्रकार प्रसन्नता के प्रतीक बन,

ईश्वर संग प्रीत बढ़ाओ।
फिर जीवन में जो भी पाना चाहते हो,
उसी के मार्गदर्शन में रह जी भर के पाओ।
और एक संतोषी इंसान की तरह,
इतने धीर व वीर हो जाओ,
ताकि जो करने आए हो इस जगत में,
वह शुभ कार्य इसी जन्म में ही सिद्ध कर पाओ।।

अंततः ईश्वर कहते हैं कि हे इन्सान ! सदा प्रसन्नचित्त बने रहने के लिए मुझे ही सबमें देखो और जगत से आज़ाद रह समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, सबके प्रति एक भाव में बने रहो। ऐसा करने से सुन्दर और आकर्षक तो लगोगे ही साथ ही तनावमुक्त भी रहोगे यानि हर हाल में आपकी मनोदशा ठीक रहेगी और आप सकारात्मक बने रह युवावस्था में सुदृढ़ बने रह सतवस्तु में प्रवेश कर जाओगे। यह कार्य सहजता से सजनों कैसे सिद्ध हो सकेगा इस हेतु ध्यान से सुनोः-

(सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी के मुख के शब्द)

जिवें प्रसन्न राहवे ओ मेरा साजना,
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना।
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना नी ओ।।

हृदय में राहवे एहो उमंग,
हृदय में राहवे एहो उमंग।
के साजन नूं प्रसन्न रखना,
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना नी ओ।।

साजन एक हर अन्दर विशेष है,
साजन एक हर अन्दर विशेष है।
साजन रैहंदा ओ सारे ब्रह्माण्ड,
के साजन नूं प्रसन्न रखना।
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना नी ओ।।

शब्द:-

श्री शहनशाह हनुमान जी,
दयालु श्री रामचन्द्र महाराज रैहंदे हैन साडे पास।
साजन प्रभु जी दी गोदी में सज रिहा शक्ति लक्ष्मी दे साथ।
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना ओ साजन नूं प्रसन्न रखना नी ओ।।

शब्द:-

साजन प्रसन्न सजनों किवें न राहवे,
प्रसन्नता विच ओ किवें न आवे।
श्री शहनशाह हनुमान दयालु श्री रामचन्द्र जी
रैहंदे ओन्हां दे पास।।
प्रभु जी दी गोदी में सज रिहा शक्ति लक्ष्मी है साथ।
फिर साजन प्रसन्न किवें न राहवे,
प्रसन्नता विच ओ किवें न आवे।
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना ओ,
साजन नूं प्रसन्न रखना नी ओ।।

(श्री साजन जी कह रहे हैं)

जिवें प्रसन्न राहवे दाता श्री शहनशाह।
उस दाते नूं प्रसन्न रखना, ओ दाते नूं प्रसन्न रखना नी ओ।।

(सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी कह रहे हैं)

साजन जी ने दुनियां वल्लों मुख ओ मोड़ लिया।
साडे वल साजन जी ने मुख ओ जोड़ लिया।।
असां साजन ते रैहंदे हां प्रसन्न,
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना।
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना नी ओ।।
मन मन्दिर बिन सूरजों ओ जगदा।
हर अन्दर साजन मेरा ओ सजदा।।
सज रिहा सूरज चन्द, ओ साजन नूं प्रसन्न रखना।
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना नी ओ।।
आद अन्त साजन दा प्रकाश है,
गगन मण्डल सब जनों में अजपा ही जाप है।
ओन्हां दा रूप रेखा नहीं कोई रंग,
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना।
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना नी ओ।।
गगनमण्डल प्रकाश रिहा मेरा ओ साजना।

प्रकाश रिहा कुल दुनियां अन्दर
प्रकाश रिहा सूरज चांद सितारे।
जैंदा रूप रेखा नहीं कोई रंग,
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना।
ओ साजन नूं प्रसन्न रखना नी ओ।।

ध्वनिः

ओही ईश्वर ओही परमात्मा।
ओही चमक रिहा मेरा साजना।।

अंततः सजनो हम तो यही कहेंगे कि झुखते-रोते हुए जीवन

का बहुत समय व्यर्थ गँवा दिया परन्तु अब तो प्रसन्नचित्तता से जीवन यापन करने की युक्ति को आत्मसात् कर अपने अन्दर ऐसा परिवर्तन ला कर दिखाओ कि झुखना-रोना जड़ से ही समाप्त हो जाए और ए विध आप अपनी विवेक शक्ति को सक्रिय रखते हुए सत्य के पारखी बन सत्-वादी बन जाओ। सजनों सतवस्तु में आने के लिए ऐसा पराक्रम दिखाना आवश्यक है। अतः हिम्मत दिखाओ, हिम्मत दिखाओ और हिम्मत दिखा कर अपना जीवन बनाओ। सबकी जानकारी हेतु आगामी सप्ताह हम आनन्द के विषय में आगे बातचीत करेंगे।

प्रसन्नता-2
(आनन्द)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों गत सप्ताह हमने जाना कि प्रसन्नता अनुकूलता है, आंतरिक खुशी है, संतोष यानि तुष्टि है, स्वच्छता यानि निर्मलता है व सुस्पष्टता की अभिव्यक्ति है। इसी के द्वारा हृदय स्वच्छ व वृत्ति, स्मृति व बुद्धि निर्मल रह सकती है और यथार्थतः यह आत्म-बोध बना रह सकता है कि 'मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, क्या करने आया हूँ और मेरा सच्चा घर कौन सा है?' इस तरह जगत का प्रपंच ऐसे मानव को वास्तविक स्वभावों से भटका नहीं सकता और हृदय-पटल पर स्पष्टतः सत्य उजागर रहता है जिससे अन्दर-बाहर

प्रसन्नता का वातावरण पनपता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सृष्टि के रचना क्रम के मूल में प्रसन्नता ही कारण है क्योंकि प्रसन्नता ही वह पहिया है, जो प्रकृति के रथ को खींचता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो हर विषम परिस्थिति को भी अपने अनुकूल बना लेता है यानि हर हाल में जिसका संकल्प स्वच्छ व दृष्टिकोण सकारात्मक बना रहता है वह ही अपनी हैसियत में संतुष्ट बना रह सदा प्रसन्नचित्त रह सकता है। सच्चे अर्थों में ऐसे सजन के ही अंतःकरण की विशुद्धता बिना किसी बनावट के, उसके शुद्ध आचार-विचार व व्यवहार द्वारा स्पष्टता से परिलक्षित हो सकती है। ऐसा सजन ही अनुकूल व प्रतिकूल दोनों परिस्थितियों में समचित्त बना रह सदा हर्षवन्द रह सकता है और सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार कह सकता हैः-

हर संग तुम्हारे नाल ओ साजन हर्षवन्द हो चलियो।
हनुमान जी प्रबन्ध करेंगे, सीस चरणां ते धरियो।।

कहने का आशय यह है कि हर्षवन्द होकर परमेश्वर के प्रति अटूट विश्वास रखते हुए आगे बढ़ो क्योंकि ऐसे ही सजन की मुखाकृति से निरंतर प्रसन्नता झलक सकती है। निःसंदेह सजनों प्रसन्नता के इस महत्त्व को दर्शाने के लिए ही सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें संदेश दे रहा है कि संकल्प को सजन और संगी बनाओ और युगों से चले आ रहे झुखने-रोने के स्वभाव से निजात पा, संतोष के सवाल पर फतह पाओ। निःसंदेह इस आदेश को प्रवान करने से ही हम सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर धीरता से बने रह सकते हैं और प्रसन्नचित्तता से परोपकार कमाते हुए वास्तविक आनन्द

का अनुभव कर सकते हैं। इस विषय में आओ सजनों अब आगे जानते हैं कि आनन्द क्या है? इस विषय में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

सत् चित्त आनन्द स्वरूप मेरा,
ओजी सत् हरे सत् सत् हरे।।
ओ३म् हरी ओ३म् ओ३म् ओ३म् हरे,
ओ३म् हरी ओ३म् ओ३म् ओ३म् हरे।।
श्री राम हरे सुखधाम हरे, निष्काम हरे, विश्राम हरे।।

अर्थात् आनन्द, प्रसन्नता या खुशी की वह चरम अवस्था है जो ब्रह्म की तीन प्रधान विभूतियों यथा सत्-चित्त-आनंद में से एक है। आनन्द का शाब्दिक अर्थ है, वस्तु, देश और काल के आच्छादन से रहित अखंड सुख। ऐसे अखण्ड सुख से फिर कदाचित् दुःख नहीं निकलता। इसलिए इसे मोक्ष प्राप्ति का शाश्वत सुख यानि आध्यात्मिक प्रसन्नता भी कहते हैं। आनन्द दिव्य, शाश्वत व अखंड सुख प्राप्ति का द्योतक होता है। इसलिए सजनों मन में होने वाली ऐसी अनुकूल तथा प्रिय अनुभूति को जो अभीष्ट तथा सुखद परिस्थितियों में होती है तथा जिसमें अभाव, कष्ट, चिन्ता आदि का नामोनिशान नहीं होता, उसे आनन्द कहते हैं। आनन्द मन का वह भाव भी है, जो किसी प्रिय या अभीष्ट वस्तु के प्राप्त होने पर या कोई अच्छा और शुभ कार्य होने पर होता है। आनन्द सात्विकता एवं शुद्धता से उत्पन्न होता है इसलिए इसके द्वारा अन्तःकरण निर्मल हो जाता है और आचार-विचार व व्यवहार सत्ययुक्त हो जाता है। चूंकि सजनों यह आत्मा और परमात्मा के संयोग से उत्पन्न होता है इसलिए

इसे सबके शुभ का हेतु माना जाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

हर जगह प्रकाश मेरा,
ओ कोना कोना डाली डाली हर वस्तु विच वास मेरा।
जेहड़ा हर स्वास नाम जपे मेरा,
ओन्हुं आनन्द दिखावन वाला हां।।

अर्थात् अगर अखण्ड आनन्द प्राप्त करने की इच्छा है तो दिल से हर श्वास ईश्वर का नाम जपो और अपने यथार्थ आत्मिक स्वरूप में बने रहो।

आनन्द आत्मा का स्वभाव है यानि यह मनुष्य की स्वाभाविक एवं वास्तविक दशा है जिसके दो प्रमुख आयाम/आधार हैं, अद्वैत एवं अभय। जब तक द्वैत यानि दो का भेदभाव व भ्रम रहता है, तब तक भय बना रहता है। अद्वैत यानि समभाव से, सर्व पदार्थ ब्रह्ममय होने की अनुभूति होने पर, अभय की प्राप्ति होती है, जो आनन्द का कारक है। इस प्रकार आनन्द अभयत्व है यानि भय रहित होकर परमेश्वर के साथ एकाकार हो जाना आनन्द का लक्षण है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि आनन्द की उत्पत्ति 'सामरस्य' से होती है। दो विषम पदार्थों के मध्य जब समरसता का भाव प्रतिष्ठित होता है, तब आत्मा-परमात्मा का द्वैत मिट जाता है और समता अमृत-तुल्य बनकर आनन्द की सृष्टि करती है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

ओ३म् आनन्दम, ओ३म् आनन्दम,
ओ३म् आनन्दम ओ३म्।

हे दुःख भंजन, हे दुःख भंजन, हे दुःख भंजन ओ३म्।
सर्वव्यापी ओ३म्, सर्वव्यापी ओ३म्,
ओ३म् आनन्दम, ओ३म् आनन्दम,
ओ३म् आनन्दम ओ३म्।
हे दुःख भंजन, हे दुःख भंजन,
हे दुःख भंजन ओ३म्।

अर्थात् जो मूल-मन्त्र आद अक्षर है, उसी शब्द के ग्रहण द्वारा नित्य आनन्द का अनुभव कर सकते हो।

आओ आनन्द के विषय में अब आगे जानेः-

जान लो कि आनन्द नित्य है, इसका अभाव नहीं होता यानि सदा वर्तमान रहता है। इसलिए कहा जाता है कि जागरण, स्वप्न एवं निद्रा प्रत्येक अवस्था में अपरोक्ष रूप से आनन्द विद्यमान रहता है परन्तु आत्मज्ञान के न रहने से इसका ज्ञान नहीं होता। इस आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि आनन्द अपरोक्ष अनुभव है, वैषयिक ज्ञान यानि विषय सम्बन्धी नहीं। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

आद् अन्त ओ है आनन्द,
रूप रेखा ओहदा नहीं कोई रंग।

आनन्द की अनिवार्य एवं अन्यतम शर्त है, सत्यज्ञान प्राप्ति द्वारा अन्तःकरण से विकारों का उन्मूलन यानि मन का सदा-सर्वदा भय रहित, शोक रहित हो जाना। याद रखो समभाव नजरों में कर, सजन-भाव के परस्पर वर्त-वर्ताव के द्वारा

जिसके अन्तःकरण से समस्त विकार नष्ट हो चुके हैं और जिसका मन संकल्प रहित होकर शून्य हो गया है, वह आत्मज्ञानी अपने विशुद्धतम रूप में आनन्दमय हो जाता है। इस तरह आनन्द की स्थिति में पहुँचने के लिए सत्यज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ संयम, अनुशासन एवं शुद्धाचरण आवश्यक है क्योंकि इनके द्वारा अज्ञान एवं तद्जनित दुःखों से मुक्ति प्राप्त होती है। परिणामतः आनन्द की सृष्टि होती है। हमारी भावनाओं के मध्य सन्तुलन स्थापित होता है। मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य उन्नत होता है। सुरक्षा का भाव बढ़ता है और आत्मविश्वास पैदा होता है। इस तरह हीनता एवं याचना से मुक्ति मिलती है। इन तमाम उपलब्धियों के दृष्टिगत सजनों सत्य, ज्ञान एवं आनन्द को जीवन के लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता है जिसका आशय यह है कि सत्य का ज्ञान प्राप्त करके चित्त में आनन्दानुभूति होती है। अतः इस उत्तम स्थिति तक पहुँचने के लिये सजनों आत्मनियन्त्रण द्वारा अंतर्निहित अवगुणों व दोषों को दूर कर, सदाचरण अपनाओ और सत्य आत्मज्ञान प्राप्ति करने में जुट जाओ क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

मन मिटया ते होया है आनन्द मालका,
तेरी ज्योति हिम कुल जहान मालका।

याद रखो सजनों, आनन्द के रास्ते में माया व सांसरिकता व्यवधान उत्पन्न करती है। इस मायाजाल से मुक्ति केवल 'विद्या' से प्राप्त होती है। विद्या अपरा (लौकिक या पदार्थ विद्या) और परा (परमार्थ का ज्ञान कराने वाली विद्या) दो

रूपों में है। दोनों विद्याओं को ग्रहण करना शिक्षा है। शिक्षा द्वारा ही अज्ञान एवं उससे प्राप्त दुःखों को दूर करने का उपाय समझ में आता है और आनन्द अनुभूति होती है। याद रखो जो जीव इस शिक्षा को ग्रहण करता है, वह ब्रह्म को जान लेता है और परम आनन्द को प्राप्त कर आजीवन स्वस्थ यानि एक अवस्था में बना रहता है। इस प्रकार आनन्द की उपलब्धि ही मोक्ष है जिसको प्राप्त करने के उपरांत सुरत कह उठती हैः-

हो गई बख़्शीश उस दयालु बक्षंद दी, हो गई बख़्शीश।
हो गई असीस उस आनन्द कंद दी, आनन्द कंद दी।।

सजनों यहाँ सुख और आनन्द में अंतर स्पष्ट करना भी हम आवश्यक समझते हैं ताकि कहीं सुख प्राप्ति में उलझा हुआ इंसान जीवन के वास्तविक आनन्द से वंचित न रह जाए। इस संदर्भ में जानो सुख 'सातिशय (बहुत ज्यादा) सुख' है और आनन्द 'निरतिशय (परम व सबसे बढ़कर) सुख' हैं। सुख परिवर्तनशील, अस्थिर और क्षणभंगुर है जबकि आनन्द नित्य और स्थिर है। सुख-दुःख का एक द्वन्द्व है। आनन्द इस द्वन्द्व से मुक्त है। वह द्वन्द्वानुभूति न होकर शाश्वत अनुभूति है। सुख को आनन्द लेश या 'आनन्द की अल्प मात्रा' कहा जाता है, जबकि इसकी तुलना में आनन्द को आनन्दघन की संज्ञा दी जाती है। सुख खरीदा जा सकता है, आनन्द खरीदने-बेचने की परिधि से बाहर है। सुख का सम्बन्ध शरीर-इन्द्रियों से है और आनन्द का आत्मा से। सुख विषय है, आनन्द अविषय है। सुख लौकिक है, आनन्द अलौकिक है। सुख आनन्द पर निर्भर है, आनन्द स्वयं

आत्म-निर्भर है। सुख प्रेय यानि सांसारिक विषयों की प्राप्ति है और आनन्द श्रेय यानि कल्याण है। अभ्युदय (उन्नति) सुख का क्षेत्र है और निःश्रेयस (मुक्ति) आनन्द का। सुख का सत्वगुण से विरोध हो सकता है आनन्द का नहीं। हमारी आनन्द विषयक धारणा अलौकिक है, इन्द्रिय एवं शरीर सुखों से परे है। आनन्द सुख का चैतन्य रूप है, अपरिमित आनन्द का सागर है और निर्विशेष सुख यानि परमात्मा का स्वरूप है। याद रखो सामरस्य की स्थापना के बिना सत्-चित्त-आनन्द की उपलब्धि सम्भव नहीं है। अतः इस आनन्द को प्राप्त करने हेतु सजनों:-

कलुकालड़े दा संग छोड़ के ते,
अपना आप लवो पछान सजनों।
सत् चित्त आनन्द स्वरूप आप दा,
हुण इस नूं लवो पछाण सजनों।।

स्पष्ट है सजनों आनन्द एक भाव है, जो शोकरहित एवं रागजनित वासनाओं से मुक्त होने पर अनुभूत किया जाता है। यह मन तरंगायित होने वाली एक भावधारा है। जैसे विद्युतधारा क्षण में कमरे को प्रकाशित कर देती है, ठीक वैसे ही आनन्दरूपी भावधारा व्यक्ति को तनावमुक्त करके प्रसन्न एवं आनन्दित बना देती है। बत्ती बुझा देने पर जैसे कमरे में अन्धेरा फैल जाता है, उसी प्रकार दूसरे ही क्षण किसी दुर्घटना अथवा दुःखद समाचार के कारण हृदय व्यथित हो जाता है, मन खिन्न एवं उदास हो जाता है तथा आनन्द तिरोहित हो जाता है। इस प्रकार आनन्द की प्राप्ति हेतु इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया में समन्वय होना आवश्यक माना गया है।

संक्षेपतः सजनों याद रखो जब सभी ओर से खुशी हो, मन प्रसन्न हो, तन तनावमुक्त हो, हृदय आह्लादित हो, तभी आनन्द की अनुभूति होती है। एक आनन्द ही आनन्द परिपूर्ण है। आनन्द के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आनन्द से ही विश्व उद्‌भावित होता है यानि आनन्द से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, इस आनन्द (ब्रह्म) के अंश मात्र के आश्रय से सब प्राणी जीवित रहते हैं और अंत में मरने के बाद आनन्द में ही समाविष्ट होते हैं। इसलिए जगत के समस्त पदार्थों का कारण, आनन्द एवं लय आनन्द माना गया है। इसीलिए विश्व के समस्त प्राणी अनन्तकाल से आनन्द के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।

आनन्द ही एकमात्र और परम-मूल्य है। नव सृजन की प्रेरणा, क्रिया, लक्ष्य सभी कुछ आनन्द है। आनन्द सृष्टि का परम गुप्त तत्त्व है और इसी को प्राप्त कर त्रिकालदर्शी हो सकते हो। जीवन का यथार्थ आनन्द ही है। यह आनन्द दो प्रकार का होता है - लौकिक आनन्द एवं अलौकिक आनन्द। जहाँ तक व्यक्ति के उद्धार का प्रश्न है, उसका सम्बन्ध अलौकिक आनन्द से है। यह सच्चा आनन्द मानव परोपकार प्रवृत्ति द्वारा दूसरों को आनन्दित (सुखी) करके ही प्राप्त कर सकता है। याद रखो दूसरों की सेवा करना अपने लिए ही सुख का स्त्रोत निर्माण करने जैसा है, क्योंकि उसमें व्यक्ति को स्थाई आनन्द प्राप्त होता है। आनन्द एक चारित्रिक गुण है, जिसके कारण सारे कष्ट, अभाव एवं विपरीत परिस्थितियों में भी मनुष्य अचल रह-समभाव में बना रहता है और व्यावहारिक रूप से समदृष्टि अनुरूप सजनता का व्यवहार दर्शा सकता है।

सृष्टि के अणु-अणु में, कण-कण में उसी विश्वात्मा का अंश है। इनमें एकात्मता अनुभव करना ही आनन्द प्राप्ति का परिचायक है। तभी तो कहते हैं कि आनन्द को मानव जीवन का मूल लक्ष्य मानने वाली विचारधारा को अपना कर ही इंसान मर्यादित जीवन जी पाने में सक्षम हो सकता है और परमेश्वर की आनन्दमयी सत्ता यानि स्वरूप को ग्रहण कर अपना व सबका मंगल कर सकता है तथा सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार कह उठता है:-

आदि अनादि प्रमादि सतवस्तु के वाली अपने आप पर कह रहे हैं

(श्री साजन जी के मुख के शब्द)

ऐसे आनन्द दा सीमा न कोई हर जगह हरषाऊँ मैं।
ओ ओ ओ ओ हर जगह हरषाऊँ मैं हरषाऊँ मैं।
देखो क्या ही खेल रचा रहा हूँ
देखो क्या नज़ारा दिखा रहा हूँ।।

मैं चमकूं सारे जग उत्ते लिश्कारा हर अन्दर है मेरा।
चमक मेरी चमकूं कुल जहान,
चमक रिहा ए कुल ब्रह्माण्ड जेहड़ा।।

मोर मुकुट मस्तक तिलक विराजे
कानन कुण्डल है जेहड़ा।
संख चक्र गदा पद्मधारी यह ही तो है नाम मेरा।।

पीले वस्त्र गल बैजन्ती माला
चरणां विच लच्छे कमर सजे दुशाला।

हीरे लाल रत्न जड़त हार है जेहड़ा,
हर अन्दर साज यह है मेरा।।

शेष ते हां विराजमान निर्वाण दे अन्दर स्थान मेरा।
चमक रहा हूँ सारे भूमण्डल, हर अन्दर रोशन नाम मेरा।।

सर्गुण मुख मेरे मुरली साजे, निर्गुण चमक दिखावां मैं।
जोत जगे मेरी सब जग अन्दर, ओ खेल नज़ारे दिखावाँ मैं।।

(महाबीर जी के मुख के शब्द)

सवारी आप दी गरुड़ जी जा पहुँचे दरबार।
बालक गोदी विच पाय के रघुवर जी कर रहे प्यार।
सियापति रामचन्द्र जी की जय,
पवनसुत हनुमान जी की जय।।

प्यार कर रहे अति घना हृदय होया आनन्द।
ओ दयालु श्री राम जी ओन्हां दा नाम है बक्षन्द।
सियापति रामचन्द्र जी की जय,
पवनसुत हनुमान जी की जय।।

अंततः सजनों अगर हम दिल से चाहते हैं कि हम इसी जीवन में परमपद प्राप्त करने में सक्षम बनें तो हमें बिना किसी अन्य सोच के समभाव-समदृष्टि के सबक़ पर सुदृढ़ बने रह अपना मंगल आप करना होगा। इस विषय में, सत्य-धर्म के रास्ते पर निष्काम भाव से अग्रसर हो अपना व सबका मंगल करते हुए परोपकार करने हेतु सजनों आपको शान्ति-शक्ति का हथियार ग्रहण करने की आवश्यकता को समझना होगा। इस सन्दर्भ में जानो कि घर सतयुग बनाने पर ही आप 'गाना' रूपी शक्ति को धारण करने के योग्य पात्र बनते हो। इस तरह इसके द्वारा आप

अपना मंगल कर सकते हो। इसके अतिरिक्त यदि आप 'गदा' रूपी शान्ति शक्ति का हथियार धारण करने के योग्य पात्र बनते हो तो आप अपने साथ-साथ निर्भयता से सबका मंगल करने में भी समर्थ हो सकते हो। अतः इस सर्व महान शक्ति को धारण करने की प्रबल इच्छा अपने हृदय में पैदा करो। याद रखो यह दिव्य शांति शक्ति का हथियार माँगने से नहीं मिलता अपितु निष्काम भाव पर स्थिर बने रहने पर यानि अपनी सुपात्रता सिद्ध करने पर प्राप्त होता है। इस हेतु जगत की ओर से मुख घुमा अपनी सुरत का 'नित्य' परमेश्वर से सम्बन्ध स्थापित करने वाले सुपात्र बनो और शाश्वत आनन्द को प्राप्त कर एक शक्तिशाली इंसान की तरह अन्यों को भी उनके आनन्दस्वरूप से परिचित कराने वाले परोपकारी इंसान बन जाओ। इसे श्रेष्ठता को प्राप्त होने जैसी सर्वोत्तम उपलब्धि मानो और मानव रूप में अपनी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध कर सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप में स्थित हो जाओ।

प्रसन्नता-3

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहो:-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों अभी तक हमने जाना कि एक प्रसन्नचित्त इंसान जीवन में जो भी करता है वह सब आनन्दप्रद होकर करता है। तभी तो उस पापरहित, धार्मिक वृत्ति वाले यानि शुद्ध हृदय वाले संतोषी इन्सान को पवित्रात्मा यानि शुद्ध अंतःकरण वाला, निष्पाप व्यक्ति कहते हैं। ऐसा पुनीत इंसान, आत्मनिरीक्षण द्वारा, अपने हृदय को पवित्र रखने की क्रिया नित्य प्रति करता रहता है। इससे उसके मन में किसी प्रकार की मैल-गंदगी नहीं पनपती। यह अपने आप में छल-कपट या बेईमानी के रास्ते पर चढ़ने से बचे रह, एक दीप्तिमान इंसान की तरह निष्कपटता से विशुद्ध जीवन

जीते हुए, यश और कीर्ति को प्राप्त होने की बात होती है। ऐसे प्रकाशयुक्त प्रसन्नचित्त व्यक्ति का हृदय निर्मल सरोवर की तरह शुद्ध व स्वच्छ यानि मलिनता रहित होता है। इसलिए उसके मन में चित्तवृत्तियों को विकारग्रस्त करने वाले दुर्भाव नहीं पनपते। अतः उसका कुसंगी संकल्प - सजन व संगी हो जाता है। इसी विशेषता के कारण सजनों वह समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार अपना ख़्याल ध्यान वल और ध्यान प्रकाश वल जोड़े रख, सर्व-सर्व ब्रह्म सत्ता के रूप में प्रकाश रहे अपने असलियत सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप को पहचान कर, ब्रह्म भाव अनुसार सबसे सजनता का व्यवहार करते हुए निष्कपट, निष्कलंक, निर्दोष, निर्भय, निर्विकार, जीवन जीने में सक्षम हो जाता है व श्रेष्ठ पुरुष कहलाता है।

स्पष्ट है हृदय से समस्त विकारों का हेतु द्वि-भाव मिट जाता है और सजन-भाव व समभाव वर्त-वर्ताव में आ जाता है। परिणामस्वरूप वह एक निरासक्त इंसान की तरह, इस नश्वर जगत में विचरते हुए भी आनंदमय अपने शाश्वत धर्म पर डटा रह, सर्वहितकारी भावना से सभी को सुखी देखना चाहता है। परोपकार की इसी भावना से ओत-प्रोत हो वह निष्कामतापूर्वक, सच्चाई-धर्म का रास्ता छोड़ कुरस्ते पड़े हुए सजनों को भी इस आनंदकला से परिचित कराने के यत्न में जुट जाता है। निःसंदेह ऐसा पुरुषार्थ दिखाने के पीछे उसका मकसद होता है हर चिंता व तनावयुक्त मानव को प्रसन्नचित्तता का पाठ पढ़ा उसे आत्मसात् करने के लिए प्रेरित करना ताकि वह सही अर्थों में जीवन के मूल आनन्द

को प्राप्त कर, हर्षित हो उठे। आओ सजनों अब प्रसन्नता व आनन्द के विषय में जानने के पश्चात् अब प्रफुल्लता के बारे में जानते हैं:-

प्रफुल्लता का अर्थ है पूर्ण चेतनता की जाग्रति, विकासयुक्त/विकसित, खिला हुआ, प्रस्फुटित, आनंदित। सजनों जो सजन सदा आनंदमय बना रहता है उसकी चेतना यानि बुद्धि व ज्ञानात्मक मनोवृत्ति, वृत्ति-स्मृत्ति निर्मल हो जाती है। परिणामस्वरूप विचार प्रबल हो जाता है और विवेकशक्ति सशक्त हो, क्रियावन्त हो जाती है। यथार्थ के प्रति यह जाग्रति मानव को निष्कामता से, परमार्थ की राह पर अग्रसर होने का बल व बुद्धि प्रदान करती है जिसके कारण वह सुमतिवान घर, परिवार, समाज, विश्व व कुल सृष्टि के प्रति अपने कर्त्तव्य यानि फ़र्ज़-अदा को हँस कर निभाने में हर प्रकार से सक्षम हो जाता है और सब कार्यव्यवहार करते हुए भी उसका ख़्याल ध्यान द्वारा अपने असलियत प्रकाश में ठहरा रहता है। ख़्याल की अफुरता व ध्यान स्थिरता के इसी अद्वितीय कौशल द्वारा उसे परमानंद/ब्रह्मानंद (ब्रह्म के ज्ञान से मिलने वाले आनन्द) की प्राप्ति होती है जिससे उसका बदन प्रफुल्लित हो जाता है (यानि रोम-रोम, रग-रग रोमांचित हो उठता है), हृदय खिड़ता है (यानि संकीर्णता को छोड़ वह भरपूरता व विशालता को धारण कर लेता है) और मुख चमकता है (यानि कांतिमान हो ओजस्वी हो जाता है)। निज के प्रति उसकी यह सतत् जाग्रति उस द्वारा आत्मिक बल को ग्रहण करने का हेतु होती है जिसके परिणामस्वरूप वह समभाव-

समदृष्टि का अनुशीलन आत्मविश्वास के साथ करते हुए अपना पूर्णरूपेण आत्मविकास कर पाता है। इसी कारण उसके लिए तृप्त व निर्लिप्त बने रह, सच्चाई-धर्म की राह पर अग्रसर होना सहज हो पाता है। इस प्रकार समभाव-समदृष्टि की युक्ति में पारंगत उस इंसान का हृदय कमल संतोष, धैर्य, सच्चाई और धर्म जैसे दिव्य गुणों के प्रस्फुटन से इस तरह से खिल जाता है कि फिर उसके लिए एकता, एक अवस्था में सुदृढ़ता से बने रहना कोई कठिन कार्य नहीं रहता। परिणामस्वरूप उसका हृदय सचखंड हो जाता है और उसके स्वभावों की यश-कीर्त्ति की सुगंधि देवलोक की सुगंधि को भी मात कर सर्वत्र फैलने लगती है। यही तो परमात्म स्वरूप होकर इस मायावी जगत में निर्लिप्तता से विचरते हुए अपना परम प्रयोजन सिद्ध करने की बात होती है।

इस विवेचना के आधार पर सजनों स्पष्ट होता है कि प्रसन्नता वह सुख व आनन्द है जो समस्त पूर्वाग्रहों (Prejudies) से रहित हो यानि अतीत की स्मृतियों व भविष्य की कल्पनाओं से विमुक्त केवल वर्तमान में रहने से प्राप्त होता है क्योंकि ऐसा व्यक्ति ही वर्तमान में जो उसे प्राप्त है उसका समुचित प्रयोग करने की कला जानता है। चेहरे पर खिली हुई प्रसन्नता मनुष्य की संतुष्टि, शारीरिक स्वस्थता व बुद्धि की स्थिरता को नापने का एक मात्र पैमाना है। यह रचनात्मक बनाती है यानि शान्त और अफुर मन-मस्तिष्क को नवीन सृजन की प्रेरणा प्रदान करती है। इसलिए इस जीवन औषधि का सेवन न केवल निरोगी बने रहने व दीर्घ आयु लाभ प्राप्त करने के लिए अति आवश्यक है अपितु खुद को व सबको सुखी बनाने हेतु भी इस अनमोल गुण का निरंतर इस्तेमाल अनिवार्य है।

आओ अब सदैव हँसने/प्रसन्नचित्त/आनन्दित व प्रफुल्ल बने रहने से, एक मानव की शारीरिक-मानसिक स्वस्थता के साथ-साथ, पारिवारिक व सामाजिक उन्नति पर क्या सकारात्मक प्रभाव पड़ता है व कैसे यह गुण अफुर अवस्था प्रदान कर स्वतः आत्मबोध करने में सहायक होता है, उसके विषय में जानते हैंः-

शारीरिक स्वस्थता पर प्रभाव

प्रसन्नता शारीरिक स्वस्थता के लिए सर्वोत्तम टॉनिक है क्योंकि इससे शरीर के हर सूक्ष्म बिंदु और उस बिंदु से जुड़े हर अंग-प्रत्यंग का व्यायाम हो जाता है। प्रसन्न मुद्रा में नियमित रूप से ठहाका मारकर मुँह को खोलते हुए दिन में चार-पाँच बार हँसने से यानि दिल खोलकर अट्टहास करने से शरीर के विभिन्न तन्त्रों व उनके साथ जुड़े विभिन्न अवयवों जैसे मस्तिष्क, हृदय, नाड़ियाँ, फेफड़े, माँसपेशियाँ, पेट, यकृत, पीठ, मध्य पटल, वक्ष, जिगर आदि की कसरत हो जाती है और उनकी स्वाभाविक वृद्धि में कोई अवरोध पैदा नहीं होता। फलतः ये हृष्ट-पुष्ट व निरोगी बने रहते हैं और ताकतवर हो जाते हैं। इस प्रकार मात्र प्रसन्नता से सभी अंगों की तन्दुरुस्ती के साथ-साथ अंग-प्रत्यंग की गतिविधियों में परस्पर समन्वय स्थापित कर उनका संचालन करना सरल हो जाता है।

मस्तिष्क पर प्रभाव

प्रसन्नता से हमारी नसों को जो गति प्राप्त होती है वह मस्तिष्क के भावात्मक केन्द्र को प्रभावित करती है और

मस्तिष्क का न्यूरोकेमिकल (नाड़ियों के मध्य पाए जाने वाला रासायनिक पदार्थ) संतुलन बनाए रखती है। परिणास्वरूप मस्तिष्क लचीला बनता है और जीवन में किसी भी कठिनाई के उपस्थित हो जाने पर तुरंत उसमें सामंजस्य स्थापित कर लेता है यानि मानसिक संतुलन बनाए रखता है। यह तनाव कम करने का बहुत कारगर उपाय होता है। यही नहीं प्रफुल्लता से मनुष्य का मन-मस्तिष्क कुछ देर के लिए विचार शून्य हो जाता है अर्थात् उसकी निरर्थक भाग-दौड़ कुछ देर के लिए थम जाती है फलतः ख़्याल मौन हो जाता है। इसी खालीपन व शून्यता के कारण सारा शरीर ताज़गी से भरपूर हो हल्का-फुल्का हो जाता है और विश्राम का अनुभव करता है।

अंतःस्त्रावी प्रणाली पर प्रभाव

प्रसन्नता के कारण उठने वाली गुदगुदी वाली तरंगों से हमारे शरीर में एंडोर्फिन नाम का हॉरमोन सक्रिय होता है। इसे खुशी का हॉरमोन भी कहते हैं क्योंकि इस हॉरमोन से हमारे अंदर स्वस्थता और खुशी का भाव पैदा होता है। यह हॉरमोन एक प्राकृतिक एवं प्रभावशाली पेन किलर यानि दर्दनिवारक हॉरमोन है जो हमारी तकलीफ़ों और तनाव को कम कर हमें उत्साही व स्वस्थ बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

हृदय पर प्रभाव

प्रसन्नचित्तता से दिल खोलकर हँसने पर, शरीर से जिस एंडोर्फिन रसायन का स्राव होता है उससे हमारा हृदय

मज़बूत होता है। यही नहीं इससे हृदय-स्पन्दन में वृद्धि होती है व हृदय की धमनियों में रक्त का प्रवाह तीव्र हो जाता है जिसके दबाव से गलत आहार-विहार के कारण नाड़ियों में उत्पन्न हुई बाधा यानि रुकावट (Blockage) दूर होती है और रक्त-चाप भी नियंत्रित बना रहता है। इस प्रकार हँसी हार्ट अटैक जैसी हृदय संबंधी बीमारियों की संभावना को कम करके हृदय की सुरक्षा करती है।

रक्त संचार पर प्रभाव

प्रसन्नता रक्त संचार केन्द्रों को अनुप्राणित करती है। इससे हमारे शरीर की समस्त रक्तवाहिनियाँ हरकत में आ जाती हैं और रक्त संचार सुचारू रूप से चलता है। फलतः रोम-रोम, रग-रग में ताज़गी का एहसास होता है, स्फूर्ति आती है और समूची काया में ऊष्मा का प्रवाह सुचारू होने से व्यक्ति में ओजस्विता बढ़ने लगती है।

श्वसन क्रिया पर प्रभाव

हँसने से श्वसन क्रिया तेज़ हो जाती है। श्वसन क्रिया के इस प्रकार तेज़ होने से फेफड़ों में रुकी हुई दूषित वायु बाहर निकल जाती है और उनमें ताज़ी, स्वच्छ, निर्मल, जीवनप्रदायक वायु यानी ऑक्सीजन भर जाती है। यही नहीं इस क्रिया द्वारा ऑक्सीजन का संचार शरीर में अधिक होता है जिससे विभिन्न कोशिकाओं और अंगों में भी ऑक्सीजन की पूर्ति सुचारु रूप से हो जाती है और यदि कहीं ऑक्सीजन का स्तर कम ज़्यादा हो तो हँसने से वह भी सामान्य हो जाता है। इसलिए तो खुलकर हँसने वालों व

सदैव प्रसन्नचित्त बने रहने से फेफड़ों के रोग नहीं होते।

रोग प्रतिरोधक शक्ति एवं प्रतिरक्षातंत्र पर प्रभाव

हमारे शरीर पर रोज़ बीमारियों के लाखों कीटाणु हमला करते हैं। दुश्मनों के इस आकस्मिक हमले से हमारी रोग प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) हमें बचाती है। यह रोग प्रतिरोधक शक्ति खुलकर हँसने व सदैव प्रसन्न रहने से पुष्ट होती है। एक रिसर्च के अनुसार खुलकर हँसने से रक्त संचार की गति बढ़ती है और ऑक्सीजन का स्तर अन्दर बढ़ता है। रक्त संचार की गति व ऑक्सीजन का यह बड़ा हुआ स्तर समुचित मात्रा में विषैले पदार्थों को अंदर से बाहर निकाल फेंकता है। फलस्वरूप स्वच्छता व विशुद्धता का अंदर प्रसार होता है। इसी स्वच्छता व विशुद्धता के प्रभाव से हमारा प्रतिरोधक तंत्र मज़बूत होता है और विषैले कीटाणुओं के हमले से शरीर को बचाने में सहायक सिद्ध होता है। कहा जाता है कि ऐसी विशुद्ध ऑक्सीजन से कैंसर कोशिकाएँ और कई प्रकार के हानिकारक बैक्टीरिया एवं वायरस भी नष्ट हो जाते हैं।।

मांसपेशियों पर प्रभाव

सजनों दिन-भर की भागदौड़, अनुचित आहार-विहार या आलस्य के कारण हमारी माँसपेशियों में अजीब सा खिंचाव होने लगता है। ज्यादा काम करके या कुछ न करके यानि खाली व्यर्थ बैठे रहने के कारण हमारे जोड़ों में स्पंदन सा होने लगता है व उनमें शून्यता पनपने लगती है। ऐसे में यदि हम बीच-बीच में थोड़ा हँस-खेल लेते हैं और प्रसन्न हो जाते

हैं तो सम्पूर्ण माँसपेशियों में आए खिंचाव में आराम मिलता है व थकान, तनाव और शारीरिक दर्दों से मुक्ति मिलती है और शरीर रिलैक्स फ़ील करने लगता है।

'डायफ्राम' यानि मध्य पटल पर प्रभाव

सजनों हमारे शरीर में पेट और छाती के बीच में एक डायफ्राम होता है जो हँसते समय कम्पित होता है इस कम्पन से सारे आन्तरिक अवयवों विशेषतः पेट, यकृत, आमाशय, फेफड़ों और आँतड़ियों में गतिशीलता आती है और इन सब अंगों की फ्री में मालिश हो जाती है।

पेट पर प्रभाव

मुक्त कण्ठ से हँसने से हमारा पेट आनन्द की लहरों से झंकृत हो उठता है जिसके फलस्वरूप पाचन क्रिया स्वतः ही बढ़ने लगती है तथा पाचन तंत्र अधिक कुशलता से कार्य करने लगता है। इस प्रकार हँसी पेट की आँतों पर विशेष प्रभाव डालती है जिससे पेट ठीक रहता है। यही नहीं हँसने से एब्डॉमिनल मसल्स की भी एक्सरसाइज होती है जिससे भरपूर मात्रा में कैलोरी खर्च होती है और अतिरिक्त चर्बी कम होती है। शोध के अनुसार रोज़ एक घंटा हँसने से लगभग 400 कैलोरी ऊर्जा की खपत होती है जैसे कोई अन्दर ही दौड़ रहा हो यानि जॉगिंग कर रहा हो। इस प्रकार हँसने से मोटापा काबू में रहता है और व्यक्ति हास्य व्यायाम द्वारा मोटापे के साथ-साथ उससे संबंधित रोगों जैसे मधुमेह और रक्तचाप इत्यादि से भी बचा रहता है।

चेहरे पर प्रभाव

सजनों यह तो सब मानेंगे कि हर इंसान सुंदर होना व दिखना चाहता है। जानो हँसना/प्रसन्नचित्त रहना सुन्दरता के लिए वरदान है। जो इस वरदान का समुचित प्रयोग करता है उसका चेहरा हमेशा खिला रहता है। इसका कारण यह है कि हँसने से शरीर की समस्त नाड़ियाँ पूरी तरह से क्रियाशील हो जाती है और बिना किसी रुकावट के आक्सीजन से भरपूर रक्त उनमें निरंतर गति करता रहता है। इस गति से अंग-प्रत्यंग की भरपूर मसाज होती है और अन्दर की गंदगी पसीने के रूप में रोमछिद्रों से बाहर निकल जाती है तथा रोमछिद्रों के खुल जाने से सभी ऊतकों (Cells) में ताज़ी हवा भी पहुँच जाती है। परिणामस्वरूप निर्मलता और स्वच्छता के कारण चेहरे के साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर तेजयुक्त होकर दमकने लगता है तथा चेहरे पर लालिमा व निखार आता है जो हमारी सुन्दरता का प्रतीक होता है। यही कारण है कि हँसने वाले व्यक्तियों के चेहरे पर उनकी उम्र का प्रभाव कम दिखता है।

आँखों पर प्रभाव

हँसने/प्रसन्न रहने से आँखों की मसल्स का भी व्यायाम हो जाता है जिससे उनमें भी चमक बरकरार रहती है और आँखों की ज्योति भी तेज होती है।

मानसिक स्वस्थता पर प्रभाव

प्रसन्नचित्तता व्यक्ति के विद्युत-चुंबकीय (Electro-Magnetic) क्षेत्र जिसे हम सामान्य भाषा में तेज-पुंज यानि सात्विक ऊर्जा

का स्रोत मानते हैं उसे प्रभावित करती है। चूंकि प्रसन्न चित्त रहने से व्यक्ति में अवांछित ख्यालों व विचारों का उन्मूलन होता है और सकारात्मकता का संचार होता है इसलिए ऊर्जा का यह स्रोत प्रभावशाली बनता है और स्वतन्त्र मन-मस्तिष्क में उच्च ख़्यालों व विचारों का संचार होता है। यही कारण है कि प्रसन्नचित्त व्यक्ति के मुख के ओज यानि तेज-कांति को देखकर सब उसकी ओर आकर्षित होते हैं व उसके उच्च विचारों व ख़्यालों से प्रभावित हो उसके संग बने रहना पसंद करते हैं।

इस प्रकार व्यक्तिगत ऊर्जा का प्रभाव जब समूह पर पड़ता है और सामूहिक रूप से जब सब हँसते हैं तो सकारात्मक ऊर्जा का प्रसार होता है यानि अच्छे आचार व विचारों का आदान-प्रदान होता है व सम्पूर्ण वातावरण से नकारात्मक ऊर्जा यानि बुरे ख़्यालों व विचारों का उन्मूलन होता है। इस प्रकार परस्पर प्रसन्न बने रहना हमारे, ख़्यालों व विचारों को स्वच्छ बना मानसिक स्वस्थता प्रदान करता है और हमें उच्च बुद्धि व उच्च ख़्याल बना उत्थान के मार्ग पर प्रशस्त करता है।

यही नहीं प्रसन्नता मन से शुष्कता का उन्मूलन कर नया उत्साह पैदा करती है जिससे मन की गाँठें खुलती हैं और नीरसता, एकाकीपन, तनाव, चिंता, अवसाद जैसी मानसिक बीमारियों के साथ-साथ दिल में व्याप्त कड़वाहट से भी मुक्ति प्राप्त होती है। परिणामस्वरूप नकारात्मक भाव-भावनाओं व विचारों के अभाव में मन-मस्तिष्क शान्त बना रहता है और मनुष्य अपने अन्दर विश्राम की स्थिति अनुभव

करता है। यदि गौर किया जाए तो अपने आप में यही ध्यानस्थ स्थिति होती है जिसके अंतर्गत समस्त कामनाओं व विघ्न बाधाओं से रहित मनुष्य का ख़्याल आत्मस्थित हो अपने असली घर की ओर प्रस्थान करता है यानि जीवन के परमानंद की प्राप्ति की ओर बढ़ता है। यह स्वार्थपरता के स्वभाव में उलझने के स्थान पर परमार्थ के रास्ते पर स्थिरता से बने रहने की बात होती है। इस प्रकार प्रसन्नता कहीं न कहीं हमारे आत्मिक स्वास्थ्य के वर्धन में भी सहायक सिद्ध होती है।

बुद्धि पर प्रभाव

इससे मस्तिष्क के दाएँ और बाएँ दोनों भाग सक्रिय रहते हैं। परिणामस्वरूप मनुष्य पूर्णतः सक्रिय एवं सजग बना रह सकता है और विचारपूर्वक किसी भी विषय पर सोच-समझ सकता है। इस विशेषता के होने से वह भले-बुरे व सत्य-असत्य का विचार करने योग्य बनता है। उसकी निर्णायक क्षमता बढ़ती है व स्मृति तीक्ष्ण होती है।

चित्त-वृत्ति पर प्रभाव

प्रसन्न रहने से मन की विक्षुब्ध व अशुभ भावनाओं का नाश होता है और मन, क्रोध व तनाव आदि से विमुक्त हो स्वच्छ व शांत बना रहता है इसलिए चित्तवृत्तियाँ निर्मल बनी रहती हैं और सच्चिदानंद की अनुभूति होती है। तभी तो कहा जाता है कि प्रसन्नता अंतःकरण को स्वच्छ बनाने का एक चमत्कारी इलाज है। अंततः स्पष्ट होता है कि प्रसन्नता से मनुष्य की सर्वांगीण वृद्धि व उन्नति होती है। इसलिए हम

कह सकते हैं कि प्रसन्नता मनुष्य के शारीरिक, मानसिक व आत्मिक विकास पर परोक्ष व अपरोक्ष दोनों तरीकों से सकारात्मक प्रभाव डालती है और उसकी सर्वांगीण स्वस्थता का सूचक होती है।

व्यक्तित्व, कुल परिवार व समाज पर प्रभाव

प्रसन्नता से व्यक्ति के व्यक्तित्व में भी बदलाव आ जाता है। कारण यह है कि असंतुष्ट मन में संतोष उत्पन्न हो जाता है व बातों को देखने व समझने का जो नज़रिया नकारात्मक होता है, वह बदल कर सकारात्मक हो जाता है। पहले जिस खुशी को हम भौतिक पदार्थों में तलाशते थे वह जब अपने अन्दर ही प्राप्त हो जाती है तो व्यक्तिगत स्वार्थपरता परमार्थ में तबदील हो जाती है और उस सच्चे आनंद से सबको परिचित कराने का दिल करता है। यही कारण है कि तब अपने साथ-साथ समस्त प्रकृति हँसती-मुस्कुराती प्रतीत होती है। इस प्रकार प्रसन्नता से घर, परिवार व समाज का पूरा वातावरण ही बदल जाता है और सर्वत्र ख़ुशहाली छा जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन का असली आनन्द प्राप्त हो जाता है। इस तरह विसूचिका सूचिका हो जाती है और मौत का भय नहीं सताता। सजनों यह अपने आप में आत्मबोध होने की महान बात होती है।

जान लो कि सदैव हँसने वाले व्यक्ति की आकर्षण शक्ति बढ़ जाती है। प्रत्येक प्राणी उससे मिलने के लिए आतुर रहता है व उससे मित्रता करना चाहता है। उसके प्रसन्नचित्त चेहरे व भावमुद्रा से दूसरों को उसके प्रसन्नचित्त स्वभाव की समझ

आ जाती है व सब उससे प्रेरित होकर वैसे ही मिलनसार स्वभाव वाला बनने की चेष्टा करते हैं। यही नहीं इसी कारण उसे सबसे प्यार मिलता है और वह सबका प्रिय बन जाता है। प्रसन्नता का वातावरण वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़ा, द्वि-द्वेष, तेरी-मेरी आदि को मिटाकर परस्पर भावात्मक एकता कायम कर देता है जिससे आपसी संबंधों व रिश्तों में मधुरता व प्रगाढ़ता आती है व संगठित होकर फ़र्ज़-अदा को हँस कर निभाना सरल हो जाता है क्योंकि तब सवाल व्यक्तिगत अधिकारों का नहीं उठता अपितु सर्वहित के भाव से ओत-प्रोत हो सब परस्पर सहयोग से अपने-अपने दायित्वों का कुशलता से निर्वहन करने के लिए तत्पर रहते हैं। तभी तो कहा गया है कि ऐसे वातावरण में पति-पत्नी व बच्चे भी ठीक रहते हैं और बुज़ुर्ग भी खुश रहते हैं।

प्रसन्नता के कारण परस्पर संबंधों में स्पष्टता व अनुकूलता पनपती है और परिवार का प्रत्येक सदस्य वड-छोट के भेद-भाव से रहित हो एक दूसरे को सुधारते व संवारते हुए, सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर प्रशस्त करने का प्रयत्न करता है। यह सामूहिक रूप से उन्नति का द्योतक होता है। प्रसन्नता से एक सबसे बड़ा लाभ यह भी है कि लोगों से खुलकर मिलने व आगे बढ़कर प्रसन्नता व मुस्कान के साथ बातें करने से हमारा सामाजिक दायरा बढ़ता है। एक खुशमिजाज़ व्यक्ति परिवार, दोस्तों और ऑफिस, हर जगह पसंद किया जाता है। उसके साथ सभी मिल-जुल कर काम करना पसंद करते हैं क्योंकि वह अपने हँसमुख व्यक्तित्व द्वारा दूसरों को शीघ्रतापूर्वक प्रभावित कर लेता है और अपने

उन्मुक्त विचारों द्वारा आवश्यक तारतम्य बना ऐसे सजीव वातावरण का निर्माण कर लेता है जिसमें मिलजुल कर काम करना व मनोवांछित निष्कर्ष पर पहुँचना सहज व सरल हो जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रसन्नता हम से कुछ न लेते हुए हमको, हमारे परिवार को, मित्रों को व समाज को सुख ही सुख देती है इसलिए इसे सुखी जीवन की आवश्यकता माना गया है। अतः इस सुखमय अवस्था को प्राप्त करने हेतु सजनों अब झुखना-रोना बन्द करो और हँसना-हँसाना शुरु करो। ऐसा करने से अंतःकरण स्वच्छ हो जाएगा और हमारा जीवन परम अर्थ को समर्पित हो जाएगा।

अंततः याद रखें कि जहाँ प्रसन्नता समाज की सबसे सूक्ष्म इकाई यानि मानव के भाव-स्वभावों को परिष्कृत व परमार्जित कर निष्कलंक व निर्मल बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, वहीं घर-परिवार को सतयुग बनाने में आधार-स्तंभ का काम करती है। इन सुदृढ़ आधार-स्तंभों पर जिस समाज की रचना होती है वह विचार, सत्-ज़बान, एक दृष्टि, एकता और एक अवस्था का प्रतीक होता है और तब सहजता व सरलता से सजन-युग का आविर्भाव हो जाता है।

सजनों आपने जाना कि मात्र प्रसन्नचित्त रहने से सारे शरीर की रोकथाम हो जाती है और रोम-रोम, रग-रग में सजीवता आती है जबकि इसके विपरीत सदा रोते-झुखते रहने से उत्साह मंद पड़ जाता है, शरीर नाना प्रकार के रोगों का घर बन जाता है और मनुष्य का चेहरा निस्तेज हो जाता है। यहाँ तक कि ऐसे इंसान में कुछ सकारात्मक करने की इच्छा तक

नहीं उत्पन्न होती। मुख्यतः यही कारण होता है उसके अवसाद व चिंताग्रस्त हो मानव जीवन के प्रयोजन को निष्फल करने का।

अंततः इस संदर्भ में जान लो कि परफैक्ट लाइफ़ किसी की नहीं होती। हर कोई जबरदस्ती दुःखी रहने की वजह ढूँढ ही लेता है और अपनी समस्याओं को बढ़ा लेता है लेकिन सत्य तो यह है कि जीवन में तनावग्रस्त रहना किसी समस्या का समाधान नहीं है अपितु उससे उबरना ही बहादुरी है। इस तथ्य को जानते हुए भी मानव वर्तमान में नहीं जी पाता। अतीत की यादें व कल की सोच उसके ख़्याल को बंधनमान कर देती है और यही कारण है कि जो आज है, अब है, उस पल का भरपूर उपभोग नहीं कर पाता। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि जो हमारे बस में नहीं चाहे वह भूत है या भविष्य उसे सोचकर व्यर्थ में ही परेशान क्यों हुआ जाए? हो सकता है कि इसी परेशानी के तहत यह खूबसूरत जीवन आपको कष्टप्रद लग रहा हो और यह भी हो सकता है कि शायद इसी कारण आपको इसकी यथार्थता व सार्थकता समझ न आ रही हो। यहाँ आवश्यकता है समभाव नज़रों में कर, जीवन के प्रति अपने रवैये यानि दृष्टिकोण को बदलने की। यकीन मानिए आपका जीवन कितना ही बोझिल क्यों न हो गया हो अगर एक बार जीने के लिए आवश्यक रवैये में सकारात्मक परिवर्तन आ गया तो फिर निश्चित रूप से भीतरी पवित्रता से यह फुलवाड़ी हँसी की खिलखिलाहट से चहक उठेगी। अतः दिन भर यह समझ कर मुस्कुराओ कि जैसे आप दुनियाँ के सबसे प्रसन्न यानि खुशहाल व्यक्ति हैं

और मुस्कुराहट से बढ़कर आपका संसार में कोई दूसरा हितैषी नहीं है। दुनिया में प्रसन्न रहने का एक ही उपाय है और वह यह है कि अपनी ज़रूरतें कम कर दो। निःसंदेह यदि हम संकल्प को स्वच्छ कर संतुष्ट हो जाते हैं तो आजीवन प्रसन्नचित्त बने रह सकते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में अगर बैहरूनी वृत्ति अर्थात् बाह्य जगत में विचरते हुए वातावरण के कारण, इस क्रिया को कायम रखना कठिन लगे तो अन्दरूनी वृत्ति में उस कुदरत तथा उस कुदरत के वाली से परमार्थी बातें करते हुए और उसे अपना समझते हुए प्रफुल्लित रहने का स्वभाव अपनाओ। भूल कर भी उस दौरान कोई सांसारिक फुरना मत उठाओ इसके लिए अपने मन को प्रभु में लीन रख, अपने कार्यों को निष्कामतापूर्वक समयबद्ध पूरा करना सुनिश्चित करें। याद रखो अवसर बीत जाने पर सम्बन्धित कार्य को करने का अर्थ है प्रसन्नता का हनन कर परेशानियों को मोल लेना। अपने आप को प्रसन्न रखने के लिए अपनी भावनाओं पर संतुलन बनाए रखो। दूसरों की गतिविधियों पर नज़र रखने के बजाय अपने चित्त व मन की गतिविधियों को समझो। इससे अपने भाव-स्वभावों को परिष्कृत कर उन्हें उज्जवल बनाने का अवसर प्राप्त होता है और बिना किसी यत्न के व्यर्थ के फुरनों यानि उत्तेजनाओं व उनसे सम्बन्धित तनावों से छुटकारा मिलता है। यह चित्त की प्रसन्नता को बनाए रखने का सहज तरीका है।

अन्त में हम आनन्दमय अवस्था में बने रह अपना जीवन प्रसन्नचित्तता से व्यतीत करने में समर्थ हों व निष्काम कर्म

द्वारा परोपकार कमाते हुए अपने सच्चे घर अर्थात् परमधाम पहुँच विश्राम को प्राप्त कर सकें इस हेतु हमें आत्मोन्नति में बाधक विकार-वृत्तियों यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के दुष्प्रभावों को गहराई से समझना होगा ताकि कहीं हम इनके मायावी जाल में उलझ कर धर्म का रास्ता छोड़, पाप कर्म करते हुए कर्म भोग के अधिकारी न बन जाएँ। इसी संदर्भ में सजनों आगामी कक्षाओं में इन्हीं के विषय में बारीकी से समझाया जाएगा।

दिनाँक 5 नवम्बर 2017 का सबक़

मानसिक संतुलन/असंतुलन
साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्
ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों अभी तक हम जान चुके हैं कि चारित्रिक सुदृढ़ता के मुख्य आधार एवं मानव व्यक्तित्व के मजबूत स्तंभ यथा संतोष, धैर्य, सच्चाई व धर्म, इन चार सवालों को हल करने पर ही मानव की अन्दरूनी एवं बैहरूनी दोनों वृत्तियों में संतुलन की स्थिति उत्पन्न होती है जिससे स्वतः साम्य अवस्था पनपती है। साम्य समान होने का भाव है, समानता है, समता है व मानव की मूल प्रकृति है। साम्य से ही समभाव स्थापित होता है। फलतः मानव सुख-दुःख, हर्ष-शोक, लाभ-हानि, जय-पराजय में एक समान यानि निरपेक्ष बने रह, समदर्शिता

अनुरूप अपने को सब प्राणियों में और सब प्राणियों को अपने में देखता है। परिणामस्वरूप परस्पर द्वि-द्वेष व वैर-विरोध नहीं पनपता और प्रसन्नचित्तता व एकाग्रचित्तता बनी रहती है। जानो यह अपने आप में मानव की परिपूर्ण सचेतन व संतुलित अवस्था होती है जिसके अंतर्गत उसे अपने शाश्वत नित्य स्वरूप का बोध बना रहता है यानि उसके हृदय आकाश में 'विचार ईश्वर अपना आप' का भाव उजागर रहता है और आत्मप्रकाश से अंतःकरण सदा प्रकाशित रहता है। जानो ऐसे उत्तम इंसान के लिए ही कुदरत प्रदत्त अपने विवेकशक्ति रूपा विशेष गुण का यथोचित प्रयोग करना सहज हो पाता है और वह जगतीय उपज-बिनस के खेल के प्रभावों से अपनी मानसिकता को मुक्त रखते हुए, सदा एकरस साम्य अवस्था में सुदृढ़ता से स्थिर बना रहता है। सजनों यह एक इंसान के नित्यता के भाव में बने रह, बेख़ौफा-बेख़तरा इस जगत में निर्भयता से विचरने का शुभ संकेत होता है। ऐसा इंसान ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर अपनी सूक्ष्म दृष्टि द्वारा, सूक्ष्म अन्दर से ब्रह्म का जगतीय खेल कैसे क्रियाशील होता है, उसका साक्षात्कार कर लेता है। परिणामस्वरूप जगत फिर उस पर हावी नहीं होता और वह उसके प्रभावों से निर्लिप्त बना रह आनन्द से जीवनयापन करता है। इस उपलब्धि के दृष्टिगत ही सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

सम संतोष धैर्य दा सिंगार ए,
सम संतोष धैर्य दा सिंगार ए।
सच्चाई धर्म पकड़ो विशाल ओये,
सम संतोष धैर्य दा सिंगार ए।।

सजनों एकता पकड़ो एकता दिखाओ,
सजनों एकता पकड़ो एकता दिखाओ।
सजनों एकता दा पवे प्रभाव ओये,
सजनों एकता पकड़ो एकता दिखाओ।।

हम कह सकते हैं कि ऐसे में उसके लिए सहजता से विभिन्न पक्षों के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक विचारों में साम्य स्थापित करना सरल हो जाता है। इस तरह उसके मन की गति स्थिर हो जाती है और समरसता उत्पन्न होती है। इस समरसता की स्थिति में उसके लिए अपने ख़्याल को सम्पूर्ण कायनात में अनवरत गुंजायमान अनहद शब्द में अखंडता से लीन रखते हुए ब्रह्म सत्ता यानि ब्रह्म भाव को ग्रहण करना सहज हो जाता है। फलतः मानव कर्त्ता होते हुए भी, ईश्वर के निमित्त हर कर्म निष्कामता व अकर्त्ता भाव से सम्पन्न करते हुए संकल्प रहित बना रह, कर्मफल से बचा रहता है। इसलिए उस बलवान व बुद्धिमान इंसान के अंदर जगतीय क्षणभंगुर पदार्थों के प्रति आसक्ति व लिप्ति नहीं पनपती और वह अपनी मूल स्वरूप स्थिति में अडिग बना रह परोपकार कमाता है।

उपरोक्त तथ्य से सजनों स्पष्ट होता है कि जीवन में संतुलन एवं समता की परम आवश्यकता है जिसके लिए जरूरत है संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म जैसे अंतर्निहित सद्‌गुणों को पहचान कर निष्कामता से उनका वर्त-वर्ताव करने की। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, इन चारों सवालों को धारण कर वर्त-वर्ताव में लाने से भाव संतुलन, मानसिक

संतुलन, वैचारिक संतुलन व व्यावहारिक संतुलन तो पनपता ही है, साथ ही अंतर्द्वन्द्व व अलगाववाद समाप्त हो जाने के कारण एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन भी हो जाता है। परिणामस्वरूप संकल्प रहित हो मन शांत हो जाता है, वृत्तियाँ निर्मल हो जाती है और मनुष्य को जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है। सजनों जानो यह अपने आप में शरीरधारी जीव की इस सर्गुण ब्रह्मांड में विचरते हुए भी इसके त्रिगुणात्मक प्रकृति यानि सत्त्व, रज व तमोगुण के प्रभाव से मुक्त रह, स्थिरता से आत्म परमेश्वर स्वरूप में बने रहने की बात होती है जिसके परिणामस्वरूप बुखार की तरह उसके शारीरिक स्वभावों का घटता-बढ़ता टैम्परेचर सम हो जाता है और तीनो तापों का रोग मिट जाता है। यह बिना यत्न के समभाव-समदृष्टि हो जन्म की बाजी जीत लेने की मंगलकारी बात होती है। ऐसा होने पर सजन स्वार्थी व परमार्थी दोनों राज्य प्राप्त कर रूप, रंग, रेखा से रहित हो जाता है। आओ अब जाने कि इसके विपरीत यानि संतुलन की यह स्थिति बिगड़ने पर क्या होता है?

सजनों जगतीय प्रभावों के कारण संतुलन की यह स्थिति बिगड़ते ही यानि मानव के अंतःप्रकृति के समभाव से च्युत होते ही मन में विकृति पनप जाती है और इंसान का ख़्याल अपने असलियत स्वरूप की तरफ से विमुख हो जगत के भौतिक विषयों के साथ जा जुड़ता है। यह इंसान द्वारा वास्तविक आत्मिक स्वभावों पर स्थित रहने के स्थान पर हर क्षण बदलने वाले शारीरिक स्वभावों को अपनाने की भूल करने की अहितकर बात होती है। इसलिए तो कहा जाता है कि प्रकृति की विकृति ही जगत है और प्राणी का जगत के

दृश्यों के साथ जुड़ना, मन के अन्दर विकारों का बीजारोपण करता है। फलस्वरूप समस्त सांसारिक सुख भोग के साधन मिलने के उपरांत भी मानव का मन नहीं भरता। यह स्थिति उनके मन में असंतोष के रूप में फलित होती हुई नाना प्रकार की काम/कामनाओं/इच्छाओं का रूप धार लेती है। ऐसे में प्रकृति का वह स्वभाव जिसे रजोगुण कहते हैं, जीवधारियों में चंचलता, भोग-विलास तथा दिखावे की रुचि का सूत्रपात करता है जिसके प्राधान्य से प्राणी इन्द्रिय तृप्ति के लिए लालायित रहने लगता है तथा उनकी पूर्ति हेतु मृग-तृष्णा की भांति उनके पीछे-पीछे भागते हुए अंततः अतृप्त व अधीर हो, क्रोध, लोभ व मोह के आवेश/उत्तेजना से ग्रस्त हो अहंकारी व घमंडी हो जाता है। यह परमार्थ का रास्ता छोड़ स्वार्थपर होने की बात होती है और इसी कारण ही ऐसा कमज़ोर इंसान समभाव अनुरूप नजरिया छोड़ द्वि-द्वेष से परिपूर्ण व्यावहारिकता अपना अधोगति को प्राप्त होता है।

सजनों निरन्तर उत्तेजना की इस स्थिति में यानि इन्द्रियों की अत्याधिक चंचलता द्वारा न तो मन शांत व एकाग्र हो मानसिक रूप से संतुलित रह पाता है और न ही व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक जीवन सुखी हो पाता है। इस तरह अस्त-व्यस्त जीवन में सुख-शांति समाप्त हो जाती है और आवेश, घबराहट, चिंता, चंचलता, निराशा, तनाव, असन्तोष, आतुरता/अधीरता, भय, ईर्ष्या-द्वेष, शोक, घृणा, अवसाद आदि जैसे मनोविकारों के उत्पन्न होने से अनिष्ट की संभावनाएँ बढ़ जाती है। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि जिस प्रकार 100 वोल्ट का बल्ब 1000 वोल्ट की बिजली की तार के साथ जुड़ने पर उस विद्युतीय आघात को सह

नहीं पाता और या तो फट जाता है या फ़्यूज हो जाता है, उसी प्रकार हमारा स्नायु तन्त्र भी प्रबल भावावेग या चिरस्थाई नकारात्मक विचारों और भावनाओं के विनाशक बल से आवेशित हो ब्रेन स्ट्रोक जैसे हानिकारक परिणाम उत्पन्न करता है। फलस्वरूप हम व हम से जुड़ा हमारा परिवार व संगी-साथी निराशा भरा झुखने-रोने से भरपूर तनावयुक्त जीवन जीने के लिए विवश हो जाते हैं। याद रखो ज्यादातर यह तनाव व्यक्ति अपनी नकारात्मक सोच के कारण उसी को देता है जिसके प्रति उसके मन के अन्दर अति घृणा या अति प्यार होता है। इस प्रकार द्वेषवश या मोहवश व्यक्ति यथार्थ को देख नहीं पाता और वह अज्ञानी अंत परिणाम के रूप में अति दुःख भुगतता है।

स्पष्ट है सजनों कि मनोवेगों के कारण मनोविकारों के रूप में उदित हुई यह असंतुलन की स्थिति कोई साधारण समस्या नहीं, यह तो दूरगामी परिणाम उत्पन्न करने वाली अति घातक समस्या है। इस समस्या से ग्रस्त यानि भोगों और ऐश्वर्यों में आसक्त पीड़ित व्यक्ति के पास सुखी होने के चाहे कितने ही भौतिक साधन क्यों न हों परन्तु मानसिक संतुलन के अभाव में वह न तो शांति प्राप्त कर सकता है, न स्वास्थ्य, न ही सुख और न ही जीवन का वास्तविक आनन्द। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

दुनियां वालियां दी इक बात सुनाऊँ साजन जी,
सुनो साडी बात।
दुनियां वाले इन्सान बिगड़ गए,
कर रहे नहीं ओ इन्साफ़।।

मानसी रोग जीवां नूं कठिन लगा है,
भजन बन्दगी पकड़ो विशाल।
इस रोग दी कोई दवा न सुज्झे,
चाहे यत्न करो हज़ार।।

यह सर्वरूपेण मनुष्य के शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक रूप से असंतुलित व अनियंत्रित हो अशांति एवं दुर्गति को प्राप्त होने की स्थिति होती है जो उसे अधोपतन की ओर धकेल देती है। ऐसे में ब्रह्म चिंतन द्वारा आत्मसाक्षात्कार कर एक निर्दोष व निर्विकारी इंसान की तरह जीवन जी पाना तो असंभव सी बात लगती है।

इस संदर्भ में सजनों यह भी जानो कि हमारा स्नायु तंत्र शरीर में टेलीफोन प्रणाली की तरह है जो आंतरिक और बाहरी संकेतों की प्रतिक्रिया शरीर में उत्पन्न करता है। मनोविकारों के कारण उत्पन्न उत्तेजना/चंचलता, स्नायविक सन्तुलन को अस्त-व्यस्त कर देती है जिसके कारण कुछ अंगों में अत्याधिक ऊर्जा चलती है और कुछ अंग ऊर्जा से वंचित रह जाते हैं। तंत्रिका तंत्र के वितरण में उत्पन्न यह त्रुटि ही मानसिक अशांति का कारण बनती है। इसके विपरीत एक संतोषी, धीर व शांत व्यक्ति जो अपने अहंकार की पुष्टि के लिए नहीं अपितु निष्काम भाव से परमेश्वर के निमित्त सर्वहित की भावना से समस्त कार्य करता है और सच्चाई-धर्म की राह पर चलता है, उसका तंत्रिका तंत्र सदा संतुलित रहता है। ऐसा स्थिर बुद्धि, संशय रहित इंसान कदाचित् प्रिय को पाकर हर्षित व अप्रिय को प्राप्त कर उद्विग्न नहीं होता यानि हर हाल में समभाव में बना रह, सत्

-चित्त-आनन्द परब्रह्म परमेश्वर में एकीभाव से नित्य स्थित रहता है। सजनों यही हमारे जीवन का लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति के लिए हमें ईश्वर पर गहन विश्वास रखते हुए, भावनात्मक मनोविकारी उत्तेजनाओं व प्रतिक्रियाओं से मुक्त रह, समभाव में स्थित रहने का अदम्य पुरुषार्थ दिखाना है। याद रखो अनुचित-विहार व कुसंगति इस लक्ष्य प्राप्ति में बाधा है। अतः स्वास्थ्यवर्धक सात्विक आहार-विहार के तौर-तरीके अपनाने के साथ-साथ ऐसे सजनों व सत्य शास्त्र के विचारों की संगति करना अनिवार्य है जो सत्यता अनुरूप हमें धर्म के मार्ग पर प्रशस्त करने में और आत्ममूल्यांकन करने में हमारी सहायता करें।

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि हमारा मन-चित्त काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी कषायों/विकारों के कारण मलिन होता है। इस मलिनता के आवरण में निर्मल ज्ञान की धारा नहीं बह सकती न ही हमारे भीतर जो आत्मिक ज्ञान का ख़जाना छिपा हुआ है वह प्रकट हो सकता है। अन्य शब्दों में अवरोध समाप्त होने पर ही यानि चित्त शुद्धि होने पर आत्मिक ज्ञान उजागर हो सकता है और मन का संतुलन, मन की समता और आनन्द व शांति का अनुभव बना रह सकता है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि हमारे मन में इन विकारों का मैल चढ़ता कैसे है? इस संदर्भ में जानो कि मन पर इन विकारों का मैल तब चढ़ता है जब हम अनित्य, मिथ्या, क्षणभंगुर, नाशवान पदार्थों को सत्य मानकर चलते हैं और यह भूल जाते हैं कि जो पदार्थ प्राप्त है वह अवश्य नष्ट होगा

अर्थात् जिसके साथ संयोग हुआ है उसका वियोग अवश्य होगा। इस तरह अनित्य पदार्थों में भ्रमित हो हम यह भूल जाते हैं कि चेतना यानि आत्मा का गुण-धर्म इससे भिन्न है। चाहे सजनों हम इस सत्य से परिचित ही क्यों न हों फिर भी हम अविचारी इंसान की तरह पदार्थ को ही नित्य मानकर तद्नुकूल आचार-विचार अपनाते हैं व उसी के संयोग को शाश्वत मान कर तद्नुकूल व्यवहार करते हैं और उसी को अपना मानते हैं। एक विवेकशील इंसान इतनी बड़ी भूल क्यों कर जाता है, यह बात हमें ध्यान से समझनी होगी।

इस संदर्भ में ध्यान दो सजनों कि हम ऐसा जानते नहीं अपितु मानते हैं। जानने और मानने में बहुत बड़ा अंतर होता है। जानने का अर्थ है ज्ञान प्राप्त करना, अभिज्ञ होना यानि बुद्धिमान व प्रवीण होना व मानने का अर्थ है सहमत होना या स्वीकार करना। जिस दिन सजनों हम इस मानने की अवस्था को पार कर जानने की स्थिति में पहुँच जाएंगे तब हमारे लिए पदार्थ - पदार्थ मात्र होगा और चेतन - चेतन होगा और यह समझ में आ जाएगा कि पदार्थ का उपयोग हो सकता है, उसके साथ संयोग हो सकता है परन्तु वह शाश्वत यानि नित्य नहीं हो सकता। इस प्रकार आत्मिक भाव को स्वीकारने पर सारे दुःख समाप्त हो जाएंगे। वास्तव में अशाश्वत को शाश्वत मानने का आरोप (एक वस्तु में अन्य वस्तु के गुण की कल्पना, झूठी कल्पना) केवल मानने के कारण ही होता है। यदि सत्य को जान लिया जाए तो सारे आरोप यानि भ्रम नष्ट हो जाते हैं और मन पर जमा हुआ अज्ञानता व मूर्च्छा का मैल साफ हो जाता है। इसलिए तो कहा गया है कि जो महान आत्मा निष्काम भाव से,

आत्मनिरीक्षण द्वारा राग-द्वेष के कारण उत्पन्न हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी मनोविकारों को अपने अन्दर देख लेता है और आत्मसंयम द्वारा मन, वचन व शरीर की क्रिया का निरोध कर लेता है वह जन्म, मृत्यु और दुःख के समग्र चक्रव्यूह को तोड़ देता है।

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि मानसिक असंतुलन के कारण उत्पन्न हुए इन रोगों का शारीरिक रूप से उपचार करना चाहे कठिन है परन्तु आध्यात्मिक रूप से इन मानसिक रोगों का उपचार अवश्य किया जा सकता है। इस हेतु व्यक्ति में, अपनी अवस्था का सत्यता से विश्लेषण करने की तथा उसे धीरे-धीरे नष्ट करने वाली क्षयकारी दुर्भावनाओं व नकारात्मक विचारों को समाप्त करने की प्रबल इच्छा होनी चाहिए। आशय यह है कि इस अशांति से ग्रसित व्यक्ति के लिए न केवल अपनी अवस्था को समझना आवश्यक होता है अपितु अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में स्वयं द्वारा हो रही उन भूलों व गलतियों पर ध्यान देना अनिवार्य होता है, जिनके कारण उसके जीवन में यह असंतुलन आता है। याद रखो मानसिक रूप से अशांत व्यक्ति जब एक बार गंभीरता से विचार कर, अपने मन में यह स्वीकार लेता है कि उसकी बीमारी किसी अज्ञात कारणवश नहीं बल्कि उसी की अपनी बुरी आदतों का तर्कसंगत परिणाम है, तो वह आधा तो उसी समय ठीक हो जाता है। इस तरह अपनी त्रुटियों का सही तरीके से जायज़ा लेने के पश्चात्, उसके लिए, मानसिक रूप से खुद को संवेगों द्वारा उत्पन्न किए जाने वाले विघ्नों से अलग करने के अभ्यास में रत होना सरल हो जाता है।

परिणामस्वरूप मन में स्थिरता व दृढ़ता के साथ-साथ शांति उत्पन्न होती है। इसलिए तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

समभाव समदृष्टि दा शब्द निवे कोई औखा।
पकड़ो सजनों आप नूं होना जे गर सौखा।।

इस कथन के अनुसार सजनों युवावस्था का भक्ति-भाव अपनाने हेतु हमारी सर्वप्रथम आवश्यकता है कि हम अपने मन-चित्त को निर्मल बनाएँ और जीवन की हर परिस्थिति में समभाव अपना कर शांत बने रहने का प्रयास करें। याद रखो ऐसा व्यक्ति कभी भी अपना विवेक, अच्छे-बुरे की पहचान अथवा अपना मूल स्वभाव नहीं खोता। वह सदा सच्चाई को भावनाओं से या इच्छाओं से अलग रखकर देखने में सक्षम होता है। उसे कदाचित् स्वार्थपरता के कारण अनुचित तरीकों से गलत धन की प्राप्ति की योजनाएँ प्रस्तुत करने वाले छली-कपटी, चतुर, बेईमान ठग की मीठी वाणी उसके पथ से विचलित नहीं कर सकती। न ही वह अपनी किसी इच्छा/कामना के अधूरे रह जाने पर, अपने उत्तकों में क्रोध अथवा भय का विष भरता है। यही कारण है कि मनोविकार उसकी प्राण शक्ति पर विपरीत प्रभाव नहीं डाल पाते और वह इस काल्पनिक जगत में आत्मसंतुलन खोए बिना निर्विकारता से सजन भाव अनुसार विचरता है।

निष्कर्षतः सजनों याद रखो ईश्वर सर्वव्यापक है, ग्रहों, ब्रह्मांडों को नियन्त्रित रखता है, फिर भी वह विचलित नहीं होता। यद्यपि वह इस संसार में है तथापि वह संसार से परे है। उसका अभिन्न अंश होने के नाते हमें उसी को ही

प्रतिबिम्बित करना चाहिए। इस हेतु हमें अपना ख़्याल व दृष्टि (ध्यान) उसी के साथ जोड़े रखना चाहिए व उससे प्राप्त शांति और आनन्द को बनाए रखना चाहिए और विशुद्ध प्रेम, अच्छाई व सामंजस्यता से परिपूर्ण विचारों का आदान-प्रदान कर उन्हें ही अपने मन-वचन-कर्म द्वारा प्रसारित करना चाहिए। याद रखो अंतर्मन्दिर की वेदी पर जहाँ अन्तर्ज्ञान का प्रकाश है वहाँ चंचलता का व उससे उत्पन्न अशांति व असंतुलन का कोई स्थान नहीं, यानि व्याकुल प्रयत्नों और अन्तहीन खोज का कोई चिन्ह नहीं। अतः समभाव अपना कर समबुद्धि हो जाने के लिए व सच्चे घर तक पहुँचने के लिए इन समस्त मनोविकारों के दुष्परिणामों को जान-समझ कर अविलम्ब इनका परित्याग करना परम आवश्यक है। इसी महत्ता के दृष्टिगत आगामी सप्ताह से सजनों हम इन्हीं मनोविकारों के विषय में बातचीत करेंगे। तब तक जो आज बताया है उस पर गहनता से विचार कर समझदार बन जाओ और 'विचार ईश्वर है अपना आप' इस सत्य को स्वीकार कर इंसानियत से परिपूर्ण स्वभावों पर सुदृढ़ बने रहो।

काम

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

सजनों अच्छा इंसान बनने का यही एकमात्र सरलतम तरीका है।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्
ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

ऐसा करने से ही सही अर्थों में अपने वास्तविक स्वरूप अनुरुप स्वतन्त्रतापूर्वक जीवनयापन करने के योग्य बन सकोगे।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

जानो यही आपका नित्य असलियत स्वरूप है और इसलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ द्वारा सत्य-धर्म का निष्काम भक्ति भाव अपनाने का आवाहन दिया गया है।

सजनों गत सप्ताह हमने जाना कि किसी वस्तु व व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों में बदलाव आ जाना विकार कहलाता है। यहाँ विकार को स्पष्ट करते हुए बता दें कि विकार मन में उत्पन्न होने वाला प्रबल प्रभाव या वृत्ति है। विकारों के कारण वस्तु/व्यक्ति विशेष में बिगाड़/अवगुण/विकृति/बीमारी पैदा हो जाती है और उसका रूप-रंग बदल जाता है। परिणामस्वरूप वह वस्तु/व्यक्ति दोषग्रस्त हो खराब होने लगती है। यहाँ व्यक्ति के संदर्भ में विकारी होने से तात्पर्य उसके मन में क्षोभ यानि राग-द्वेष, काम, भय, डर, रंज, शोक, क्रोध, मोह आदि मनोविकारों के उत्पन्न होने से है। इसी क्षोभ के कारण मन शांत नहीं रह पाता और व्यक्ति सत्य, औचित्य, न्याय, नियम, विधान आदि के सिद्धान्तों के विपरीत या विरूद्ध चलते हुए उपद्रवी बन अपनी हानि खुद कर बैठता है यानि अच्छाई का रास्ता छोड़ बुराई का रास्ता अपना बैठता है और इन्सानियत के स्वभाव से गिर जाता है।

अनेक धार्मिक शास्त्रों व सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों व्यक्ति में प्रधानतः काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार यह पाँच मानसिक विकार पाए जाते हैं। शेष अन्य विकार जैसे कि आशा-तृष्णा, वाशना, चोरी, ठगी, निंदा, झूठ, छल-कपट, संचय, भय, निराशा, चिन्ता, ईर्ष्या-द्वेष, तनाव, अवसाद आदि इन विकारों में संलिप्त होने के कारण पैदा होने वाली संलग्न विकृतियाँ हैं।

इस संदर्भ में जानो विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) का ध्यान-चिन्तन करने वाले मनुष्य की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से काम, काम से क्रोध और लोभ,

लोभ से मोह व अहंकार उत्पन्न होता है। सबकी जानकारी हेतु इन विकारों को सजनों समस्त प्रकार के पापों का बीज जानते हुए नरक का द्वार कहा जाता है। यह चेतन तत्त्व को आच्छादित कर, चेतना का नाश करने वाले हैं व मानसिक विकास/आत्मोन्नति में अवरोध पैदा कर जीव को अवनत करने वाले हैं, अतः इन्हें त्याग कर निष्काम हो जाना ही बेहतर है। इस संदर्भ में उपनिषदों में कहा गया है कि धीर प्रकृति वाले पुरुष की विशेषता यही है कि वे विकार की स्थिति आने पर भी अपने चित्त में विकार उत्पन्न नहीं होने देता। ऐसा मन पर वश रखने वाला संतोषी पुरुष ही वास्तव में धैर्यवान कहलाता है और सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर चलते हुए परोपकार कमाता है। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

विषय विकारां विच चित्त न लावीं,
इन्हां कोलों तूं बच के राहवीं, ए हैन नरक दा द्वार।।

सजनों जानो कि सभी स्वार्थपूर्ण इच्छाओं का अंकुरण काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी बीजों से ही होता है। ये बीज अधिकतर मन व इंद्रियों में पाए जाते हैं। ध्यान दो इन्हीं बीजों का अंकुरण होने पर मानव के मन में संकल्प-विकल्प की तरंगे उठती हैं, वृत्तियाँ विकृत हो जाती हैं, बुद्धि भ्रमित हो जाती है और विवेक यानि सत्य-असत्य, सही-गलत की परख छूट जाती है। अन्य शब्दों में इन पाँच चोरों की फ़ौज में किसी भी व्यक्ति के ज्ञान, बोध, प्रयोगात्मक कौशल व अनुभवों को नष्ट करने की क्षमता होती है। परिणामतः मानव मानसिक रूप से अत्यन्त निर्बल हो जाता है और

उसकी इसी कमज़ोरी का लाभ उठा, अनेकानेक शारीरिक व्याधियाँ उसे घेर लेती हैं। इस तरह मानव अपने काय् बल, मानसिक बल व आत्मिक बल का समुचित प्रयोग नहीं कर पाता। इस संदर्भ में सजनों जिस प्रकार कोई वस्तु समुचित प्रयोग के अभाव में खराब होने लगती है उसी प्रकार मानव भी जब अपने शारीरिक अंगों का इस्तेमाल ठीक से नहीं कर पाता तो शरीर रूपी यह मशीनरी खराब होने लगती है और उसका परिणाम विषम निकलने लगता है।

सजनों हमारे साथ ऐसा न हो इसलिए तो अपनी जीवन यात्रा के दौरान, मानव जीवन के घातक, इन पाँचों दुश्मनों से सावधान रहते हुए, युक्तिसंगत इन्हें इस प्रकार मार मुकाने की आवश्यकता होती है कि हमारी वृत्ति-स्मृति, मन-बुद्धि पर संस्कार/वाशना के रूप में जो इनकी प्रतिछाप पड़ी है, उसका नामोनिशान तक मिट जाए और वे निर्मल हो जाएं। इसलिए तो अपना आप बनाने हेतु सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया है:-

पंजां नूं मार मुकावी तूं, पंजां दे वस न आवीं तूं।
बली झगड़े देन मुका सुरति,
तूं अपना आप बना सुरति।।

आओ सजनों हम भी अपने समस्त क्लेशों, संतापों व झगड़े-बखेड़ों की जड़ को समाप्त करने हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में जिस सबसे बड़े विकार का वर्णन है यानि काम व जिसका परिवार है कामना, सर्वप्रथम उसके विषय में जानते हैं:-

काम

इन्द्रियों की अपने-अपने विषयों (रूप, रस, शब्द, गंध, स्पर्श) की ओर प्रवृति यानि मन का इनके प्रति झुकाव काम कहलाता है। सामान्य भाषा में, परस्पर आकर्षण व प्रेम के कारण उसका भोग, उपभोग व संभोग करने की जो इच्छा प्राणी के मन में पनपती है, वही काम कहलाती है। काम को मनुष्य के मन-मस्तिष्क की अतृप्त क्षुधा माना जाता है। नाभि से नीचे का भाग कामकेन्द्र कहलाता है यानि जनन ग्रंथियाँ कामवासना का स्थान है। चूंकि सजनों कलियुग के इंसान की मौलिक वृत्ति काम में ही फँसी हुई है इसलिए उसकी अधिकांश ऊर्जा का मुख्य केन्द्र, काम केन्द्र ही बना हुआ है यानि उसकी अधिकांश चेतना इसी कामकेन्द्र के आस-पास बिखरी/उलझी रहती है। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आज के मनुष्य में जितना काम का तनाव है उतना किसी और वृत्ति का नहीं। भय का तनाव, क्रोध का तनाव, मान का तनाव, ईर्ष्या का तनाव कभी-कभी होता है परन्तु काम की जड़े उसके अंतर्मन में इतनी गहरी और सघन हो चुकी हैं कि अधिकतर प्राणी इसी तनाव से व्यथित हो अपना सारा जीवन कष्टमय व्यतीत करते हैं। इसलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

काम क्रोध भैणां नूं पिया सतावे,
घर घर दे विच धुम मचावे ।

काम का जन्म कामुक इच्छा और कामुक विचारों से होता हैं। आत्मसंयम द्वारा अपनी इस इच्छा या विचार पर अधिकार/नियन्त्रण न रखने वाला मानव कामातुर (आवेश,

वेगयुक्त) होते-होते कामांध हो जाता है। ऐसे कामांध का मन व इन्द्रियाँ चंचल, भाव और वृत्ति अनियंत्रित हो जाती है व विवेक नष्ट हो जाता है। ख़्याल और बुद्धि पर हावी हुआ काम उनकी स्वच्छता व निर्मलता को भंग कर देता है। परिणामतः दृष्टि कंचनता छोड़ देती है और नेत्र चंचल हो जाते हैं, हृदय दहकने यानि काम की पीड़ा से जलने लगता है, अरुचि उत्पन्न होने लगती है, नींद नहीं आती। सारा शरीर काम की अग्नि से तपने लगता है। साँसें गरम हो जाती है। मुँह से बफारे (सेक) निकलने लगते हैं। शरीर में थकावट, आलस्य पनपता है जिससे जोड़ों में तनाव एवं स्पंदन यानि शून्यता पनपने लगती है। शरीर क्षीण, शिथिल, अशक्त और अचेत बना रहता है व व्यक्ति स्वेच्छाचारी, स्वार्थी, आलसी व अकर्मण्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त काम अग्नि पुरुष के पौरुषबल को भी नष्ट कर देती है। अतिकामुक प्रवृति से स्त्री पुरुष दोनों ही वात (वायु) विकार, वात व्याधि और वात के प्रकोप का शिकार हो जाते हैं। यही नहीं कई बार तो अपनी भोग मर्यादाओं पर अंकुश न रखने वाले पति-पत्नी कुसंग के कारण शास्त्रविहित मर्यादाओं का उल्लंघन कर परस्त्री-परपुरुष का संग कर बैठते हैं और इसी कारण भयानक संक्रामक यौन-रोगों का शिकार हो जाते हैं। सजनों वर्तमान समय में अधिकतर मानव इसी अवस्था से पीड़ित है।

सजनों हमारे साथ ऐसा न हो इस हेतु, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में पतिव्रत-पत्नीव्रत धर्म की पालना की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया हैः-

(सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी के मुख के शब्द)

हनुमान साजन जी आवे,
दर्शन पा पा गरुड़ ओ दिल विच।
दिल में खुशियाँ ओ मनावे,
हां दिल में खुशियाँ ओ मनावे।।

शब्द:-

चलो साजन जी दरबार में,
महाराज जी दी बात सुनो ते सुनावो।
कुल दुनियाँ ते पतिव्रत धर्म चलाओ,
आप चलो ते सजनां नूं चलना सिखाओ।
हाँ आप चलो ते सजनां नूं चलना सिखाओ।।

सजनों पतिव्रत धर्म दिखा के,
सुपने में पर स्त्री पर पुरुष दा ख्याल न लियाओ।
सच्चाई धर्म वर्तो ते वर्ताओ,
इन्सान हो तो इन्सानी दिखाओ।
हां इन्सान हो तो इन्सानी दिखाओ।।

सती सवित्री सीता महारानी नूं याद करके,
सजनों पतिव्रत धर्म अपना बचाओ।
लोक और परलोक में सजनों चोर न पकड़े जाओ,
सजनो तुसां चोर न पकड़े जाओ।।

देखो अत्रि मुनि दी स्त्री अनुसूया,
पतिव्रत धर्म अपना चानण किया।
भक्ति शक्ति दी ताकत देखो,
अनुसूया अपना नाम रौशन किया।
देखो नाम अपना रौशन किया।।

पर पुरुष पराई नार सजन सुपने विच न देखे,
हनुमान जी दे वचनां दी पालना करे।
विच न राहवे इन्सान भुलेखे,
इन्सान विच न राहवे ओ भुलेखे।।

पतिव्रत धर्म दी इक निगाह ओहदी एक है दृष्टि,
सच्चाई धर्म दी चल्ले ओ चाल।
सब नूं समझे माता पिता,
बहिन भाई बन्धु फिर ओ कदे नहीं खांदा हार।
हां फिर ओ कदे नहीं खांदा हार।।

धर्म सच्चाई नूं फड़ लवो,
महाराज नाल न छडो प्रीत सजनों।
सच्चाई धर्म ही नाल चलेगा,
इसे विच है तुहाडी जीत सजनों।
इसे विच है तुहाडी जीत सजनों।।

ध्वनिः- धर्म मत हारना रे, धर्म के ऊपर।
सजनों तन मन धन सब वारना रे।।

सजनों उपरोक्त कीर्तन में जिस धर्म की बात हो रही है वह कोई मज़हबी धर्म नहीं अपितु इंसानियत धर्म है। तन-मन-धन के प्रलोभन में आकर कभी भी इस इंसानियत धर्म से नहीं गिरना अन्यथा जीवन हार बैठोगे। सजनों इस कीर्तन के माध्यम से परमेश्वर निज धर्म की पालना पर इसलिए भी जोर दे रहे हैं क्योंकि वर्तमान समय काल में धर्म हार कर, अधर्म की राह पर चलने वाले माता-पिताओं के घर उत्पन्न हुई संतति, उचित लालन-पालन व संरक्षण के अभाव में

बाल्यावस्था से ही नकारात्मक कामुक दुष्प्रवृत्ति का शिकार हो जाती है और जुआ, मद्यपान, निंदा, झूठ आदि दुर्व्यसनों में फँस मानव जीवन की अनमोलता न स्वीकारते हुए व्यर्थ समय गँवा बैठती है। यह उनके शारीरिक-मानसिक रूप से दुर्बलता से ग्रसित हो अस्वस्थता को प्राप्त होने की निशानी होती है। इस तरह लज्जा, धैर्य, बुद्धि तथा सुख-शांति का समूल नाश हो जाता है और जीवन के चारों लक्ष्यों यानि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का पुरुषार्थ कामग्रस्त व्यक्ति की पकड़ से छूट जाता है। हमारे साथ ऐसा न हो इसलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में दासी महाबीर जी के आगे प्रार्थना करते हुए कहती है:-

काम क्रोध हैं दुश्मन भारी,
इनको मार मुकाओ महाबीर जी।

स्पष्ट है सजनों काम आत्मनियंत्रण, आत्मसंयम जैसे सद्‌गुण का विरोधी है। इसलिए तो सजनों सच्चेपातशाह जी कहते हैं **'काम इन्सान के अन्दर एक अग्नि का रूप है जिसको जितना बढ़ाओ, अन्त ही नहीं। काम का इस्तेमाल केवल सन्तान की उत्पत्ति के लिए ही होना चाहिए।'** इस अर्थ से सजनों यह स्पष्ट होता है कि काम ऊर्जा को, निर्माण, सृजन, विकास और उत्थान का हेतु भी माना जाता है। अतः इस ताकत को यथाशक्ति बनाए रखने के लिए सजनों उचित आहार-विहार और सदाचरण कर इसकी रक्षा करनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में काम के संदर्भ में यह भी कहा गया है, 'काम का परिवार है कामना',

जो मनुष्य के लिए सर्वाधिक साधारण व सबसे कठिन प्रलोभन है। आओ अब इसके विषय में जानते हैं:-

सजनों मन में उत्पन्न होने वाली उत्कट इच्छा या अभिष्ट की प्राप्ति कामना है। संसारी व्यक्ति की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जो वस्तु उसके पास नहीं होती, उसके लिए उसके मन में विविध प्रकार की कामनाएँ उत्पन्न होती रहती हैं। वह अपनी कामनाओं की भरसक पूर्ति करना चाहता है परन्तु अधिकांश कामनाएँ वह चाहकर भी पूरी नहीं कर पाता। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी बलवती कामनाएँ भी मानव के अन्दर उठती हैं, जो सामान्य दैनंदिन जीवन की इच्छाओं से किंचित् भिन्न होती है, उसे मनुष्य प्रकट नहीं करता अपितु गुप्त रखता है इसलिए इसे मनोकामना/वांछा, अभिलाषा या मनोरथ भी कहते हैं। मनोकामना की पूर्ति के लिए ही इंसान देवी-देवताओं की पूजा, स्तुति, निवेदन, प्रार्थना, यज्ञानुष्ठान और व्रत आदि करके उनके आगे हाथ फैलाता है। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

भैणां नू हुण कामना सतावे,
घर घर दे विच भीख मंगावे।।

निःसंदेह सजनों भोग और इच्छाओं के वशीभूत रहते हुए मनोवांछित फल की कामना अथवा चाह और पुनः उसकी प्राप्ति हेतु अनेकशः प्रयास मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है परन्तु स्वयं के लाभार्थ, दूसरों की हानि अथवा पराजय का विचार किए बगैर, उस इच्छा की सिद्धि हेतु, येन-केन-प्रकारेण प्रयास करना चिंतनीय, अमर्यादित एवं निंदनीय है।

कामना को अन्य शब्दों में इच्छा भी कहते हैं। इच्छा से अभिप्राय अपने लिए या दूसरों के लिए किसी अप्राप्त वस्तु को पाने की चाहना से है। सजनों किसी वस्तु को इष्ट साधक या अनिष्ट निवारक जानकर उसमें इच्छा होती है। अन्य शब्दों में इच्छा वह मनोवृत्ति विशेष है, जो किसी वस्तु के लिए चाह उत्पन्न करती है तथा जिससे किसी प्रकार के सुख की सम्भावना होती है। इस अर्थ से किसी वस्तु की प्राप्ति से मिलने वाली क्षणिक तुष्टि या सन्तोष के लिए मन में उत्पन्न होने वाली कामना या अभिलाषा विशेष को इच्छा कहते हैं।

पदार्थ के सन्निकर्ष में आने से मनुष्य के अन्तःकरण में या मन-मस्तिष्क में भाव के माध्यम से सतत् इच्छाओं का जन्म होता रहता है। मनुष्य विचार-मन्थन के उपरान्त अपने विषयानुकूल इच्छाओं को चुनता है तथा उनके लिए प्रयास करके, उन्हें पूरी करता है। जैसी इच्छाएँ होती है मनुष्य तद्नुकूल उन इच्छाओं की पूर्ति हेतु उचित/अनुचित साधनों को जुटाने की चेष्टा करता है और कर्मबंधन में फँस नाना प्रकार के दुःख-सुख भोगता है। इतना होने पर भी इच्छाओं की प्यास कभी नहीं बुझती, न पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होती है अपितु और बढ़ती जाती है। हम कह सकते हैं कि यह इच्छाएँ समुद्र के समान है। जिस प्रकार समुद्र का कोई अन्त नहीं उसी प्रकार इच्छाओं का भी कोई अंत नहीं। इच्छा के अंतर्गत कुछ भी पाने की लालसा बनी रहती है। लालसा उस केकड़े के समान है जो एक बार चिपटने पर मुश्किल से अलग होती है। यह मनुष्य के मरते समय तक उसका पीछा नहीं छोड़ती। सजनों वर्तमान युग के दृष्टिगत संसार का

कोई भी प्राणी ऐसा नहीं जो इन इच्छाओं में जकड़ा हुआ न हो अर्थात् सभी लोग बाहर-भीतर किसी न किसी रूप में इन एषणाओं में जकड़े हुए हैं। एषणा यानि इच्छाओं से ही तृष्णा बढ़ती है व समस्त भय और चिन्ताएँ इन्ही बढ़ी हुई इच्छाओं का ही परिणाम है।

इस संदर्भ में जान लो कि इच्छा/कामनाओं की यही बहुगुणात्मकता ही हमारे अनन्त दुःखों का कारण है क्योंकि यह कामनाएँ ही मनुष्य को बान्धती और घसीटती हैं। इसी के कारण मनुष्य स्वार्थी, आत्म-केन्द्रित और राक्षस बनता है। इसी प्रवृत्ति की अधिकता उसे क्रोध, लोभ और मोह में उलझाती है, भरमाती है व मनुष्य होते हुए भी पशु बनाती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

अन्दर आवे प्रेम ते प्रीति,
बाहर कामना सतावे महाराज,
कामना सतावे ते पई घबरावे,
चैन न आवे दिन रात महाराज ।।

अतः पूर्ण सत्य की प्राप्ति के लिए इन सांसारिक इच्छाओं से छुटकारा पाना परम आवश्यक है। याद रखो जब तक इन इच्छाओं का लवलेश भी विद्यमान है तब तक ईश्वर व अखंड सुख की प्राप्ति सुलभ नहीं। अतः सम्यक् विचार एवं विवेक द्वारा इन इच्छाओं को त्याग दो। जान लो कि इच्छाओं के त्याग से सन्तोष पनपता है यानि जिस अभिलाषा से जीवन संचालित होता है व मनुष्य क्रियाशील बना रहता है, उसी के शमन से यानि इच्छारहितता से मोक्ष मिलता है। इसलिए तो समस्त इच्छाओं से मुक्ति प्राप्त करने को अनन्त सुखों व

अखंड आनन्द का साधन माना गया है। यही निर्वाण की अवस्था है यानि कामना के दीप का बुझ जाना। इस प्रकार जो पुरुष कामनाओं को त्याग कर निस्पृह हो जाता है और ममता तथा अहंकार को छोड़ देता है, अंततः वही शांति पाता है और निष्काम रास्ता पकड़ मुक्त हो जाता है। यह तो हम सब जानते ही है कि निष्कामी ही ब्रह्मज्ञानी बन आत्मबोध कर परमपद को प्राप्त कर सकता है।

आपकी जानकारी के लिए अगले सप्ताह हम क्रोध के विषय मे बात करेंगे। तब तक जो आज समझाया है उस पर विचार करना और कामनायुक्त स्वभावों का त्याग करने का पराक्रम दिखा निष्कामता का भाव अपनाने के प्रति सुदृढ़ हो जाना। जानो ऐसा सुनिश्चित करने पर ही परमपद के अधिकारी बन सकोगे।

दिनाँक 19 नवम्बर 2017 का सबक़

क्रोध

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि मोक्ष प्राप्ति मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है। इस लक्ष्य प्राप्ति में बाधक सभी विषय-विकार बन्धन स्वरूप हैं। अन्य शब्दों में सांसारिक विषयों, पदार्थों अथवा व्यक्तियों से अत्याधिक ममता या आसक्ति का होना बन्धन है। कामना से युक्त कर्म बन्धन है। विषय-विकार तथा अहं भाव बन्धन है तथा अनादि अविद्या की वासना (संस्कार) द्वारा उत्पन्न इस प्रकार का विचार कि 'मैं' हूँ (मैं ही परिवर्तनशील यानि जन्मता-मरता हूँ), यह भी बन्धन है। माता, पिता, भ्राता, पुत्र, गृह आदि मेरे अपने हैं, इस प्रकार के सांसारिक आवरण स्वरूप विचार बन्धन रूप हैं तथा

कर्त्तापन के अहंकार का संकल्प भी बन्धन रूप है। इसी तरह समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करने की इच्छा व संकल्प बन्धन है तथा कामनापूर्ति के लिए संकल्प पूर्वक की गई उपासना यानि भक्ति भी बन्धन रूप है। यही नहीं, वर्ण और आश्रम, धर्म-कर्म के संकल्प भी बन्धन स्वरूप हैं। आशा, भय, संशय आदि के संकल्प बन्धन हैं तथा यज्ञ, व्रत, तप और दान के विधि-विधान तथा ज्ञान के संकल्प भी बन्धन हैं। यहाँ तक कि मोक्ष प्राप्ति का विचार करना भी बन्धन है। अन्य शब्दों में संकल्प मात्र से जो कुछ सम्भव है, वह सभी बन्धन स्वरूप हैं। इस प्रकार सजनों निष्काम भाव से परहित की भावना से किए गए कर्मों के अतिरिक्त अन्य सभी कर्म बन्धन स्वरूप हैं।

इस तथ्य से सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार मन में संकल्प के उठने तथा उसके कुसंगी व संगी होने पर, हृदय पर पड़ने वाले क्रमशः नकारात्मक यानि बुरे प्रभाव या सकारात्मक यानि अच्छे प्रभाव से, खुद को सुरक्षित रखने हेतु संकल्प रहित रहने के विधान का महत्त्व समझ में आता है तथा सतवस्तु की चाल पकड़ यानि संतोष-धैर्य अपना कर, निष्कामता से सच्चाई-धर्म की साधना करते हुए परोपकार करने के निर्देश की महिमा ज्ञात होती है।

इस संदर्भ में जानो कि विषयों में आसक्त मन ही मनुष्यों के इन तमाम बन्धनों का कारण है और विषय-रहित मन ही मोक्ष का परिचायक है अर्थात् जिस समय मनुष्य के मन से तमाम कामनाओं का नाश हो जाता है, उस समय मरणधर्मा मनुष्य अमरत्व को प्राप्त हो, ब्रह्म नाल ब्रह्म हो जाता है।

सजनों यही है हमारा उद्देश्य जिसके लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है अपने अंतःकरण को अज्ञान स्वरूप विषय विकारों से मुक्त करा, स्वच्छ व निर्मल बनाने की। इन विकारों के संदर्भ में सजनों गत सप्ताह हमने काम के विषय में जाना और आज क्रोध के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

क्रोध

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों कामना पूरी न होने के कारण जब इंसान अपनी सुधबुध खो बैठता है तो इस शरीर रूपी दरख़्त को जो अन्यत्र रोग लग जाता है वह है क्रोध। इसलिए तो कहा गया हैः-ः-

दूसरी टहनी है क्रोध वाली वे दूसरी टहनी है क्रोध वाली,
परमार्थ दा रस्ता भुलावे

सजनों जानो कि क्रोध चित्त का वह तीव्र उद्वेग (चित्त की व्याकुलता, मनोवेग, आवेश) है जो किसी अभिलाषा या कामना के न पूरा होने पर अथवा किसी अनुचित और हानिकारक कार्य को होते हुए देख कर, उस कष्ट या हानि पहुँचाने वाले अथवा अनुचित कार्य करने वाले के प्रति मन में उत्पन्न हो जाता है। क्रोध की उत्पत्ति के विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

सूक्ष्म रूप धर क्रोध जो आवे,
अंधेरा देख हृदय घुस जावे।

अन्य शब्दों में क्रोध अज्ञान अंधकार में उत्पन्न होने वाली, वह उष्ण व अप्रिय स्थिति है जो मन के विपरीत हुई क्रिया, घटना

व परिस्थिति के दौरान प्रकट होती है। इसे हम यूँ भी कह सकते हैं कि उत्पन्न हुई इच्छा के प्रति दूसरे के विपरीत भाव, वाणी या कर्म दिखाने पर प्रतिक्रिया के रूप में, रजोगुण के कारण, क्रोध अन्दर उत्पन्न हो जाता है। यहाँ भाव, वाणी व कर्म से हमारा तात्पर्य यह है कि जहाँ कोई दूसरा हमारी इच्छा के मुताबिक करने को तैयार नहीं होता वहीं हम उसके प्रति अपना रोष या गुस्सा, मन की कुढ़न, अनुचित कठोर शब्दों या विपरीत क्रिया के रूप में क्रोध करके व्यक्त करते हैं। जान लो कि क्रोध की जड़ में अहंकार होता है तथा इसका जन्म हिंसा भाव से होता है और ज़िद यानी हठ इसका पोषण करती है।

यद्यपि क्रोध को सजनों द्वेष का एक भेद माना जाता है क्योंकि इसके अंतर्गत हानिकारक कार्य करने वाले से बदला लेने की यानि प्रतिशोध की इच्छा उत्पन्न होती है तदापि इसे द्रोह की अपेक्षा शीघ्र नष्ट होने वाला माना जाता है। इस तरह क्रोधावेश से ग्रस्त होने पर सजन के अन्दर नफ़रत, शत्रुता, वैर-विरोध, तेरी-मेरी, अपने-पराए व लड़ाई-झगड़े की भावना उत्पन्न हो जाती है और व्यक्ति अपने मन-मस्तिष्क की शांति व प्रसन्नता भंग कर दूसरों के लिए भी पीड़ा उत्पन्न करने का कारण बनता है। तभी तो कहा हैः-

तेरी मेरी दुई भैणां नूं पई सतावे,
होश हवाश सब दी भुलावे।

सजनों गुस्सैल व्यक्ति क्रोध के कारण अपना विवेक खो बैठता है और उसकी वाणी क्रोध के पराधीन हो बदलने

लगती है। धीरे-धीरे वह आपे से बाहर हो अपने होश-हवास भूल जाता है। परिणामतः आँखें लाल-पीली कर चीखता है, चिल्लाता है, दाँत व मुट्ठियाँ भींच कर कोलाहल मचाता है, एक दूसरे को कोसता है, गाली-गलौच करता है, हाथ उठाता है, एक दूसरे के कुलजाति का नाम लेकर दोषारोपण करता है, रोता है, रुलाता है और निष्ठुर, अश्लील और तीव्र भाषा का प्रयोग करता है। यहाँ तक कि क्रोधवश उसे भले-बुरे, अपने-पराए, बड़े-छोटे की पहचान भी नहीं रहती और वह बड़ों का अनादर करने से भी नहीं सकुचाता। इसलिए सजनों क्रोधी से सब अप्रसन्न, नाराज़ व दूर रहते हैं। कहने का आशय यह है कि मनुष्य का स्वयं की इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रहता और उसका ज्ञान और कर्म बेलगाम घोड़े की तरह व्यवहार करने लगते हैं। इस संदर्भ में कहा है:-

क्रोध सतावे घर विच झगड़ा पवावे,
वैर विरोध दिखावे महाराज।

हम कह सकते हैं कि क्रोध एक चिंगारी जैसा होता है, इसे यदि रोका न जाए तो यह चिंगारी भारी शोलों का रूप धारण कर हमारे काबू से बाहर हो जाती है, जिससे हम ही नहीं हमारे साथ वालों को भी हानि और पीड़ा भोगनी पड़ती है। इस तरह क्रोध उष्णता की आग से विवेक को जला देता है और इंसान के लिए एकाग्रचित्तता द्वारा सत्य-असत्य की पहचान करना कठिन हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्ति को क्रोध के कारणों का ज्ञान नहीं रहता। तभी तो कहा गया है:-

क्रोध हाई ए बड़ा अनोखा,
जिस ने दित्ता ए सब नूं धोखा।
अन्दर वड़े ते करे ए औखा,
शोले उठन अनेक।।

सूक्ष्म रूप धर अन्दर क्रोध जो आवे,
सट्टे चिंगारी ते अग भड़कावे।
नाले पिट्टे ते नाले शोर मचावे,
चिनगारे उठन अनेक।।

यत्न कर कर क्रोध हटावे,
भुलेखे विच क्रोध जलावे।
खून पीवे नाले रोग बढ़ावे,
भांभड़ मचन अनेक।।

अन्य शब्दों में क्रोध एक विकृत मानसिक भावदशा है। यह ऐसा चिराग़ है जो इस शरीर रूपी घर में जलता है और शरीर को ही जलाता रहता है। इसका दुष्प्रभाव हमारे मन और शरीर दोनों पर पड़ता है। स्पष्ट है सजनों क्रोध के कारण मनुष्य के अन्दर क्रूरता (हृदयहीनता), उग्रता के भाव उत्पन्न होने लगते हैं। मन के सन्ताप व हृदय की कुढ़न से प्राणशक्ति मंद पड़ने लगती है, शरीर में बार-बार उष्णता बढ़ती है, पित्तजन्य रोग पैदा होने लगते हैं, पाचन शक्ति निर्बल हो जाती है, आहार ठीक से पच नहीं पाता, भूख को पैदा करने वाले आवश्यक रस क्रोधाग्नि में झुलस जाते हैं। परिणामस्वरूप भूख मर जाती है। यही वजह है कि क्रोधावस्था में भूख नहीं लगती। क्रोध का सर्वाधिक प्रभाव

सजनों हमारी निद्रा पर पड़ता है। दिमाग पर असर पड़ने से नींद उड़ जाती है और अनिद्रा रोग हो जाता है जिससे स्वास्थ्य खराब हो जाता है। इस अस्वस्थता की स्थिति से बचाने हेतु ही सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

काम क्रोध दुई नूं दिलो हटाओ,
गदा महाबीर जी दा हृदय विच वसाओ ।

सजनों जो मानव ऐसा नहीं करते वे क्रोधावेश मे आकर अन्दर ही अन्दर घुटते रहते हैं। क्रोध से लड़ते रहते हैं और प्रकट रूप से क्रोध न करते हुए भी अन्दर ही अन्दर क्रोध करते रहते हैं। ऐसे लोग मानसिक रूप से तनाव ग्रस्त हो जाते हैं और अन्य स्वार्थीजन उनकी इस कमज़ोरी को भाँप कर, उनकी उस स्थिति का लाभ उठा उनसे कई गलत कार्य करवा जाते हैं। यही नहीं इस तनावग्रस्त स्थिति से शारीरिक रूप से उनके मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र के अतिरिक्त कुछ ग्रन्थियों पर भी दबाव के कारण बुरा असर पड़ता है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि जैसे ही हम क्रोध करते हैं यानि भावावेश में आते हैं वैसे ही हमारे शरीर की कुछ ऐसी ग्रन्थियां खुल जाती हैं जो विष को इकट्ठा करके रखती हैं। यह ग्रन्थियां शरीर के डिफेंस यानि सुरक्षा का काम करती हैं और शरीर में विष को फैलने नहीं देती। क्रोध की स्थिति में ये ग्रन्थियां डिफेंस की जगह आफेंस यानि सुरक्षा की जगह आक्रामक गतिविधि करने वाली हो जाती हैं। इस तरह क्रोध एक इमरजेंसी यानि आपातकाल की स्थिति शरीर में बना देता है जिससे शरीर रूपी राष्ट्र की

सारी शक्तियां एक जुट होकर, आक्रमण करने के लिए तैयार हो जाती हैं। यही वजह है कि क्रोध के आवेश में शरीर में असाधारण शक्ति प्रकट हो जाती है और क्रोधी व्यक्ति ऐसे भारी काम कर डालता है जो सामान्य स्थिति में वह नहीं कर सकता।

इस तरह सजनों क्रोध के दौरान शरीर मानसिक संघर्ष, कशमकश और हिंसा के भाव से लबालब भर जाता है, इसलिए चेहरे पर खिंचाव व स्नायुओं में तनाव आने लगता है, शरीर में रसायनिक परिवर्तन होने लगते हैं, और प्रकम्पन के साथ-साथ तनाव बढ़ने लगता है। इस तरह सजनों क्रोध की अग्नि बाहर को ही नहीं भीतर को भी जलाती है। यह चमड़ी, गोश्त और हड्डी को भेदती हुई अंतर्मन तक पहुँच जाती है और भीतर ही भीतर सब कुछ राख कर देती है।

अंततः सजनों जान लो कि क्रोध भी एक प्रकार का उन्माद अर्थात् पागलपन ही है तभी तो क्रोध के जनून में व्यक्ति अपने से ज्यादा ताक़तवर आदमी को भी उठा कर फैंक देता है। इस तरह उग्रता के वशीभूत हुआ इंसान जोश में आकर होश खो बैठता है और इस अस्थायी पागलपन में ऐसे बुरे काम कर गुज़रता है जो वह नहीं करना चाहता। यहाँ तक कि कई लोग तो क्रोध में पागल होकर आत्महत्या तक करने का यत्न करते हैं और फिर जीवन भर रोते पछताते हैं कि हाय ! यह मैं क्या कर बैठा। फिर उनका शेष जीवन अशान्त हो जाता है और वे पश्चाताप की अग्नि में जला करते हैं क्योंकि उनकी अन्तरात्मा ही उन्हें माफ़ नहीं करती। अंततः सजनों याद रखो क्रोध के परिणाम हमेशा विनाशकारी होते हैं,

जिसका परिणाम रोने और पछताने के सिवा और कुछ नहीं होता।

क्रोध के संदर्भ में सजनों सच्चे पातशाह जी कहते हैं कि जब कोई इच्छा पूरी नही होती तो इन्सान के अन्दर अवविचार के कारण क्रोध उत्पन्न हो जाता है, जिससे इन्सान की बुद्धि का विनाश हो जाता है और सोचने की शक्ति कम हो जाती है। उस वक्त वह विचार को भी नहीं समझ सकता । कुछ नहीं सूझता कि भला-बुरा क्या है। इस तरह खुद भी जलता है औरों को भी जलाता है इससे उसकी पिछली की हुई भक्ति भी नष्ट हो जाती है। जो भक्ति का बीज बोया, पौधा बड़ा होने लगा, वह जलने लगता है। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया है:-

क्रोध नाल न खेड, खेड तूं चरणां दे नाल।

हमेशा याद रखो विवेकशील सजन अकारण क्रोध नहीं करता। वह धैर्य शक्ति के प्रयोग से चित्त की स्थिरता और दृढ़ता बनाए रखता है। अतः सजनों अंतर्निहित धैर्य शक्ति के प्रयोग द्वारा:-

काम क्रोध नूं भैणां परे हटाओ,
रघुनाथ जी सांवले चरण दिखावन जी।

इसके अतिरिक्त सजनों क्रोध की प्रवृत्ति से उबरने हेतु क्षमाशील बनो। क्षमाशीलता वह प्रवृत्ति है, जिसके वशीभूत होकर व्यक्ति अपने से छोटों या बड़ों के द्वारा किये जा रहे अनीतिपूर्ण कार्यों के लिए उन्हें माफ़ करता रहता है। यद्यपि

कलियुग में तो कई बार अनीतिपूर्ण कार्य करने वाले, उसके इस सद्‌गुण का फायदा भी उठा लेते हैं तथापि वह फिर भी उन द्वारा उत्पन्न की हुई उलझनों में उलझ कर क्रोध नहीं करता। इस प्रकार अक्रोध क्षमा की पूर्व सिद्धता है। अक्रोध की अवस्था रहे बिना क्षमा करना सम्भव नहीं। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि क्रोध एक विकार है और क्षमा एक विचार। विकार की स्थिति में विचार सम्भव नहीं। इस संदर्भ में सजनों यदि हम अपनी वस्तुतः स्थिति पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि हम विकारों को तो जल्दी ग्रहण करते हैं परन्तु विचार को नहीं पकड़ते। अतः इस तथ्य को समझो और क्षमा भाव अपनाओ क्योंकि यह सन्तुलित निर्विकार चित्त का परिणाम है। क्षमा तभी कर सकोगे जब अक्रोध की स्थिति बनेगी। गुस्सा नहीं आएगा। फिर दूसरों द्वारा निन्दा करने, मारने-पीटने पर भी चित्त की शान्ति भंग नहीं होगी। यही अक्रोध की अवस्था है यानि मन की क्रोध-विहीन स्थिति में ही दया, क्षमा, शान्ति, सेवा आदि गुणों का व्यवहार दर्शा सकते हो। याद रखो अक्रोधी में अपार सहनशीलता होती है, उसका उत्कृष्ट चरित्र और मनोबल होता है। अतः जो क्षमा में महानता है, वह क्रोध करने में नहीं। क्रोध को सदैव धारे नहीं रख सकते परन्तु क्षमा से आजीवन सुसज्जित रह सकते हो क्योंकि क्षमा आत्मा का स्वाभाविक गुण है। क्षमा सहनशीलता की सूचक है। क्षमा की कसौटी पर ही आत्म-गुणों का मूल्यांकन किया जाता है।

अतः आत्मा को घेरने वाले सभी विकारी भावों का पूर्ण परित्याग करने हेतु, आजीवन उत्तम क्षमा धर्म का पालन करो। इस हेतु किसी की बार-बार की भूल-गलती और

विद्वेष के बावजूद मन-हृदय में उसके लिए किसी कुभाव या प्रतिक्रिया को जगह न दो। यही वास्तविक क्षमा भावना है। मत भूलो जो क्षम (समर्थ) है, उसी के पास क्षमा है, इसके विपरीत जो असमर्थ है वह क्षमा नहीं कर सकता। क्षमा देने वाला अपूर्व आत्मिक-शान्ति पाता है। अतः दूसरों को क्षमा करना सीखो।

याद रखो सजनों जो भी ऐसा कर दिखलाएगा महाबीर जी काम, क्रोध को मुका कर उसको समदृष्टि का रस्ता बता देंगे और जीवन मुक्त बना देंगे क्योंकि कहा गया है:-

काम क्रोध नूं मार मुकावन,
समदृष्टि दा रस्ता बतान।

साथ ही यह भी कहा गया है:-

काम क्रोध नूं दिलों हटाया ए,
दासियां नूं जीवन मुक्त बनाया ए।

अंत में सजनों मान लो कि क्रोध कोई मामूली चीज़ नहीं है। यह व्याधियों और विपत्तियों की जड़ है। इसके वशीभूत हो हम छोटी-छोटी बातों पर क्रोधित हो जाते हैं और इतना विचार नहीं करते कि क्रोध से शरीर के अमूल्य अंग-प्रत्यंगों की किस तरह से हानि होती रहती है। किस तरह इससे हमारी प्रवृति और विचारधारा दूषित हो रही है और हमारे स्वभाव विकृत हो रहे हैं। इस संदर्भ में सजनों हम तो यही कहेंगे कि अगर हकीकत में क्रोध से छुटकारा पाना चाहते हो तो सही तरीके से आत्मनिरीक्षण करते हुए अब तक क्रोध द्वारा पहुँचाई गई तमाम हानियों पर गंभीरता से विचार करो

और जानो कि यह स्वभाव अब तक कितना मेरे शरीर को तोड़ चुका है? कितना मेरी बुद्धि को हर चुका है व शक्तियों को क्षीण कर, मेरे नाड़ी तंत्र को गड़बड़ाकर हृदय पर अपना दुष्प्रभाव डाल चुका है?

अपनी विवेकशक्ति के प्रयोग द्वारा इस दुष्प्रभाव को जान लेने पर आपको लगने लगेगा कि अपने जीवन की बेहतरी व रक्षा के लिए अच्छा है कि मैं इस क्रोध को छोड़ दूँ। पर कैसे? इस हेतु अपने आप से प्रश्न करते हुए विचार करो कि क्या मैं क्रोध को छोड़ सकता हूँ? इस बात का अपने आप से आप उत्तर लो।

सजनों यदि सत्यता व गंभीरता से यह कार्य किया तो थोड़ी ही देर में लगने लगेगा कि मुझ में इतनी क्षमता है कि मैं इसे छोड़ सकता हूँ क्योंकि मैं क्रोध नहीं हूँ। यह मेरा स्वभाव या स्वरूप नहीं है अपितु यह तो बाहर से आया हुआ विजातीय तत्त्व है।। मैं इससे भिन्न हूँ। मैं ज्ञानमय हूँ। मैं सत् चित्त आनन्द स्वरूप हूँ। यह क्रोध तो मेरे अंतर्ज्ञान को आवृत्त कर रहा है इसलिए मैं न तो आत्मिक ज्ञान को पढ़ सकता हूँ, न सुन सकता हूँ व न ही उसको धारण करने में मेरी रुचि बनती है। इस तरह यह मेरे दर्शन को आवृत्त कर रहा है। यह मेरे स्वरूप को विकृत कर रहा है। यह मुझे जीवन के असली आनन्द से वंचित रख रहा है। यह तो मेरी शक्तियों को क्षीण कर रहा है। ऐसे में कैसे मैं अपने आत्मिक बल का प्रयोग कर सकता हूँ? इस तरह के चिंतन से सजनों आपको लगने लगेगा कि हकीकत में क्रोध मेरा स्वभाव नहीं यानि मैं क्रोध नहीं। जब यह समझ आ गई तो सारी बात सुलझ

जाएगी और अंतर्निहित सत्य आत्मिक ज्ञान स्पष्ट हो जाएगा। जब सत्य आत्मिक ज्ञान स्पष्ट हो गया तो समभाव-समदृष्टि अनुसार अपने साथ व सबके साथ कैसे आत्मीयतापूर्ण सजनता का आचार-व्यवहार करना है उसकी प्रतीति हो जाएगी। उसकी प्रतीति हो गई तो अपने आप ही प्रकृति में, स्वभाव में व व्यक्तित्व में बदलाव आ जाएगा। यह है सजनों शांति व प्रसन्नचित्तता से सफलतापूर्वक जीवनयापन करने का सूत्र। इस सूत्र को अपना कर कैसे एक आत्मनिग्रही विवेकी सजन क्रोध को चेतावनी देता है, वह अब ध्यान से सुनोः-

विवेकी की क्रोध को चेतावनी।

सुन क्रोध सुन, सुन क्रोध सुन।
हो गए अब सारे सजन सावधान।
कान खोल कर सुन ले ये ऐलान।।

माना कि तू दुश्मन है बड़ा शैतान।
अब तो हम भी हो गए तुझ से बलवान।।

हमसे न टकराना ओ नादान।
हम क्या हस्ती हैं, तू भी हमें पहचान।।

आख़िर में कहते हैं तुमको जय सिया राम।
अपने घर तू जा और पा विश्राम।।

जय सिया राम, जय जय सिया राम।
जय सिया राम, जय जय सिया राम।।

सजनों हम मानते हैं कि अब आप अपने आप को क्रोध के

स्वभाव से मुक्ति दिलाने में सक्षम हो गए होंगे। यदि ऐसा ही है तो इस सक्षमता को धारे रखना और अपने मन में व परिवारों में शांति के वातावरण का निर्माण करना। याद रखो ऐसा तभी कर पाओगे यदि आपसी बातचीत में स्पष्टता व सार्थकता होगी। अन्यथा तो तकरार में उलझ कर फिर क्रोध कर बैठोगे क्योंकि आपकी सोच नकारात्मक हो जाएगी। अतः अपने साथ ऐसा मत होने देना और समय रहते ही सुधार कर लेना। इसी में सजनों अपनी व सबकी भलाई समझना।

अंत में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार अभी तक हम सबने जाना कि सबसे बड़ा है काम। काम का परिवार है कामना। काम की दोस्ती है क्रोध से। अब हमें जानना है कि कैसे लोभ का दोस्त है मोह और अहंकार कुलनाशक है? अतः सजनों ब्रह्म नाल ब्रह्म होने हेतु, आगामी कक्षाओं में हम लोभ, मोह व अहंकार के विषय में क्रमशः जानकारी प्राप्त करेंगे ताकि हम मन व इन्द्रियों पर कंट्रोल करने में सक्षम हो, ब्रह्म पद प्राप्त करने के योग्य बन सकें।

दिनाँक 26 नवम्बर 2017 का सबक़

लोभ-1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहो:-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों मनुष्य जब भौतिकवादी दृष्टि के प्रति पूरी तरह से समर्पित हो जाता है तो वह वस्तुजगत को ही पूर्ण सत्य समझ बैठता है और अज्ञानवश स्वयं को नियामक एवं कर्त्ता समझने लगता है। उसे भ्रम हो जाता है कि वही अपने व अपने सम्बन्धियों के समस्त प्रकार के योगक्षेम यानि जीवन निर्वाह व कुशलमंगल का संवाहक है तथा धन आदि भौतिक सम्पत्तियों के द्वारा वह स्वयं को किसी भी संकट से बचा सकता है। इसी अज्ञान के कारण सजनों संसारी जीव जीवन-पर्यन्त अनास्था, लोभ और मोह की अंधी गलियों में भटकता हुआ लोक संपदाओं का संचय करता जाता है और इहलोक में आसक्त

हो, सब कुछ इकट्ठा करने की होड़ में, इतना खो जाता है कि उसे अपने तन-मन के पतन का ज्ञान तक नहीं रहता। परिणामस्वरूप-जीवन के अंत में जब वह रेस के घोड़े की तरह थक हारकर गिरता है तो उसकी वास्तविक उपलब्धि शून्य होती है यानि जीवन में कुछ सार्थक प्राप्त नहीं होता। तब उसे एहसास होता है कि यदि वह आत्मज्ञान, सत्संग व विवेक द्वारा अनासक्ति के बाधक तत्त्वों यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि पर विजय पाकर भली-भांति अपना कार्य निष्कामता से करता और जगत को ईश्वर रूप में सेव्य मानते हुए विचरता तो मनुष्य लोक की निस्सारता व नश्वरता की प्रतीति कर सत्य का साक्षात्कार कर सकता था और चाहनाओं और चिंताओं से मुक्त हो जीवन की इस संध्या बेला में अधिक शांति और आत्मसंतोष प्राप्त कर स्वस्थ रह सकता था।

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि आज की क्षिप्रता यानि पतित अवस्था और गला घोंट प्रतियोगिता में मनुष्य न केवल अशान्त और असुरक्षित है, बल्कि उसका जीवन सदा दाँव पर लगा हुआ है। ऐसी विषम स्थिति में आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर, आत्मस्वरूप में स्थित होने पर ही वह आत्मनिष्ठ हो सकता है और इसी से उसे अक्षय शान्ति प्राप्त हो सकती है। अतः सजनों समझो कि वास्तविक उन्नति, धन व पद आदि के नशे में, मदमस्त होकर अपनी आय व भौतिक संसाधनों की अधिकता की परिचायक नहीं है वरन् यह तो सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म, निष्कामता व परोपकारता जैसे दिव्य गुणों से अलंकृत हो आत्म-विकास करने की द्योतक

है। निःसंदेह यह आत्मान्वेषण और आत्मनिष्ठा का विषय है। आत्मोन्नति के इसी श्रेयस्कर पथ पर अग्रसर होने पर ही मानव अपने साथ-साथ संपूर्ण परिवार व समाज का विकास व कल्याण कर सकता है।

हम सब भी सजनों इस आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो सकें इस हेतु सजनों हम आत्मोन्नति में बाधक तत्त्वों यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के विषय में जानकारी प्राप्त कर रहे हैं। इस संदर्भ में सजनों अभी तक हम काम, क्रोध के विषय में सविस्तार जान चुके हैं। आओ आज लोभ के विषय में जानकारी प्राप्त करें:-

लोभ

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों लोभ शारीरिक दरख़्त को लगा हुआ तीसरा विकार है। इसलिए तो कहा गया है:-

तीसरी टहनी है लोभ वाली वे तीसरी टहनी है लोभ वाली
सिर ते बोझ उठावे वे।
माया दे लटकन सप बढुंऐं अंग अंग विच डंग चलावे।
अंग अंग विच डंग चलावे कलेश दिखावे।।

परिभाषा

सजनों कुछ वस्तु लेने/पाने की बहुत अधिक और अनुचित इच्छा या उत्कट अभिलाषा को लोभ/लिप्सा कहते है। यह मन की वह स्थिति है जिसमें सुख/आनन्द देने वाली वस्तु के

अभाव की भावना होते ही उसकी प्राप्ति/रक्षा या उसके सान्निध्य की प्रबल इच्छा अन्दर जाग जाती है। इसलिए इसे ऐसा मोहनीय कर्म माना जाता है जिसके कारण मनुष्य किसी पदार्थ को त्याग नहीं सकता अर्थात् यह (लोभ) त्याग, सुख-शांति या स्वच्छन्दता का बाधक होता है। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

सांवले चरणां विच शान्ति आवे,
बाहर लोभ सतावे महाराज ।
लोभ सतावे रघुनाथ जी दा रस्ता भुलावे,
भय दिखावे हरदम महाराज।।

लालच

कोई पदार्थ विशेषतः धन आदि प्राप्त करने की इतनी अधिक और ऐसी कामना जो कुछ भद्दी और बेढंगी हो, लालच कहलाती है। इसके कारण मानव के अन्दर किसी चीज़ को पाने की बहुत बुरी तरह से इच्छा उत्पन्न हो जाती है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

लालच बुरी बला ओ लालच बुरी बला।
कई जीवां दा करे ओ खात्मा, लालच करे तबाह।

लालसा

बहुत समय से मन में रहने वाली अभिलाषा यानि उत्कट आकांक्षा लालसा कहलाती है। आकांक्षा लालसा की जननी है। जब तक यह लालसा पूर्ण नहीं हो जाती, तब तक मनुष्य

प्रयत्नशील रहता है। संसार में वस्तुएँ अनन्त होने से मनुष्य की लालसायें भी अनन्त हैं। अधिकतर संसारी प्राणी बाहर या भीतर, यानि किन्हीं न किन्हीं रूपों में इन्हीं लालसाओं में जकड़े होने के कारण दुःखों से त्रस्त हैं।

लोभ-लालसा और आशा

लोभ के कारण सजनों अप्राप्त को पाने की आशा मनुष्य के मन में जागती है। इस आशा के जगने से लगने लगता है कि अमुक वस्तु मेरी ही होनी चाहिए। इस तरह का स्वामित्व भाव जाग्रत होने पर ईर्ष्या भी जाग्रत होने लगती है क्योंकि जिस पर हम अपना स्वामित्व दिखाना चाहते हैं, उस पर अन्य लोग भी नज़र लगाए रहते हैं। इसीलिए आशा का पर्यवसान दुःख में होता है। आशा का भाव जीव को माया के जाल में फँसाने वाला है। आशा का अन्तिम परिणाम दुःख के अलावा कुछ नहीं है।

जान लो कि भोग इच्छा के कारण ही आशा में सुख का अनुभव होता है। सामान्य व्यक्ति की आशा समाप्त कभी नहीं होती यानि आशा कभी मरती नहीं। एक आशा के न रहने पर या नष्ट हो जाने पर दूसरी का उदय होता है। यह नदी के प्रवाह की तरह है। जिस प्रकार एक लहर के चले जाने पर दूसरी लहर आती है, उसी प्रकार आशा का उदय होता ही रहता है। हम कह सकते हैं कि आशा जंजीर की तरह होती है। आशा के बन्धन में बँधा जीव आगे-आगे चलता हुआ दौड़ता है, और आशा के विरूद्ध कुछ भी होने पर अपार दुःख पाता है परन्तु इससे मुक्त जीव हर अवस्था में समान रूप से स्थिर बना रहता है।

उपनिषदों में सजनों आशा को पिशाचिनी कहा गया है, जो अन्तःकरण में पाये जाने वाले आनन्द के आश्रय में रहती है। मनुष्य जीवन भर 'आशा' की पूर्ति के लिए अपनी शक्तियों का व्यय करता रहता है परन्तु इस आशा को त्यागने वाला तत्काल ही मुक्ति को प्राप्त होता है। आशय यह है कि जिसे किसी प्रकार की आशा नहीं है वही सुख की नींद सोता है और परम सुख यानि परमपद प्राप्त करता है। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

आशा तजो तृष्णा तजो, भैणां दिल तों तजो अभिमान।
इको रूप पछान लवो, बली पूरण कर देसन काम।।

याद रखो धनवान, विद्वान, रूपवान आदि बनने की आशा मनुष्य को ग़लत राह पर भी ले जाती है। आशा का सम्बन्ध भूतकाल से बिल्कुल न के बराबर होता है। आशा सदैव वर्तमान में रखी जाती है, परन्तु उसकी पूर्णता भविष्य में ही होती है। यह सफलता सम्भावित होती है। सफलता मिल भी सकती है और नहीं भी।

सजनों धर्म ग्रन्थों में कहा गया है कि जो सभी तरह की आशा को छोड़कर वैराग भाव में आ जाता है, वह ही वेद-शास्त्र के मर्म को जान पाता है यानि आशा का त्याग करने वाले उसी व्यक्ति के मन में अनासक्ति का भाव जाग्रत हो पाता है। इस तरह जिसके मन से आशा-निराशा का द्वन्द्व समाप्त हो जाता है और मन की आसक्ति समाप्त होकर शान्ति को प्राप्त हो जाती है, उसे ही जीवन-मुक्त माना जाता है। वही 'स्थित-प्रज्ञ' कहलाता है। वही 'पूर्ण-आशा' है। इस

प्रकार का व्यक्ति ही अपने को सफल मानता है। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

आशा तृष्णा नूं छोड़ के,
प्रीति महाबीर जी दे चरणां नाल लाओ।
ओ दीन पर दयाल होसन, मौत दा भय मिटाओ ।

लोभ-लालसा और तृष्णा

सजनों लोभ-लालसा के कारण किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए आकुल करने वाली तृष्णा यानि प्यास निरंतर अन्दर बढ़ती जाती है। तृष्णा किसी पदार्थ के प्रति प्रबल वासना या भोग की इच्छा है। विषय-भोग की यह प्यास यानि तृष्णा कभी भी मिटती नहीं अपितु आजीवन काली सर्पणी की तरह फुकारें मारती है और ज़हर खिलारती है। यहाँ तक कि खाने-पीने में तृष्णा सताती है। दिन में आराम और रात को नींद नहीं आती। इस प्रकार यह जन्म-मरण के चक्कर में फँसाती है। इससे बचने के लिए सच्चेपातशाह जी कहते हैं:-

भैणां आशा तृष्णा दी काली सर्पणी,
बैठी ए कुंडल मार ।
जे इस काली तों बचना चाहवो,
भज लवो राम बलधार ।

इस प्रकार सर्वगुणसम्पन्न होते हुए भी इस रोग से पीड़ित प्राणी की थोड़े से लोभ के कारण शोभा उसी प्रकार शिथिल हो जाती है जैसे सुन्दर शरीर में श्वेत कुष्ठ हो जाता है। तृष्णा को भली-भांति समझने हेतु सजनों जानो कि जैसे दर्जी सूत्र/धागे को सुई से वस्त्र में प्रवेश कराता है, उसी प्रकार

तृष्णा रूपी सुई से संसार रूपी सूत्र/धागे का अपने अंतःकरण में प्रवेश होता है। तृष्णा का कहीं ओर छोर नहीं है। उसका पेट भरना कठिन होता है यानि तृष्णा के वशीभूत हुआ मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता। जिस प्रकार स्वर्ण मुद्राओं की वर्षा होने पर भी अतृप्त मनुष्य को विषयों से तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार आशा-तृष्णा के पंजे से भी कोई मनुष्य सहजता से मुक्त नहीं हो पाता। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

दुनियां दा रोग है भारी,
आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी।
दासी चरणां तों जावे वारी,
आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी।।

ए रोग सबको कठिन लगा है,
किसे न बुज्झी नाड़ी।
आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी,
आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी।।

सारा दिन सब नूं रोग सतावे,
वैद्य आए बलधारी।
आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी,
आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी।।

जमदियां दा ए रोग लगा है,
महाबीर जी करेसन कारी।
आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी,
आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी।।

आशा-तृष्णा दा रोग लगा है,
बली आप मिटासन दुःख भारी।
आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी,
आए ब्रह्मचारी आए गदाधारी।।

इस प्रकार तृष्णा ही समस्त रोगों या दुःखों का कारण है। उसके द्वारा बहुत से अधर्म होते हैं और इसी कारण जीव सदा व्याकुल व परेशान रहता है। तभी तो कहा गया है:-

तृष्णा दी सबको आग लगी है,
नाम दा मींह बरसाये महाबीर जी आये ।

इस संदर्भ में यह मान लो कि जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपनी मृत्यु के कारणस्वरूप रेशम के जाल का स्वयं निर्माण करता है और अन्त में दुःख को प्राप्त करता है, उसी तरह मूर्ख लोग स्वयं तृष्णा करते हैं और दुःख भोगते हैं।

स्पष्ट है सजनों यह तृष्णा मनुष्य के मरते समय तक उसका पीछा नहीं छोड़ती यानि मनुष्य का शरीर जब जीर्ण हो जाता है, उसके बाल जब पक जाते हैं, आँख और कान जीर्ण हो जाते हैं और दाँत भी टूट जाते हैं तब भी धन और जीवन की आशा जीर्ण नहीं होती -- वह सदा नयी की नयी बनी रहती है तथा और तरूणी यानि जवान हो जाती है।

जान लो कि जो व्यक्ति संतृष्ण होकर पद, दौलत और इज़्जत के पीछे पड़ जाता है, वह तृष्णा-लोभी समुद्र से अपनी प्यास बुझाना चाहता है। वह जितना पानी पीता जाता है, उतना ही ज्यादा और पीना चाहता है। अन्त में पीते-पीते

ही मर जाता है। इस प्रकार सजनों जिस प्रकार सर्प के द्वारा आधा निगल लिए जाने पर भी मेंढक मक्खियों को खाता रहता है, उसी तरह लालसा तज्जन्य कामना/तृष्णा के वशीभूत मनुष्य अधिक से अधिक प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है। अधिक सम्पन्नता एवं समृद्धि का उसमें लालच बना रहता है यानि यह सम्पन्नता का वट-वृक्ष काफी विशाल है। यह मनुष्य को इसी भ्रम में अटकाये रखता है कि अभी भी और कुछ पाना शेष है। यह कुछ और पाने की चाह मनुष्य की मृत्यु-शय्या तक मनुष्य का पिण्ड नहीं छोड़ती।

लोभ-लालसा और परिग्रह वृत्ति यानि संचयन

यह लोभ-लालसा मनुष्य में परिग्रह वृत्ति यानि आवश्यकता से अधिक भौतिक नश्वर विषयी पदार्थों जैसे धन, ज़मीन-जायदाद, वस्तुएँ इत्यादि के संचयन अर्थात् संग्रह करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। सजनों जान लो कि ज्यों-ज्यों इच्छाएं-लालसाएं बढ़ती जाती हैं, त्यों-त्यों आपत्ति व अनिष्ट की आशंका से ग्रस्त इंसान में परिग्रह प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है। इस परिग्रह प्रवृत्ति के कारण मानव मन के साथ-साथ परिवारों व समाज में भी समरसता का भाव लुप्त हो जाता है और द्वि-भाव को बढ़ावा मिलता है क्योंकि धनी और निर्धन दो वर्ग बन जाते हैं और तेरी-मेरी, ऊँच-नीच, बड़े-छोटे, अमीरी-ग़रीबी का सवाल पैदा हो जाता है। इस तरह यह प्रवृत्ति मानव मन में असंतोष को बढ़ावा देती है और सब कुछ होते हुए भी एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा व प्रतिद्वन्द्व लेने के लिए विवश करती है। आशय यह है कि ऐसा स्वार्थपर मानव और-और-और संग्रहित करने के चक्कर में, छल-कपट,

झूठ-ठगी, चोरी-डकैती, छीना-झपटी, हिंसा-लूटपाट, जैसे अनौचित्यपूर्ण कृत्यों द्वारा, दूसरों का हक मार कर, उन पर अपना आधिपत्य जमाने से भी नहीं कतराता। ऐश्वर्य यानि धन व भौतिक संसाधनों की अधिकता उसे मौज-मस्ती के लिए प्रेरित करती है जिससे उसकी मित्र मण्डली भी वैसी ही बन जाती है। धीरे-धीरे वह दुर्व्यसनों में लिप्त होने के कारण धन का दुरुपयोग तो करता ही है साथ ही दुराचारिता और व्यभिचार के शिकंजे में भी फँस जाता है।

लोभ और लाभ

ज्यों-ज्यों लाभ होता है त्यों त्यों लोभ होता है। इस तरह लाभ से लोभ लगातार बढ़ता ही जाता है।

लोभ-लालसा और कृपणता यानि कंजूसी

सजनों लालची यानि लोभी व्यक्ति कंजूस हो जाता है अर्थात् वह पदार्थ विशेषतः धन का भोग न तो स्वयं करता है, न ही दूसरों को करने देता है। ऐसा व्यक्ति छिन जाने के भय के कारण, अपने हिस्से में से बहुत थोड़ा खर्चता है और जो खर्चता भी है उसके लिए भी सदा रोता-झुखता रहता है। यह आदत उसे स्वार्थी व संकीर्ण हृदय बना देती है और इसके वशीभूत हो वह क्षुद्रबुद्धि, संकीर्ण हृदय इंसान मूर्ख कहलाता है। हम सब इंसान ऐसी मूर्खता न कर बैठें इसलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

लोभ तों आप बचा सुरति,
तूं अपना आप बना सुरति ।।

सजनों इन पंक्तियों के माध्यम से सच्चेपातशाह जी सुरत को लोभ से बचने का आवाहन् इसलिए भी दे रहे हैं क्योंकि लोभ बोझ के समान है। मानव जीवन में जितना भी लोभ-लालसा के वशीभूत हो इकट्ठा करता जाता है, वह बोझ तनाव के रूप में उसी के सिर पर भारी होता जाता है। ऐसा बोझिल इंसान जीवन के उन्नति पथ पर तब तक अग्रसर नहीं होता जब तक वह इस बोझ को हल्का करने के लिए उसे परोपकार के कार्यों में व्यय नहीं करता। अतः सजनों लोभ के स्वभाव से बचो क्योंकि ऐसा करने से ही आत्मोद्धार हो सकता है।

सजनों काम, क्रोध, लोभ जैसे मनोविकारों से हम अपने आप को बचाए रख सकें इस हेतु जानो कि यह जगत कल्पित, आधार-रहित व नश्वर है। इस मिथ्या संसार के साथ अपने को सम्बद्ध रखने की प्रबल आकांक्षा का नाम ही कामना/तृष्णा है। इस तृष्णा के नष्ट हो जाने पर ही अन्दर से संसार का नाश व आत्माभिमान का विनाश होता है और निर्वाण प्राप्त होता है यानि अपनेपन और संसार के अभाव का नाम ही निर्वाण है। इस अवस्था में न संसार रहता है, न मैं होता हूँ यानि रूप, रंग, रेखा मिट जाती है। यह स्थिति दुर्बोध और गम्भीर है। जिस प्रकार ईंधन न होने पर अग्नि बुझ जाती है, ठीक उसी तरह काम, क्रोध, लोभ और मोह जनित संसार के समूल नष्ट हो जाने पर मिथ्या सत्ता या अस्तित्व का विलोप हो जाता है और समस्त (अच्छे या बुरे) संस्कारों का क्षय हो जाने पर इंसान संकल्प रहित हो जाता है। इस तरह जगत, सुख-दुःख और अभिमान आदि सभी

का त्याग करने से पुनर्जन्म से निवृत्ति प्राप्त हो जाती है।

अतः सजनों मुक्ति यानि मोक्ष प्राप्त करने हेतु, नित्य (आत्मा) और अनित्य (शरीर) वस्तुओं का विचार करते हुए, नश्वर संसार के सुख-दुःख प्रदाता सम्पूर्ण विषयों से ममत्वरूप बन्धन को नष्ट कर दो। इस हेतु समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार आत्मज्ञान प्राप्त करो और निष्काम हो जाओ । इसी से समस्त कर्म क्षीण हो जाएंगे व अपने अजर, अव्यय, सूक्ष्म, अक्षर, अविकल, निर्मल और निर्वाण यानि ब्रह्म स्वरूप की प्राप्ति कर विश्राम को पाओगे। अतः सजनों इस उपलब्धि के दृष्टिगत समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार ब्रह्म भाव अपनाकर चालीसे के दौरान ही यह कार्य सिद्ध कर लो और विश्राम को पाओ।

सबकी जानकारी हेतु लोभ वृत्ति का आरम्भ कहाँ से होता है व उसके विभिन्न शारीरिक मानसिक दुष्प्रभाव क्या हैं उस का वर्णन हम आगामी कक्षा में करेंगे।

दिनाँक 3 दिसम्बर 2017 का सबक़

लोभ - 2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताहों में सजनों हमने जाना कि काम/कामना/इच्छा ही संसार के समस्त रोगों एवं स्थाई दुःख का एकमात्र कारण है। इसी के कारण इंसान आजीवन झुखता रोता रहता है। कामनाओं का यह खेल अति भयंकर है क्योंकि मस्तिष्क की सहायता से ये कामनाएँ लोभ-लालसा व तृष्णा के रूप में मनुष्य के भीतर स्थाई घर बना उस में निवास करने लगती हैं और मनुष्य हर संभव यत्न द्वारा अपनी समस्त शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्ति का निरर्थक व्यय करते हुए आजीवन इनकी पूर्ति में लगा रहता है यानि कभी भी संतुष्ट नहीं होता। परिणामस्वरूप चेतना का स्तर गिर जाता है यानि सोच संकीर्ण हो जाती है और मनुष्य

अपनी सोचने-समझने की बौद्धिक शक्ति गँवा नरकों में भटकता है। तब इन कामनाओं से सुख, आराम व संरक्षण प्राप्त होने का उसका मत लुप्त हो जाता है। यहाँ विडम्बना की बात यह है कि जीवन रहते अक्सर यह बोध मनुष्य को होता नहीं और होता भी है तो इतनी देर हो जाती है कि मनुष्य को रसातल से निकलना दुष्कर जान पड़ता है।

सजनों आपकी ऐसी स्थिति न हो, इस हेतु समय रहते ही आपको सावधान किया जा रहा है और स्थिर बुद्धि द्वारा, संतोष-धैर्य अपनाकर, निष्कामता से सच्चाई धर्म के पथ पर चलने का आवाहन दिया जा रहा है ताकि समभाव-समदृष्टि की युक्ति प्रवान कर व संकल्प कुसंगी को संगी बनाकर, इन कामनाओं के दुष्चक्रव्यूह को तोड़ सको और अपनी चेतना को निम्न-संकीर्णता के स्तर से उबार कर उस उच्चतर स्तर तक पहुँचा सको जहाँ अपने दिव्य स्वरूप का आपको स्वतः बोध हो जाए। इस उच्चतम शिखर पर पहुँच कर ही सजनों आपको समझ में आएगा कि कामना में अवरोध उत्पन्न कर उसे पनपने से रोका जा सकता है और संकल्प शक्ति पर अधिकार होने से, उन्हें पूर्ण आत्मविश्वास के साथ नियंत्रित किया जा सकता है। अन्य शब्दों में विवेकशक्ति व आत्मबल के प्रयोग द्वारा, इच्छा और आवश्यकता के मध्य महीन अंतर को परख कर, अपनी इच्छाओं को आवश्यकता के स्तर तक सीमित रखा जा सकता है। निश्चित रूप से ऐसा करने से मनुष्य की सब इच्छाएँ/कामनाएँ कमज़ोर पड़ जाती हैं और मानव अपनी मूल प्रवृत्ति से ही उन इच्छाओं का त्याग करने में सक्षम हो जाता है।

इस संदर्भ में सजनों यदि वास्तव में आत्मस्वरूप का बोध करना चाहते हो तो याद रखो, मन के उपशम यानि शांत होने पर ही यह संभव है अन्यथा जब तक मन-मस्तिष्क काम, क्रोध, लोभ-लालसाओं के झोंके से अस्त-व्यस्त, अशांत व उपद्रवी बना रहेगा तब तक वह दिव्य दर्शन निगाह न आ सकेगा और जीवन पर्यन्त मानव जीवन की अनमोलता को नकारते हुए, आधि-व्याधि से त्रस्त रह, दुःख-क्लेश भुगतते रहोगे।

लोभ-लालसा--जन्म से लेकर पुनर्जन्म तक

सजनों यदि हम ध्यान से देखें तो ज्ञात होगा कि मनुष्य में लोभ की भावना आरम्भ में यानि बाल्यावस्था में छोटी-छोटी चीज़ों की कामना के रूप में उदय होती है। इसलिए बच्चे सहज ही जो दूसरों के पास होता है उसे देखकर उसे पाने की जिद्द करते हैं और जिद्द पूरी न होने पर रोने, चोरी करने, झूठ बोलने जैसे अनेकानेक तरीकों का सहारा ले उसे पाने की चेष्टा करते हैं। धीरे-धीरे जैसे-जैसे वे बढ़ते हैं इस लालसा का रूप-स्वरूप तबदील हो तीव्र इच्छा यानि तृष्णा का रूप धार उनकी वांछनीय आवश्यकता के रूप में उनके मन-मस्तिष्क पर पूरी तरह आधिपत्य जमा लेता है और वे उस इच्छा के औचित्य की परख किए बिना उसकी पूर्ति हेतु हर प्रकार का दुष्कर्म व व्यभिचार करने के लिए उतारू हो जाते हैं। यहाँ तक कि वे इस हेतु दूसरों को हानि पहुँचाने से भी नहीं सकुचाते। स्पष्ट है ये लोभ-लालसा मनुष्य से कई अनैतिक कार्य यानि गलत काम करवा लेती है। यही नहीं समय के व्यतीत होने के साथ-साथ सजनों विषयों को भोगने

की यह लालसा विषय-भोग से शान्त नहीं होती अपितु अवस्था बढ़ने के साथ-साथ अग्नि की ज्वाला के सदृश (समान) और अधिक बढ़ती जाती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

जेहड़े वेले वृद्धावस्था आवे,
हाड-मास सारा सुक जावे, अजे वी तृष्णा सताए।

इस तरह सजनों भोग नहीं भोगे जाते यानि भोगों को हम नहीं भोगते अपितु हम ही भोगे जाते हैं, समय नहीं बीतता हम ही बीत जाते हैं, तृष्णा जीर्ण नहीं होती, हम ही जीर्ण हो जाते हैं अर्थात् विषयी प्राणी सोचता है हमने भोग्य-विषयों को भोग लिया पर वास्तव में विषय, विषयी प्राणी को भोग लेते हैं। अंततः तृष्णा से वासना यानि जन्म-जन्मांतरों के प्रभाव से उत्पन्न मानसिक सुख-दुःख की भावना, संस्कार रूप में जन्म ले लेती है और वासना पूर्ति हेतु पुनः-पुनः जन्म लेना पड़ता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती में कहा गया हैः-

वाशना नूं परे हटाओ भैणां,
जन्म मरण तों बच जावो भैणां।
जपो नाम बली ने बताया ए,
हुण रक्षा करो महाबीर रक्षा करो।।

साथ ही एक अन्य भजन में यह भी कहा गया हैः-

ए वाशना किसे पासे न जावे,
वाशना न जावे ते तृष्णा ना सतावे।
गुप्त रूप आख सुनाए,

स्पष्ट है सजनों लोभ-लालसा में निरन्तरता बनी रहती है और लोभ-लालसा की दौड़ निरन्तर आगे बढ़ती रहती है। इसके चक्रव्यूह से निकलना सहज और सरल नहीं। तभी तो कहा गया है कि यह तृषा रूपी चंचल बन्दरिया है, जो दुर्गम्य-दुर्बोध स्थान में भी अपना पाँव टिकाने को उद्यत रहती है। तृप्त हो चुकने पर भी विभिन्न फलों की कामना करती है और अधिक देर तक किसी एक स्थान पर ठहरती नहीं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तृष्णा ही जन्म-जन्मांतरों तक इस मृतलोक में भटकाने का हेतु है।

लोभ-लालसा के विभिन्न भेद

लालसा का क्षेत्र व्यापक होने से इसके अनेक भेद किये जा सकते हैं। इनमें से कुछ के विषय में आपको बताया जाएगा, कृपया ध्यान से सुनना और साथ-साथ अपनी जाँचना करना कि आप किस प्रकार की लालसा में फँस चुके हो:-

पहला सजनः- सजनों मैं हूँ लोक लालसा। जानो कि प्रत्येक संसारी प्राणी को लालसा होती है कि उसे जो इहलोक मिला है, वह उसमें अनन्त काल तक जीवित रहकर लोक के समस्त वैभव को भोगता रहे परन्तु उसकी यह लालसा कभी भी पूरी नहीं हो सकती क्योंकि जन्म-मरण उसके हाथ में नहीं होता। इस प्रकार लोक लालसा के अधीन हुआ इंसान कभी भी इस लोक से विलग नहीं होना चाहता। लोक के सारे ऐश्वर्य भी यदि वह प्राप्त कर ले, तो भी उसका मन कभी तृप्त नहीं होता। धन-धान्य, कुटुम्ब, सम्बन्धी आदि के

प्रति मनुष्य का घनीभूत मोह, उसे लोक में रहने के लिए बाध्य करता है। ऐसा अविचारी मनुष्य ऐसा मानने लगता है कि जगतीय पदार्थ मेरे हैं और मैं उनका हूँ। यहाँ के सुख-वैभव को मैं निरन्तर भोगता रहूँ। यद्यपि वह इस बात से पूर्णतः अविज्ञ होता है कि लोक की तृष्णा महाभयंकर फल देने वाली विष-बेल है। लोक के आकर्षण चित्त को इतने लुभाने वाले होते हैं कि संसारी मनुष्य बार-बार जन्म-मरण के दारुण दुःखों को भोगने के उपरान्त भी इनसे विरक्त नहीं हो पाता। उसकी तीव्र लालसा उसे इन्हीं आकर्षणों में निरन्तर निमग्न रहने को लाचार कर देती है।

दूसरा सजनः- सजनों मैं हूँ भोग-लालसा। उपभोग सम्बन्धी लालसा भोग लालसा कहलाती है। भोगों के प्रति अनुरक्ति मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति है। अतः भोग-उपभोग के प्रति उसकी लालसा स्वाभाविक है जो कभी तृप्त नहीं होती यानि निरन्तर बनी रहती है। भोग-लालसा के वशीभूत हुआ मनुष्य बार-बार विषय सेवन करने पर भी यही चाहता है कि यह अवसर उसे निरन्तर प्राप्त होता रहे। शरीर बूढ़ा हो जाने पर, उसमें झुर्रियाँ पड़ जाने पर, बाल सफेद हो जाने पर, तथा मृत्यु द्वार पर खड़े होने पर भी भोग लालसा कभी बूढ़ी नहीं होती यानि भोगों की प्यास कभी बुझती नहीं, कभी निस्तेज नहीं होती। यहाँ तक कि भोगों की तलाश में मनुष्य स्वजनों और परिजनों की गौरव-गरिमा को धूल में मिलाकर उनके साथ विश्वासघात जैसा भयानक पाप करने से भी नहीं सकुचाता। याद रखो भोग की तृष्णा के मिथ्या आवरण से आच्छादित रहने के कारण ही साधारण जन, ब्रह्मरूप अपने आत्म-स्वरूप को नहीं पहचान पाते। तभी तो कहा गया हैः-

असली रूप असां भुल गए वाशना झगड़े दिखान।
महाबीर पूरन मिल गए, चित्त पाया विश्राम।।

तीसरा सजनः- सजनों मैं हूँ धन लालसा। धन की लालसा का कोई अन्त नहीं। जितना भी रुपया पैसा हो, बैंक बैलेंस हो, धन के लोभी के लिए वह कम ही है। धन के लोभी के लिए तो यहाँ तक कहा गया है कि कुबेर का प्रभूत खजाना भी उसे तृप्त नहीं कर सकता। इसलिए यह बहुत दुःखदायी है। स्पष्ट है कि धन कभी भी दुःखदायी नहीं होता, किन्तु इसको आवश्यकता से अधिक लालचवश प्राप्त करने की, जो अदम्य आकांक्षाएँ हैं, वे दुःखदायी होती हैं। धन की एषणा में धन-वृद्धि की निरन्तर बढ़ने वाली चिन्ता, मनुष्य को अन्ततः चिता तक ले जाती है।

चौथा सजनः- सजनों मैं हूँ पुत्र लालसाः- सुपुत्र की लालसा पुत्र लालसा है। अधिकतर यह लालसा इसलिए पनपती है कि पुत्र आजीवन सुख देगा और मरने के बाद उनकी धन-सम्पत्ति का वारिस बन आजीवन सुखी रहेगा।

पाँचवा सजनः- सजनों मुझे तो आप जानते ही होंगे, मैं हूँ नाम कमाने की लालसा। जैसा कि आप जानते ही हो कि हर व्यक्ति की यह प्रबल आकांक्षा रहती है कि उसका और उसके परिवार का नाम हो। भले ही इसके लिए वह योग्यता या पात्रता न रखता हो। वर्तमान में सर्वाधिक संघर्ष नामेषणा के कारण ही हो रहे हैं क्योंकि इसके अंतर्गत अहंकार का भाव निहित रहता है और अहंकार तो सबको पता ही है कि जिसके सिर पर चढ़ जाता है, उसकी बुद्धि अस्थिर हो जाती है और वह सर्वविनाश का हेतु बनता है। इस तथ्य का

साक्षात् प्रमाण आप आज की पारिवारिक, सामाजिक व वैश्विक परिस्थितियों के रूप में देख सकते हो।

छठा सजनः- मुझे आप कैसे भूल सकते हो मैं हूँ उच्च भौतिक पद पाने की लालसा। वास्तव में मैं भौतिक तौर पर उच्च पद प्राप्ति की लिप्सा हूँ। पद की लिप्सा में व्यक्ति पतन के मार्ग पर चलने में भी नहीं हिचकता। यहाँ तक कि कभी-कभी उसका यह कुत्सित प्रयास भी रहता है कि वह अपने प्रतिद्वन्द्वी को अपने मार्ग से हटाकर पद या प्रतिष्ठा को प्राप्त करे। याद रखो ऐसी बुरी नीयत वाले इंसान के अन्दर ही द्वि-द्वेष का बीज अंकुरित होता है और पारस्परिक सम्बन्ध व एकता भंग हो जाती है।

सातवाँ सजनः- सजनों मैं हूँ यश-प्राप्ति की लालसा। प्रत्येक मनुष्य की यह इच्छा रहती है कि उसके यश का विस्तार हो। यश-कीर्ति की भूख हर मानव में थोड़ी-बहुत दिखाई देती है, किन्तु इस हेतु मनुष्य का कार्य, व्यवहार अर्थात आचरण यशानुरूप होना आवश्यक होता है। जान लो कि कभी-कभी मनुष्य यश लिप्सा में इतना मदान्ध हो जाता है कि अपने सहभागी की दैहिक लीला को नष्ट करके भी यदि उसकी यशोषणा को क्षणिक तृप्ति मिलने की सम्भावना हो, तो वह जघन्य पाप करने में भी नहीं झिझकता।

पहला सजनः- सजनों मुझे तो आप जानते ही होंगे, मैं हूँ सम्पत्ति प्राप्ति की लालसा। सजनों अधिकतर प्राणियों में अधिकाधिक सम्पत्ति-प्राप्त करने की लालसा रहती है। वास्तव में सजनों यदि धन-धान्य परिपूर्ण यह सारी सृष्टि किसी एक व्यक्ति को दे दी जाए, तब भी उसे सन्तोष नहीं

होता है। इस एषणा के वशीभूत मनुष्य परस्पर द्वन्द्वों व द्वेष में ही अपना सारा जीवन व्यर्थ बिता देता है।

दूसरा सजनः- सजनों आप में से अधिकतर सजनों को रूपवान बनने की लालसा होगी। तो मैं हूँ रूपवान या रूपवती होने की लालसा। बाह्य सौन्दर्य के लिए स्त्री-पुरुष सदा लालायित रहते हैं। वे इसके लिए किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। दूसरों की अपेक्षा मैं अधिक सुन्दर लगूँ, यह एषणा रुपेषणा के अन्तर्गत आती है।

तीसरा सजनः- सजनों मैं हूँ बलवान होने की यानि शक्तिवान बनने की लालसा। अधिकतर मनुष्यों में दूसरों से अधिक बलवान व शक्तिधर होने की लालसा रहती है। पहलवान एक-दूसरे से अधिक शक्तिशाली होने की एषणा लिए हुए होते हैं, लेकिन उनकी यह एषणा शारीरिक बल तक ही सीमित होती है जबकि बलेषणा में आत्म-शक्ति या आत्म-बल भी निहित होता है।

चौथा सजनः- मुझसे सब जन परिचित हैं क्योंकि मैं हूँ ज्ञानवान बनने की लालसा। ज्ञान लालसा में ज्ञान प्राप्ति की एषणा रहती है। सजनों आज का युग स्पर्धा-प्रतिस्पर्धा का युग है। चाहे जो भी हो, हर कोई विभिन्न विषयों की अधिक से अधिक जानकारी या ज्ञान रखने की आकांक्षा संजोए हुए है। उसे किसी भी क्षेत्र में पराजय स्वीकार नहीं है। इसीलिए वह ज्ञानवान बन दूसरों को नीचा दिखाने के लिए यह लालसा अपने मन में संजोए रखता है और इसी दौड़ में दिन का चैन और रात्रि की नींद खो बैठता है।

सजनों अभी आपने रजोगुण व तमोगुण के कारण पनपने

वाले लोभ के विभिन्न प्रकारों के बारे में जाना। आओ अब लोभी व्यक्ति की प्रकृति व स्वभाव तथा उसके दुष्प्रभावों के विषय में जानते हैं:-

पहला सजन:- लोभी या लालची मनुष्य अपनी इच्छा/वासना की पूर्ति हेतु बहुत अधीर होता है इसलिए उसके मन में सदैव दूसरों के पदार्थ/धन-सम्पत्ति को लेने/पाने की प्रबल अभिलाषा, कामना या तृष्णा बनी रहती है, जिससे असंतोष, अधैर्यता, कृपणता या कंजूसी आदि अवगुण भी उसमें आ जाते हैं।

दूसरा सजन:- लोभी के नेत्र कामनायुक्त हो चारों तरफ नाचते हैं यानि चंचल होते हैं। यही नहीं लोभी जब किसी चीज़ के अप्राप्य या पहुँच के बाहर होने के कारण उसके प्रति अत्याधिक लालायित हो जाता है तो लालच के कारण उसके मुँह में बहुत अधिक पानी भर आता है और लार टपकने लगती है यानि जीभ लपलपाने लगती है और उसकी प्राप्ति की जबरदस्त भूख उसमें उत्पन्न हो जाती है। यह भूख भोजन सम्बन्धी भी हो सकती है व काम सम्बन्धी भी। इस भूख की तृप्ति हेतु वह लोभ में अंधा हो, आत्मनियन्त्रण छोड़, कई गुनाह कर बैठता है।

तीसरा सजन:- लोभी मनुष्य की पिपासा कभी शान्त नहीं होती यानि उसकी अनुचित या अवांछित इच्छा की माँग या हसरत सदैव बढ़ती ही जाती है। चूँकि लोभ के कारण मनुष्य की प्रवृत्ति तुच्छ प्रलोभनों के चंगुल में फँस अपना जीवन ईर्ष्या, द्वेष, चोरी, ठगी और झूठ के गर्त में ढकेल देती है, इसलिए तो सजनों सच्चेपातशाह जी कहते हैं:- **'लोभ**

लालच का नाम है। लोभ में आकर इंसान कई गलत काम कर बैठता है और अपनी विचारशक्ति खो बैठता है।'

पहला सजनः- लालची यानि लोभी की नीयत व दृष्टि कभी स्पष्ट व साफ़ नहीं होती क्योंकि दूसरों के पदार्थ, धन, सम्पत्ति, हिस्से इत्यादि को हड़पने की इच्छा उसमें सदैव बरकरार रहती है। वह चाहता है कि जो दूसरों का है, वह भी मेरा हो जाए या प्रत्येक जो सुंदर वस्तु है उस पर मेरा आधिपत्य स्थापित हो जाए। उसकी नीयत ही नहीं अपितु दृष्टि भी भूखी होती है। रसों का आस्वादन करने के लिए जैसे उसकी जिह्वा सदैव लालायित रहती है वैसे ही सुंदर वस्तुओं को देखकर उन्हें भोगने के लिए उसकी नज़रें भी सदा भूखी ही रहती हैं। इच्छा पूर्ति का साधन प्रकट होते ही वह एक पल का समय भी गंवाए बिना उसको हड़पने के लिए आतुर हो जाता है। छीना-झपटी पर उतर आता है। सम्बन्धों की भी परवाह नहीं करता। मिलावट, बनावट, ब्लैक, कम तोल, अधिक दाम, कम मज़दूरी देना, दूसरे के व्यापार को हानि पहुँचाना, जायज़-नाज़ायज़ सब तरीकों से वह धन व माल का संचय करता है।

दूसरा सजनः- लोभी स्वभावतः ईर्ष्यालु होता है। दूसरे की उन्नति, लाभ, धन-सम्पत्ति और सुख-सुविधा को अपनी उन्नति, लाभ, धन-सम्पत्ति और सुख-सुविधा से अधिक होता देख वह सहन नहीं कर सकता और उन्हें प्राप्त करने हेतु अनेक प्रकार के षड्यंत्र रचता है।

तीसरा सजनः- लोभी अपराध-बोध से ग्रसित रहता है क्योंकि वह अन्दर ही अन्दर जानता है कि उसने अपनी

लोभ-लालसा को पूर्ण करने के लिए क्या-क्या अनैतिक कर्म किए हैं।

पहला सजनः- लालची यानि लोभी कंजूस होता है अर्थात् वह पदार्थ विशेषतः धन का भोग न तो स्वयं करता है न ही दूसरों को करने देता है। ऐसा व्यक्ति अपने हिस्से में से बहुत थोड़ा खर्चता है और जो खर्चता भी है उसके लिए भी सदा रोता-झुखता रहता है। यह आदत उसे स्वार्थी व संकीर्ण हृदय बना देती है और इसके वशीभूत हो वह क्षुद्रता यानि छल-कपट कर नीचता, कमीनापन, ओछापन, अधमता व क्रूरता दिखाता है।

दूसरा सजनः- याद रखो लोभी मनुष्य की सच्चाई जब सबके सम्मुख प्रकट होती है, तो वह स्वयं को शर्मसार व अपमानित महसूस करता है। लोभी की यश-कीर्त्ति उसकी करनी के कारण धूल में मिल जाती है।

तीसरा सजनः- सजन जी, लोभी की प्रवृत्ति तो समझ में आ गई, अब ज़रा लोभ के दुष्प्रभावों से भी परिचित कराओ।

पहला सजनः- हाँ हाँ क्यों नहीं। जानो लोभ की भावना मनुष्य को अति की ओर ले जाती है। आहार-व्यवहार तथा हर क्षेत्र में अति अत्याचार है। इस प्रकार लोभ मानव को अत्याचारी बनाता है और इसका, उसकी मानसिक व शारीरिक स्थिति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसीलिए अति सर्वत्र वर्जित कही गई है और भय रहित जीवन जीने योग्य बनने हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

लोभ सतावे रघुनाथ जी दा रस्ता भुलावे,
भय दिखावे हरदम महाराज।

दूसरा सजनः- भोजन में अति यानि लोभ करने से अपच होता है जिससे उदर विकार होता है और मल कुपित होकर शरीर में नाना प्रकार की व्याधियां उत्पन्न करता है। आशय यह है कि शरीर के जिस अंग से उचित पाचन होने पर सही रस बनता है, ऊर्जा बनती है और पूरे शरीर को शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त होती है, लोभ के कारण उसी पाचन अंग के बिगड़ने पर शुद्ध रस रक्त आदि के स्थान पर दूषित रस-रक्त आदि उत्पन्न होने से अनेक रोग होने लगते हैं। इसी प्रकार अच्छे स्वाद के लोभ में हम तामसी/राजसी पदार्थ यानि नाना प्रकार के तेज़ मिर्च मसाले और खटाई वाले व्यंजन खाकर अपने पेट और पाचन शक्ति का सत्यानाश कर लेते हैं और शरीर को रोगों का घर बना लेते हैं। हम कह सकते हैं कि लोभ शारीरिक स्वस्थता का भक्षक है क्योंकि लोभवश अधिक खाने से शरीर में त्रिदोष उत्पन्न हो जाते हैं यानि वात-पित्त-कफ असंतुलित हो जाता है और इन से जनित रोग/दोष बढ़ जाते हैं और जीवन निराशापूर्ण हो जाता है।

तीसरा सजनः- इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लोभ में हमारा जीवन भय, चिन्ता, आशंका, अपराध-बोध और तनाव से भर जाता है। हम कह सकते हैं कि लोभ मानसिक स्वस्थता का भी भक्षक है क्योंकि लोभ के वशीभूत हुआ व्यक्ति कभी मानसिक रूप से स्वतन्त्र नहीं हो पाता। उसे सदैव जो उसके पास संचित होता है, हमेशा उसकी रक्षा की व भविष्य में उसे दिन दुगुना व रात चौगुना करने की चिंता व भय सताता रहता है। वह हमेशा इसी सोच में दिन-रात डूबा रहता है। इस प्रकार अन्दरूनी शांति व प्रसन्नता का स्थान

चिंता ले लेती है और मनुष्य व्याधिग्रस्त हो अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। नतीजा-आनन्द की स्थिति बिगड़ने से मनुष्य की चिन्तन-शक्ति क्षीण हो जाती है। स्नायविक नियंत्रण ढीला होने से शिथिलता और आलस्य वृत्ति घेर लेती है। निद्रा बढ़ जाती है तथा स्मृति नष्ट हो जाती है तथा मन दुर्बल व चंचल हो जाता है। परिणामस्वरूप किसी भी काम में मन नहीं लगता जो अपने आप में नीरसता से परिपूर्ण जीवन जीने का परिचायक होता है।

पहला सजनः- भोग विलास का आनन्द प्राप्त करने के लोभ में हम धन के साथ-साथ शरीर व स्वास्थ्य का भी नाश कर बैठते हैं।

दूसरा सजनः- लोभ बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है। ऐसा व्यक्ति न तो किसी बात के प्रत्येक अंग पर पूर्णतः विचार कर सकता है और न ही विवेक द्वारा किसी दृढ़ निश्चय पर पहुँच सकता है। इसी कारण वह स्वार्थपर हो किसी पदार्थ को पाने के लोभ में पागल तक हो जाता है यानि उसकी होश हवास मारी जाती है। इस सन्दर्भ में सजनों इतिहास गवाह है कि लोभ ने धर्मराज युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा की भी बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने सगे भाईयों व पत्नी को भी जुए में दाँव पर लगा दिया था। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

जिस वेले भैणां नूं लोभ जो आवे,
होश हवास पिया भुलावे ।

लोभ तों आप बचा सुरति,
तूं अपना आप बना सुरति ।।

तीसरा सजनः- लोभ के वशीभूत मनुष्य खुशहाल व शांतिमय जीवन से सदा वंचित रहता है क्योंकि उसकी विषयों को प्राप्त करने की क्षुधा कभी नहीं मिटती। वह सब कुछ प्राप्त हो जाने पर भी कभी संतुष्ट नहीं होता तथा सदैव और-और की तलाश में भटकता रहता है। इस प्रकार वह अनजाने में स्वयं अपने सुखमय जीवन पर घात लगा कर खुद को ही हानि पहुँचाता है तथा संतोष रूपी सच्चे धन से सदा वंचित रह सच्ची सुख-शांति का अनुभव कदापि नहीं कर पाता।

चौथा सजनः- लोभ नरक व पाप का द्वार है क्योंकि इसके अंतर्गत दूसरों की सम्पत्ति, सम्पदा, राज्य-वैभव को अपने अधीन करने की कुत्सित कामना सम्मिलित होती है। चाहे संसार की समस्त भौतिक सम्पदाएँ लोभी के अधिकार में हो जायें, तब भी और अधिक प्राप्ति की भौतिक लालसा, संघर्षों एवं क्लेशों को जन्म देकर, सर्वनाश की स्थिति का ही सृजन करती है। इस तरह यह मनुष्य को प्राप्त सुखों को भी हर लेती है। इस संदर्भ में यदि हम अतीत की परछाईयों में देखें तो ज्ञात होगा कि लोभ के पीछे छिपी अधिकार व प्रतिशोध की भावना ने स्त्री, सत्ता, राज्य, भूमि व धन-धान्य के लिए कितने ही शासकों के मध्य भयंकर युद्ध करवा दिए और युद्ध की विभीषिका में असंख्य निर्दोष लोगों के रक्त बहा दिए। इस प्रकार अत्याचारी लोभ, झूठ-छल-कपट, धोखाधड़ी, चोरी-ठगी, विश्वासघात आदि के माध्यम से, हिंसात्मक रूप

धार व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक व प्राकृतिक सुख-समृद्धि की समूलतः तबाही कर देता है और अशुभ व निन्दनीय माना जाता है।

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि सब कुछ पा लेने की लोभ-लालसा के कारण ही मनुष्य आशा-तृष्णा के चक्रव्यूह में फँस जाता है और परस्पर द्वि-द्वेष से ग्रसित हो स्वयंमेव संकल्पों-विकल्पों में फँसता चला जाता है। नतीजा संकल्प कुसंगी हो जाता है, ख़्याल अस्वच्छ हो जाता है, ध्यान भौतिक नश्वर पदार्थों की प्राप्ति में उलझकर बिखर जाता है क्योंकि दृष्टि वस्तुओं और व्यक्तियों का यथार्थ स्वरूप व गुण देखने की योग्यता खो बैठती है। इस तरह संसारी फुरनों का अंबार लग जाता है और बुद्धि भ्रमित हो भ्रष्ट हो जाती है यानि अपनी विचारशक्ति खो, सत्य-असत्य या भले-बुरे का ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाती।

यही नहीं, स्वार्थपरता की भावना व्यक्तिगत स्तर पर हावी होने के कारण, अपने भी पराए नज़र आते हैं और दूसरों के प्रति सजनता का व्यवहार छूटने लगता है। फलतः जिह्वा से गाली-गलौज और अपशब्दों का प्रयोग आरंभ हो जाता है और जिह्वा स्वतन्त्रता खो बैठती है। इतना ही नहीं मनमत के अधीन हुआ ऐसा लोभी इंसान ग़लत आहार-विहार के कारण अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान नहीं रख पाता और आधि-व्याधि ग्रस्त हो चिंता, तनाव और अवसाद के कारण दुस्साध्य रोगों का शिकार हो जाता है। कुल मिला कर सजनों यदि हम देखें तो लोभी की प्रवृत्ति अनैतिक आचरण को बढ़ावा देती है जिसके परिणामस्वरूप मानव दुष्चरित्र हो

जाता है और उसकी प्रारब्ध दुःखदायी हो जाती है। इस तरह मनुष्य जन्म पाकर भी मानव को शरीर की नश्वरता और आत्मा की अमरता का ज्ञान नहीं हो पाता और वह सम्पत्ति, ऐश्वर्य, सत्ता यानि अच्छा बंगला, गाड़ी, कपड़े, गहने, और सुख-सुविधा के साधन प्राप्त करने की होड़ में जीवन लक्ष्य के प्रति अचेतन हो, बार-बार आवागमन की त्रास भुगतता है।

हमारे साथ ऐसा न हो इस हेतु सजनों आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर अपने ह्रदय से समस्त संकल्पों के हेतु अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करो और ए विध् संतोष के आश्रय पर स्वयं को आत्मनियन्त्रित रखते हुए मन को संकल्प रहित अवस्था में स्थिर कर लो। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि कहते है सजनों, जब संतोष धन प्राप्त हो जाता है तो समस्त भौतिक धन व सुख-संसाधन मिट्‌टी के समान नश्वर प्रतीत होते हैं। इस प्रकार संतोष अपनाने से मनुष्य सर्वदा किसी बात की चिंता, अपेक्षा, कामना व शिकायत न करते हुए अपनी हैसियत में प्रसन्न बना रहता है और लोभ जैसा विकार स्वतः ही दूर हो जाता है। याद रखो इस प्रकार जब मनुष्य मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है, तब वह आत्मा से ही आत्मा में सन्तुष्ट हुआ स्थिर बुद्धि हो जाता है यानि कामनाओं के त्यागने पर ही आत्मा का दिग्दर्शन होता है। ऐसा आत्माराम, आत्मतृप्त महापुरुष ही स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

अतः सजनों अपने को किसी स्थान, व्यक्ति, पदार्थों और परिस्थिति से बांधो नहीं। इस संदर्भ में जानो कि विष्णु का

अर्थ है जो सारे संसार को अविरुद्ध किये हुए हैं। अपना स्वरूप ऐसा बना लो, जिसके बाहर कोई वस्तु है ही नहीं। अपना स्वरूप ही विष्णु है, जिसके बाहर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इसी साधना से अपना व मानवता का विराट कल्याण सिद्ध हो सकता है।

सबकी जानकारी हेतु इसी श्रृंखला में आगामी सप्ताह हम मोह के विषय में बातचीत करेंगे।

मोह

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,

इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताहों में सजनों हमने जाना कि आकर्षण की ओर दौड़ना मनुष्य का स्वभाव है। संसार के रंगारंग मायावी आकर्षण मन को छल कर मोहने वाले होते हैं। इसलिए आत्म-यथार्थ के प्रति अनभिज्ञ मनुष्य विषयी जगत के इन आकर्षणों की तरफ आकृष्ट हो इनकी तरफ खिंचा चला जाता है और उन्हें पाने के लोभ में तरह-तरह की कामनाएँ करने लगता है। इस तरह भौतिक पदार्थों के प्रति आसक्ति यानि अत्याधिक लगाव के कारण वह इस नश्वर जगत से अपना संम्पर्क जोड़ बैठता है और धीरे-धीरे उसमें जगत के पदार्थों को अपना बनाने की इच्छा बलवती होती जाती है। इसी तीव्र इच्छा के वशीभूत हुए इन्सान के मन में संकीर्ण

मनोवृत्तियाँ पनप जाती हैं और उसकी बुद्धि भ्रमित हो विवेक खो बैठती है। तब फिर वह सत्य-असत्य, भले-बुरे और इच्छाओं व आवश्यकताओं में भेद करने में असमर्थ हो जाता है। क्रमशः उसमें अपनी प्रत्येक अभिलाषा की पूर्ति की लालसा जाग्रत हो जाती है जिससे विषयी पदार्थों में राग-द्वेष तथा मोह-ममता बढ़ती जाती है। परिणामस्वरूप मनुष्य, मोहवश ईश्वर का ध्यान छोड़कर शरीर तथा सांसारिक वस्तुओं को अपना सब कुछ समझने लगता है और उस अज्ञानयुक्त स्वार्थपथगामी का सच्चाई-धर्म का निष्काम रास्ता छोड़ कुकर्म-अधर्म के मार्ग पर अग्रसर होना सुनिश्चित हो जाता है। इसी सन्दर्भ में आओ अब आगे जानें कि मोह क्या है?

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों मोह शारीरिक दरख़्त को लगा हुआ चौथा विकार है। इसलिए तो कहा गया है:-

चौथी टहनी है मोह माया वाली वे,
चौथी टहनी मोह माया वाली।।
निन्द्रा विच उमर बितावे वे।
दरख़त दियां टहनियाँ नूं रस्से लटकन।
फाँसी दा भय खावे।
दरख़त दियां टहनियाँ नूं रस्से लटकन।
वे दरख़त दियां टहनियाँ नूं रस्से लटकन।
फाँसी दा भय खावे, जीव घबरावे।

मोह की परिभाषा

सजनों ईश्वर का ध्यान छोड़कर शरीर तथा सांसारिक

वस्तुओं को अपना तथा सब कुछ समझने की बुद्धि मोह कहलाती है। मोह को तामसिक प्रवृति के रूप में स्वीकार किया गया है और कहा गया है कि मोह धोखा है अर्थात् असत्य को ही सत्य समझकर स्वीकारना है। यह अज्ञान यानि जड़ता की स्थिति है जिसके अन्तर्गत जब बुद्धि फँस जाती है तो और अधिक फँसती जाती है। मोह के प्रभाव से उत्पन्न इस अज्ञान / भ्रम आदि से ग्रस्त हो, लगातार उसी में डूबे रहने पर इन्सान मोह-निद्रा रूपी मूर्छा या बेहोशी सी अवस्था में चला जाता है और मोहान्ध हो सत्य को नहीं देख पाता। इस प्रकार यह मोह अन्तःकरण की दुर्बलता व निर्बोधता का प्रतीक है, जिसके अन्तर्गत चित्त विकल बना रहता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में यह कहा गया है:-

मोह माया दी नींद में भैणां सोई,
हर पासियों ओ बन्धनमान होई।
मोह माया दे जाल विच सोई,
सारी उमर बिना नाम दे खोई।।

जान लो सजनों मोह, प्राणी अथवा पदार्थपरत दोनों प्रकार का हो सकता है। दोनों ही अवस्थाओं में यह आसक्ति का पोषक होता है।

मोह और लोभ

मोह, लोभ द्वारा उत्पन्न होने वाली भ्रान्ति भी है। इस सन्दर्भ में सच्चेपातशाह जी कहते हैं **'लोभ का दोस्त है मोह'**, **'जब किसी ने लालच दिखाया तो उसके साथ मोह पड़ जाता है। मोह में पड़कर इन्सान अनीतियों पर चलना शुरु कर देता है। सच्चाई धर्म को छोड़ देता है।'**

मोह और ममता

मोह अपने शरीर, सांसारिक सम्बन्धों, धन-सम्पत्ति आदि में आसक्ति या ममता का प्रतीक भी है क्योंकि ममता को मोह और आसक्ति उत्पन्न करने वाला दुर्गुण माना गया है। यहाँ ममता से तात्पर्य 'मम' या 'मेरा' के भाव से है। यह ममता आकर्षण से युक्त है तथा वस्तु/व्यक्ति के रूप, भौतिक ऐश्वर्य, धन-सम्पत्ति आदि के प्रति आकृष्ट होकर उनको अपना यानि मेरा समझने के कारण होने वाला प्रेम या अनुराग है जिससे स्वामित्व की भावना पनपती है। याद रखो वस्तु के प्रति ममता लोभ में और व्यक्तियों के प्रति ममता मोह में आबद्ध करती है। सरल शब्दों में लोभ, मोह, स्वार्थ, स्वत्व अधिकार और गर्व भावना से युक्त यह ममता, क्षणभंगुर व नाशवान भौतिक उपलब्धियों व सगे-सम्बन्धियों में मानव को बन्धनमान करके, मोहपाश यानि मोह रूपी फाँसी के फन्दे में फँसाने वाली है। इसलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

कुटुम्ब कबीला पिया सतावे, मोह माया दी फाँसी लावे।

इस सन्दर्भ में अन्यत्र धर्म-ग्रन्थों में कहा गया है कि ममता रूपी काली रात्रि राग-द्वेष रूपी उलूकों के लिए ही सुखकारी है क्योंकि उन्हें उजाले में कुछ दिखायी नहीं देता। ऐसे अशुभ मानव तो उल्लू की भान्ति मूर्ख बन जगत के प्रपंच में ठगे जाते हैं। यही नहीं संकीर्णता की पर्याय यह मोह-ममता समता की विरोधिनी है तथा आध्यात्मिकता के मार्ग में अवरोधक है। इसलिए तो भौतिक जीवन में लिप्त होने वाले

सांसारिक व्यक्ति, मृत्युपर्यन्त इस मोह-ममता से छुटकारा नहीं पा पाते। इसी मोह ममता से छुटकारा पाने के लिए ही सुरति कहती है:-

चरण कमल मन में बसे, इच्छा धरहुं न कोय।
चिन्ता ममता त्याग के, बुद्धि सफल यूं होय।।

मोह और माया

जानो कि परमात्मा की मोहकारिणी शक्ति को माया कहा जाता है। इसलिए मोह, मायाग्रस्त करने वाला होता है यानि मायाजाल/माया के फंदे में फँसाने वाला होता है। माया कोई भी आकृति या बात का रूप या आवरण धारकर जीवों को भ्रमित करती है। इस मोह-माया में भ्रमित होने वाला मानव किसी वस्तु को और का और समझने लगता है और उसके मन में मिथ्या ज्ञान, संशय, धोखा उत्पन्न हो जाता है। ऐसा होने पर वस्तु के न रहने पर भी उसके अस्तित्व की मिथ्या प्रतीति होती है और मानव विभ्रमित हो, कुछ का कुछ करता है। जान लो इसी भ्रम के कारण ही जगत सत्य प्रतीत होता है और मानव मायावाद के सिद्धान्त को अपनाकर, ईश्वर के अतिरिक्त सृष्टि की समस्त वस्तुओं को नित्य तथा सत्य मानता है। याद रखो माया के द्वारा उत्पन्न धन-सम्पत्ति, सम्बन्ध, भौतिक संसाधन आदि आकर्षित कर फँसा लेने वाले जादू के समान बन्धन तुल्य हैं। इसलिए मोह-माया को मायाविनी और ठगनी बताकर इसकी निन्दा की जाती है। इस सन्दर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

माया डंगे ओ उन्हाँ ही ताईं,
जेहड़े माया दे विच गलतानी।
माया नटनी ने कईयां नूं नचाया,
जिवें नचे गणिका रानी।।

माया डंगनी ने कईयां नूं डंगया,
जैं माया दी रमज़ न जानी।
माया छलनी ने कईयां नूं छलया,
जैं माया दी मर्म न जानी।।

माया डंगे माया पीड़ा दिखावे,
जगत दे जीव राहवन परेशानी।

इसी सन्दर्भ में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ प्रत्येक जीव को इस सत्य से परिचित कराता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में माया का ही झूठा विस्तार है, जो जीवों को विषयों में आसक्त करने की सामर्थ्य रखता है। यथार्थ में यह सब झूठा आयोजन है जो जीवों को राग-द्वेष आदि में फँसाता है। जो भी इस सत्य को जान जाता है वह कभी भी माया की ऊपरी बनावट में लिप्त नहीं होता अपितु सदा इससे निर्लेप रहता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

माया दा विस्तार रचावे, माया दा आडम्बर
माया तों निर्लेप ओ राहवे, श्याम सिलौना ओ मन-मन्दिर

स्पष्ट है सजनों मोह इन्सान के ख़्याल को नश्वरता यानि संसारी प्रपंच से जोड़ता है और मानसिक अव्यवस्थता की स्थिति उत्पन्न करता है। इस सांसारिक प्रपंच में फँसाव के

कारण मानव अपने आध्यात्मिक स्वरूप और आत्मिक-कल्याण का विस्मरण/उपेक्षा करता है और अभीप्सित वस्तु के अतिरिक्त और किसी भी विषय पर विचार करने में असमर्थ हो जाता है यानि उसे उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं रहता और वह विवेकहीन मूर्ख सजन अचेतन हो, नाना प्रकार का संताप व पीड़ा भुगतता हुआ सदा व्याकुल व परेशान रहता है। इसीलिए ग्रन्थ में यह भी कहा गया है:-

मोह माया बिना ग़मगीन होया,
ग़मगीन होया परेशान होया,
भुलिया धन दियां मौजाँ माणदा ए,
ग़र्ज मार ग़रीब डरांवदा है।

इस प्रकार सजनों मोह-जाल में फँसा व्यक्ति जीवन की सत्यता के प्रति नासमझ और अज्ञानी बना रह मूर्खों सा जीवन व्यतीत करता है। यही नहीं यह मोह मानव को स्वार्थी भी बनाता है, इसलिए मोहवश प्राणी एक-दूसरे का अहित करने से भी नहीं सकुचाता और अन्ततः चार प्रकार की अनर्थकारी व्याधियों यथा अन्तःकरण दौर्बल्य, मिथ्या-तृष्णा, चित्त की अस्थिरता, मन की चंचलता यानि संताप का शिकार हो जाता है। इस तरह कुदरत ने इंसानियत में बने रहने की जो सारी व्यवस्था की होती है, वह सारी व्यवस्था ही बिगड़ जाती है। आओ अब जानते हैं कि मोह और राग व मोह और आसक्ति का क्या सम्बन्ध है:-

मोह और राग

किसी प्रिय या अभिमत (मनो-वांछित) इष्ट वस्तु के प्रति मन

में उत्पन्न होने वाला भाव/झुकाव या सुख को प्राप्त करने की अभिलाषा अथवा उसके प्रति अनुराग/आसक्ति का भाव राग कहलाता है। अन्य शब्दों में जब कोई व्यक्ति सुख भोगता है तो उसकी प्रवृत्ति और सुख पाने की होती है, इसी प्रवृत्ति को राग कहा जाता है। वस्तुतः यदि देखा जाये तो मनुष्य मात्र ही नहीं, अपितु प्राणी मात्र जन्मजात ही किसी न किसी रूप में राग-ग्रस्त रहता है क्योंकि सुख के अनुभव के पश्चात् रह जाने वाला संस्कार यानि सुखप्रद वस्तु में लगाव रूप भाव 'राग' है, एवं संस्कार जन्म-जन्मान्तर तक साथ चलते रहते हैं। इस अर्थ से सजनों जो-जो सुख संसार में साक्षात् भोगने में आते हैं, उनके संस्कार की स्मृति से जो तृष्णा के लोभरूपी सागर में बहना है, वही राग है।

याद रखो राग का मूल अविद्या है यानि इन्द्रियों व संस्कारों के दोष से उत्पन्न दुष्ट, मिथ्या व विरुद्ध ज्ञान है। मुख्यतः यह राग पहले मानसिक होता है। प्रारम्भ में व्यक्ति किसी रूप या पदार्थ को देखकर उससे मानसिक सम्बन्ध स्थापित करता है। पुनः उसकी प्राप्ति के लिए क्रियात्मक प्रयास आरम्भ करता है। इस प्रकार राग के लिए आवश्यक तत्व है आलम्बन/साधन। व्यक्ति के पास जितने अधिक भौतिक साधन/आलम्बन होते हैं, वह उतना ही अधिक रागी होता है। इस सन्दर्भ में वर्तमान युग में तो राग विकसित करने के इन साधनों यथा सिनेमाघर, इन्टरनेट, दूर-दर्शन, अश्लील साहित्य, सह-शिक्षा, मोबाईल-फोन आदि की संसार में बाढ़ सी आई हुई है, इसलिए आदमी बन्धनमान है। मत भूलो इन सांसारिक सुखों के प्रति मन में जितनी अधिक रागात्मकता होती है, चित्त उतना ही अधिक अशान्त रहता है। इस प्रकार

रागात्मकता कर्मों से बान्धती है। सजनों जान लो कि अपनी रागात्मक प्रवृत्ति के कारण ही इन्सान माया-मोह के जाल में फँस जाता है।

मोह और आसक्ति

सजनों मोह आसक्ति का पोषक होता है। आसक्ति का मुख्य अर्थ लगाव अथवा जुड़ाव है अर्थात् जब किसी का किसी व्यक्ति, पदार्थ, विषय, उद्देश्य आदि से गहरा यानि अत्याधिक लगाव या जुड़ाव हो जाता है, तो उनके सामीप्य की गम्भीरता व्यक्त करने के लिए आसक्ति शब्द प्रयुक्त होता है। आसक्ति शब्द का एक अभिप्राय लिप्तता भी है। इस अर्थ से रूप, धन, मान, पद तथा लौकिक विषयों भोगों आदि में आसक्ति हानि का कारण होती है क्योंकि आसक्ति की स्थिति में मनुष्य सम्बन्धित विषय की प्राप्ति के लिए उद्यत रहता है और अप्राप्ति या असफलता की दशा में प्राणों के लेने-देने पर उतारु हो जाता है। इस प्रकार आसक्ति मनुष्य को नीच और दुर्बल बनाने वाली है तथा पाप पंक में धकेलने वाली है। गृहस्थ आश्रम में आसक्ति मूलक ममत्व बुद्धि व मोह रखने से और उनके सुख-दुःख की चिन्ता से संतप्त रहने के कारण मनुष्य का अन्तःकरण सदा व्याकुल रहता है तथा आसक्त जन अपने एवं उनके पापों से संसार में भटकता रहता है। आसक्ति का त्याग किये बिना मनुष्य आत्मिक शान्ति नहीं पा सकता।

इस तथ्य से सजनों स्पष्टतः ज्ञात हो रहा है कि अनासक्ति काम, कामना, लोभ, मोह-माया रूपी इन मनोविकारों से छुटकारा पाने की अचूक औषधि है। जिस प्रकार औषधि

सेवन करने से बड़ी से बड़ी व्याधि मिट जाती है, उसी प्रकार अनासक्ति का आश्रय लेने से मन को ये विकार प्रभावित नहीं कर पाते तथा मनुष्य दुष्कर्मों की ओर प्रवृत नहीं होता। अतः इन शत्रुओं से अपनी रक्षा करने हेतु सजनों विषयों या वस्तुओं के प्रति अनुरक्ति या अनासक्ति का भाव अपनाओ। याद रखो आसक्ति बन्धन में डालती है व अनासक्ति बन्धनमुक्त करती है।

आसक्ति निम्न स्थिति से उच्च स्थिति तक जाने के प्रगतिपथ में अवरोध उत्पन्न करती है व अनासक्ति मार्ग में आने वाले अवरोधों को क्षण में दूर कर उत्थान पथ पर प्रशस्त करती है। यही नहीं भावी जन्म के निर्धारण में भी, पूर्व जन्म में रही अमुक वस्तुओं, व्यक्तियों, स्थितियों के प्रति आसक्ति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है जबकि अनासक्ति जीवन मुक्त कर देती है। याद रखो यह आसक्ति श्रेष्ठ और निकृष्ट दोनों ही कर्मों, स्थितियों आदि के प्रति हो सकती है। इस सन्दर्भ में आसक्ति यदि निकृष्ट कर्मों में होती है तो यह व्यक्ति को नीच योनियों में प्रशस्त कर देती है और आसक्ति यदि श्रेष्ठ स्थिति के प्रति होती है तो वह आत्मिक ज्ञान की निर्मल धारा से सिंचित हो शनैः शनैः विरक्ति व भक्ति का रूप ले लेती है तथा जीव का भावी जन्म उसी घर में होता है जहाँ अनुकूल वातावरण प्राप्त कर वह आगे की यात्रा तय करता है। कहने का आशय यह है कि आसक्ति श्रेष्ठ कर्मों की तरफ हो या निकृष्ट कर्मों की तरफ, दोनों का अच्छा या बुरा परिणाम तो निकलता ही है।

उपरोक्त तथ्य के सन्दर्भ में सजनों हम आसक्ति एवं भक्ति इन

दोनों पक्षों को भी स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं। जानो कि आसक्ति एवं भक्ति दोनों शब्द, दो पक्षों में गहरे जुड़ाव को विज्ञापित करते हैं। दोनों में मनुष्य प्राप्य की प्राप्याशा में सब कुछ न्योछावर करने को उद्यत रहता है, अतः दोनों की दशा एक है, किन्तु दोनों का लक्ष्य भिन्न है। आसक्ति लौकिकता में अनुराग दर्शाती है, जबकि भक्ति अलौकिकता की ओर ले जाती है। धन, जमीन, परिवार, पद - इनकी लिप्तता आसक्ति है, जबकि परमात्मा में व्यस्तता भक्ति है। भक्ति और विरक्ति में कोई भेद नहीं है। दोनों सहोदरा हैं, एक-दूसरे की पुष्टि करती हैं। जहाँ भक्ति होती है, वहाँ विरक्ति स्वतः बढ़ती है और जहाँ विरक्ति होती है, वहीं भक्ति का सुख अंकुर फूटता है। आसक्ति और विरक्ति में यह सम्बन्ध नहीं है। वहाँ मामला उलटा है।

आसक्ति की दल-दल में विरक्ति का बीज गल जाता है यानि उग नहीं पाता और विरक्ति आसक्ति की ओर से मुख फेरे रहती है। तात्पर्य यह है कि लौकिक उपलब्धियों की प्राप्त आशा की संज्ञा आसक्ति है, जबकि ईश्वर आदि अवधारणाओं की प्राप्ति की अभिलाषा भक्ति है। दोनों की क्रिया पद्धति समान है, परन्तु उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं। यद्यपि सजनों मनुष्य लौकिक आसक्ति त्याग कर आध्यात्मिक दिशा की ओर जाना चाहता है किन्तु लोक-कामनाएँ व मोह के विविध बन्धन व उत्तरदायित्वों के निर्वाह का आग्रह उसकी विरक्ति के पथ में विकट बाधा बनकर आ डटते हैं। ऐसे में घबराने की नहीं अपितु बुद्धि व विवेक का आश्रय लेकर इन बाधाओं को दूर करने का सतत् प्रयत्न करना चाहिए। इस सन्दर्भ में सजनों जानो कि बन्ध और मोक्ष के कारण दो शब्द हैं - 'मम' (मेरा)

और 'निर्मम' (मेरा नहीं)। मम से प्राणी बन्धता है और निर्मम से मुक्त हो जाता है। तभी तो कहा गया है:-

'ममता होने में जीव रहता है।
ममता के छूट जाने पर वह आत्मस्वरूप हो जाता है।'

ऐसा साधक जब अपने आत्म-तत्त्व को सब भूतों में प्रकट हुआ जान लेता है तब मोह और शोक से मुक्ति पा जाता है। सजनों आप भी इस मोह रूपी विकार से बचने के लिए अपने अविनाशी सत्य-स्वरूप को जानो। इस हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित पैग़ामों वाले कीर्तनों के भावों को अपने स्वभावों के अन्तर्गत कर, युक्तिसंगत अमल में लाओ और अपनी अन्दरुनी व बैहरुनी वृत्ति दोनों का ही रोना-झुखना बन्द कर दो। इस तरह जिह्वा स्वतन्त्र कर अफुर अवस्था को धारण करो और स्वभावों में से कलुकाल हटा व हौं-मैं की बीमारी मिटा, ब्रह्म वृत्ति धारण करो तथा अपना घर सतयुग बना गाना धारण करने के सही अर्थों में अधिकारी बनो। इसके अतिरिक्त सजनों गदे के यज्ञ के चालीस दिनों के दौरान जो ब्रह्मचर्य व्रत पर अखण्डता से बने रहने का विधान है, उस पर खरे उतरने हेतु विषय-वासनाओं के प्रभाव से मन को चंचल मत होने दो अर्थात शान्त अवस्था में सधे रहो। इस प्रकार बुद्धि-बल द्वारा अपने मन, वचन और शरीर सहित समस्त इन्द्रियों को संयमित रखते हुए सत्य की साधना करो और ब्रह्म सम्बन्धी आचरण अपना कर सुरति शब्द का योग रखने में समर्थ हो जाओ। सजनों ऐसा करने पर ही ब्रह्मनाद को अपनी श्रवण शक्ति द्वारा ग्रहण कर, अध्यात्म पद को प्राप्त कर सकोगे और

शान्ति-शक्ति का हथियार यानि 'जय गदाधारी' धारण करने के योग्य पात्र सिद्ध हो, सुजान बन जाओगे। यह होगा उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो, भक्ति प्रबल व शक्ति ताकतवर होने का सूचक। अतः सजनों इस श्रेष्ठतम उपलब्धि हेतु शक्तिशाली बनो और अन्दर से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के पुर्ज़े हटा-सम, सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के पुर्ज़े लगा, इस तरह दीप्तिमान बन जाओ कि आपके लिए अपने जीवन का वास्तविक अर्थ, इसी जीवन में सिद्ध करना कोई कठिन काम न रह जाए। इस सन्दर्भ में जानो कि इस कार्य की सिद्धि, विचार शब्द व युवावस्था का भक्ति-भाव अर्थात् समभाव-समदृष्टि की युक्ति अपनाकर परस्पर सजन भाव का व्यवहार करने से ही हो सकती है। अतः आप इस अजर अमर अवस्था को प्राप्त करने में किसी कारण भी कमज़ोर न पड़ना।

आपकी सूचनार्थ अगले सप्ताह काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे शत्रुओं से दोस्ती कर इन्सान किस प्रकार अहंकार प्रवृति हो अपने व अन्य संगी-साथियों के विनाश का हेतु बनता है, उस विषय में विस्तृत रूप से बातचीत करेंगे ताकि आप देह के अभिमान से मुक्त रह अपने मन को एकरस परमेश्वर में लीन रखते हुए आत्म-ज्ञानी बन जीवन के वास्तविक आनन्द का अनुभव कर हर्षा उठो व इसी जीवन में जगत-विजयी हो - फ़र्स्ट का नतीजा सुना सको।

अहंकार-1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों यह तो सर्वविदित है कि आत्मतत्त्व की पहचान हमारे जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है। निःसंदेह इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु स्वयं का अध्ययन करना, स्वयं को देखना, स्वयं की प्रकृति पहचानना, स्वयं के बारे में जानना, मनन और चिन्तन करना अति आवश्यक है। सीधे शब्दों में कहें तो इस हेतु सतत् आत्मनिरीक्षण, आत्मचिन्तन, आत्मावलोकन या अपने आप को सही अर्थों में देखना, बूझना या परखना अनिवार्य है। अन्यथा इन की अनुपस्थिति में व्यक्ति, व्यक्तिगत अहं यानि निजी मिथ्या सत्ता के गुमान के कारण, अक्सर अपनी बुराईयों/कमियों/दोषों/अवगुणों आदि को न देखते हुए दूसरों की बुराईयों/कमियों/दोषों/अवगुणों को

ढूँढने में लग जाता है और सांसारिक झमेलों व झगड़ों के वात्याचक्र यानि बवंडर में फँस कर, अपने भीतर प्रतिष्ठित परम सत्ता यानि आत्मतत्व को देखने-जानने-समझने से वंचित रह जाता है। यही कारण है कि वह फिर समभाव-समदृष्टि की युक्ति को आत्मसात् कर परस्पर सजन भाव का व्यवहार करने से प्राप्त होने वाला सुख-आनन्द नहीं मान पाता और आजीवन कष्ट-क्लेशों को भुगतते हुए रोते-झुखते व्यर्थ जीवन गुज़ार देता है।

इस तथ्य से सजनों स्पष्टतः ज्ञात होता है कि स्वयं को पहचानने में सबसे बड़ी बाधा है व्यक्ति का व्यक्तिगत अहंकार। इसी के कारण भ्रमित इंसान अपने अन्दर बैठे दुष्ट शत्रुओं व विनाशकारी प्रवृत्तियों यथा काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, हिंसा, असत्य, प्रतिशोध आदि से अनभिज्ञ रह परम सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार नहीं पाता। परिणामतः ख़ुद से बेखबर हो भौतिक आकर्षणों के फेर में पड़ कर जगत की जगमगाहट में खो कुमतिवान बन जाता है। हमारे साथ ऐसा न हो इस हेतु आओ सजनों आज अहंकार को भली-भांति समझते हैंः-

अहंकार

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार अहंकार सजनों इस शरीर रूपी दरख़त को लगा हुआ पाँचवां विकार है। इसलिए तो कहा गया हैः-

पंजवीं टहनी है अहंकारता वाली वे,
पंजवीं टहनी है अहंकारता वाली।
जीव उड उड आकाश नू जावे वे।।

आप उड्डे कुल सारा उडावे,
वे आप उड्डे कुल सारा उडावे।।
ढावे ते सट्टां खावे, मौत बुलावे बेहोश हो जावे।

परिभाषा

प्राणी का यह स्वाभाविक ज्ञान कि मैं हूँ, अहंकार कहलाता है। यह बाह्य पदार्थों/विषयों से विमुख, अहम् यानि 'मैं' तक ही सीमित रहने वाली मनःशक्ति है जिसके द्वारा प्राणी को अपनी विशिष्ट सत्ता का बोध या अस्तित्व का ज्ञान बना रहता है और वह समझता है कि मेरी एक पृथक् और विशिष्ट सत्ता है। एक तरह से यह अहंभाव अपने ही बारे में सोचने की यानि आत्मलिप्तता की प्रवृत्ति है।

अन्य शब्दों में इससे मानव के मन में 'मैं हूँ या मैं कहता हूँ या अमुक वस्तु मेरी है" इस प्रकार की मिथ्या अहंकार की भावना उत्पन्न होती है अर्थात् 'मैं' और 'मेरा' का भाव पैदा होता है। 'मैं' और 'मेरा' का यह भाव जितना गहन और विस्तृत होता जाता है उतना ही अहंकार भी बढ़ता जाता है।

अहंकार में तमोवृत्ति का प्रधान्य रहता है। अहं का संबंध अपने दोषों को ढाँपने अथवा उन्हें लादने से है तथा इसकी भावना मनुष्य को अधोगामी बनाती है। रावण का उदाहरण इस संदर्भ में सजनों हमारे सामने ही है जिसके विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया हैः-

रावण हंकारी हंकारता दिखांवदा,
कुल सारी दा नाश करांवदा।

अपनी करनी दे फल नूं पांवदा,
ए रावण दियां हैन अनीतियाँ।।

अहंकार को अंतःकरण का एक भेद भी माना जाता है जिसका विषय गर्व कहलाता है। अहंकार के ही कारण सृष्टि के पदार्थों से अपना संबंध दिखाई पड़ता है और ममत्व पनपता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अहंकार व्यक्ति का निजी गुण यानि व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष है। इसी के द्वारा मानव अपने विषय में कोई निश्चित संकल्पना कर बैठता है। प्रतिस्पर्धा अथवा होड़ भी इसी अहंकार का ही प्रदर्शन है।

दर्प, गर्व, घमंड, अभिमान, ममत्व, अहंकार के ही पर्याय हैं। स्पष्ट कर दें कि दर्प वैभव/बल आदि की प्रधानता से होने वाला अहंकार है तथा इसमें विक्षोभ, रोष व क्रोध मिला रहता है। दर्पवान व्यक्ति अक्खड़ व उद्दंड हो जाता है और सर्वत्र अपना आतंक फैलाता है। गर्व अपनी किसी श्रेष्ठता या किसी श्रेष्ठ व्यक्ति, वस्तु/बात आदि पर होने वाला अभिमान है। ऐसा व्यक्ति अपने वैभव, उच्चकुल, सौन्दर्य/रूप/यौवन, गुणों, विद्वता, बल या धन सम्पन्नता के अभिमान से किसी को अपने समान नहीं समझता और दूसरों के प्रति अनादर/अवज्ञा/उपेक्षा आदि प्रकट करता है। घमंड स्वयं को दूसरों से धन, बुद्धि/शक्ति/पद/निपुणता आदि में उच्चतर मानने का अहंकार है जिसमें व्यक्ति शेखी बघारता है और दूसरों की भावनाओं और परामर्शों की उपेक्षा करता है। अभिमान अपनी योग्यता, समृद्धि, प्रतिष्ठा आदि के महत्त्व की अनुचित धारणा है। इसमें अधिकतर मान यानि आदर,

प्रतिष्ठा, सम्मान, इज्ज़त का भाव रहता है और व्यक्ति स्वयं को बड़ा समझता है। इस सम्मान के भाव पर चोट लगने पर क्रोध भी उत्पन्न होता है और क्रुद्ध व्यक्ति रुठ जाता है या नाराज़ हो जाता है। ममत्व मेरापन, अपनापन, अनुराग व स्वामित्व की भावना है। इस की तुष्टि के लिए मानव निकृष्टतम प्रवृत्ति अपनाने से भी नहीं सकुचाता।

इस संदर्भ में सजनों जान लो कि उपरोक्त से सम्बन्धित अहंकार का कोई भी रूप कभी भी प्रशंसनीय नहीं माना जाता क्योंकि अहंभाव तक सीमित रहने पर अपने अलावा अन्य व्यक्तियों या समाज के समुदायों की उपेक्षा होती है।

आत्मगौरव या स्वाभिमान को भी अहंकार या अभिमान का सहचर माना जाता है। परन्तु इनमें पर्याप्त अंतर है। आओ जानें कैसे?

आत्मगौरव

आत्मगौरव से तात्पर्य आत्मा के उन्नयन या उभार या आत्मसम्मान से है। आत्मगौरव के लिए आत्मबोध होना आवश्यक है यानि आत्मा का दमन किसी भी स्थिति में नहीं होना चाहिए। इस हेतु चाहे कितने ही कष्ट-क्लेशों का सामना क्यों न करना पड़े, उनके सामने झुकना या उनसे हारना नहीं होता। याद रखो जब तक मन में आत्मभाव अनुसार बने रहने की प्रतिष्ठा के प्रति ध्यान रहता है तब तक आत्मगौरव सही दिशा को बताने वाला होता है किन्तु ज्यों ही मन में अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को सोचकर अहंकार का भाव उदय होता है, तो यह पतन का मार्ग प्रशस्त करता है।

यह आत्मगौरव का निषेधपरक पक्ष है, अतः इससे सदैव बचना चाहिए।

याद रखो अपने चरित्र, अपने गुणों, अपने कर्त्तव्य का सही बोध ही आत्मगौरव के अनिवार्य तत्त्व हैं यानि अपनी सही पहचान से ही आत्मगौरव का विकास संभव है। यह पहचान चारित्रिक शुद्धता, दृढ़ता, कर्त्तव्यनिष्ठा, अहिंसा, सत्य के पालन, संयम जैसे गुणों को आत्मसात् करने से बनती है तथा सत्संगति तथा आत्मनिरीक्षण से इसको बल मिलता है। ऐसा व्यक्ति कठिन से कठिन परिस्थिति में भी धैर्य नहीं छोड़ता व उत्पीड़न के समक्ष कभी नहीं झुकता। उसे किसी हाल में भी बौद्धिक परतन्त्रता स्वीकार्य नहीं होती और वह किसी के समक्ष हाथ नहीं फैलाता। वह तो मानवता की आन-बान-शान के लिए, अपने समस्त सुखों का परित्याग कर सदा मर मिटने को तैयार रहता है।

स्वाभिमान

स्वाभिमान अपने विशिष्ट गुणों पर गर्वित होने का भाव है। अन्य शब्दों में व्यक्ति जब अपने चरित्र को सभी प्रकार से पूर्ण कर लेता है यानि उसमें संतोष, धैर्य, सत्य, त्याग, परोपकार जैसे गुणों का समावेश कर, उन पर अटल बने रहने के प्रति प्रतिबद्ध हो जाता है, तो ही वह अपने स्वाभिमान को व्यक्त कर पाता है। इस प्रकार स्वाभिमान केवल मौखिक अभिव्यक्ति नहीं होती वरन् उसके लिए चारित्रिक गुणों की अभिव्यक्ति आवश्यक होती है यानि कठिन परिस्थितियों में भी अपनी धीरता व वीरता के प्राकट्य द्वारा त्याग, परोपकार जैसे कार्यों को सम्पन्न करने का साहस दर्शाना अनिवार्य

होता है। अतः स्वाभिमानी हर कीमत पर इन गुणों की सुरक्षा के प्रति प्रतिबद्ध होता है। इस प्रकार स्वाभिमान ऐसे आदर्शों का समन्वित रूप है जिन्हें धारण कर व्यक्ति स्वयं तो महान बनता ही है साथ ही औरों को भी सम्मानपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

स्पष्ट है सजनों स्वाभिमान, निश्चित रूप से अहंकार नहीं होता। स्वाभिमान शब्द में मान शब्द प्रमुख है। इसमें दूसरों के सम्मान की रक्षा करते हुए अपने सम्मान के प्रति सचेत रहने का भाव प्रधान है। स्वाभिमान शब्द में प्रयुक्त स्व शब्द से भी यही अर्थ ध्वनित होता है। किंतु यदि स्व शब्द को हटा दिया जाए तो केवल अभिमान शब्द बचता है। अभिमान में वह बात नहीं है जो स्वाभिमान में है। स्वाभिमान सद्गुण के रूप में सर्वत्र प्रशंसनीय है जबकि अभिमान दुर्गुण होने के कारण सर्वथा निंदनीय है। अभिमान में अपने मान का अधिक ध्यान रहता है, किंतु दूसरों के मान की इसमें कोई परवाह नहीं होती इसलिए अभिमानी अक्सर औरों का अपमान करता है और अपनी पूजा-मानता कराना पसंद करता है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया है:-

चहुं प्रकारां दे मनुष्य बनाये,
व्यभिचारी विषयां विच गंवाये।
अभिमानी अपनी पूजा करावे,
अहंकारी अग्गों रुकावटां पावे।।

इसके विपरीत स्वाभिमानी, सबको आत्मरूप जान कर उनके मान-सम्मान की रक्षा करता है। इस तरह स्वाभिमान

को मनुष्य का सर्वोत्तम आभूषण व अभिमान को सबसे बड़ा दूषण माना जाता है। वास्तव में मान की सकारात्मक दिशा स्वाभिमान है जबकि अभिमान अधोमुखी पतनकारी दिशा है। याद रखो संघर्ष करते हुए जीवन के अंतिम क्षण तक स्वाभिमान की रक्षा करना स्वाभिमान की कसौटी है। इसलिए स्वाभिमानी किसी बाधा को नहीं मानता, किसी के भय की परवाह नहीं करता। किसी लोभ के सामने मस्तक नहीं टेकता और किसी स्वार्थी के हाथों नहीं बिकता। वह तो सदा अविचल-अडिग बना रह स्वाभिमान की रक्षार्थ अपना तन-मन-धन सब वार देता है।

अहंकार के कार्य

मनुष्य में अहंकार की सृष्टि सजनों माया के प्रभाव से होती है। यह माया नाना रूपों में सर्वत्र व्याप्त है। कर्त्तापन का अभिमान, मेरेपन की भावना यानि सब मेरा है, धनबल, जनबल, राज्यबल, विद्याबल का अभिमान, अभिमानात्मक कर्म, शत्रु को दमन करने, कुचलने, प्रतिकार लेने की अभिमानपूर्वक भावना आदि अमर्ष सूचक यानि अपनी उपेक्षा या अपमान से उत्पन्न क्रोध जनित अहंकार के अनेक कार्य हैं। इन अहंकार के विभिन्न कार्यों में संलग्न व्यक्तियों को सावधान कर पुनः रास्ते पर लाने हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में परमेश्वर इंसान को कहते हैं:-

जिस धन दा हंकार कितोई,
ओ यमां दा घर रहे दिखाल।
प्रीति तूं किस नाल करनै, मिथ्या ए संसार,
प्रीति तूं किस नाल करनै।।

मिथ्या महल ते मिथ्या माड़ियाँ,
चार दिनां दी बहार।
प्रीति तूं किस नाल करनै,
मिथ्या ए संसार, प्रीति तूं किस नाल करनै।।

जिन्हा पिच्छे तूं कूड़ कमत्तो,
ओही आसन तैनूं साड़।
प्रीति तूं किस नाल करनै, मिथ्या ए संसार,
प्रीति तूं किस नाल करनै।।

सरल शब्दों में सजनों यदि कहें तो जीवन की वक्र गति अहंकार की देन है और जब तक यह विद्यमान है तब तक जीव का कल्याण नहीं हो सकता यानि इसको त्यागने पर ही जीवन की गति में सरलता का समावेश हो सकता है।

अहंकार का विस्तार

अहंकार के कारण ही समस्त विश्व स्थित है। सब प्राणियों को देह का अध्यास (मिथ्या ज्ञान या भ्रांति) इसी से बना हुआ है। यह ही सब क्लेशों यथा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश (मृत्यु के भय से उत्पन्न क्लेश) और दुःखों की जड़ है।

इसी के अभिमान में मदमस्त हुई समस्त भोग योनियाँ इस के द्वारा कर्म भोग भोगती हैं। यह अपने प्रभाव से उन सबकी बुद्धियों को जड़ बनाए रखता है यानि उन सबकी बुद्धियों पर इसी का ही शासन बना रहता है। तभी तो इन्द्रियों के भोग के समान इन योनियों को कुछ और पता ही नहीं रहता। जब तक यह प्रधान रहता है तब तक भोग योनियों का जन्म-

मरण होता रहता है और आवागमन कभी समाप्त नहीं होता। इस प्रकार यह भोग और कर्म का पोषण करता है। प्रकृतिस्थ त्रिगुणों में से सत्त्व और रज को दबाए रखता है इसलिए अत्यन्त दुर्गम और दुष्कर माना जाता है।

स्वयंमेव जड़ होते हुए भी सजनों यह अहंकार चेतन आत्मा से बलवान बना हुआ है। इसी ने जीवात्मा को बाँध रखा है यानि भोगों में फँसाकर अपना दास बना रखा है। पृथ्वी मंडल पर वास करने वाले सब प्राणी इसी के आधार पर नाना प्रकार के लौकिक सुख-दुःख भोगते हैं।

यह ही बुद्धि और चित्त पर अपना आवरण डाले हुए है व ज्ञान और वैराग्य को दबाए हुए है। इसी ने प्राणियों को जड़ यानि अचेतन बना, पाप व अधर्म युक्त कर्मों में लगा रखा है। इसकी प्रधानता से श्रेय कर्मों यानि सुकर्मों में कदाचित् प्रवृत्ति नहीं हो सकती। याद रखो तमोगुणी मूढ़ मनुष्यों में इसका विशेष रूप से राज्य देखने को मिलता है जबकि वैराग्यवान और ज्ञानियों के चित्तों में इसका कोई स्थान नहीं होता। स्पष्ट है सजनों अहंकार के ही कारण कर्त्तापन की भावना बनी हुई है। तभी तो गीता में कहा गया है:-

अहंकार के द्वारा मूढ़ता को प्राप्त होकर पुरुष कर्त्तापन की भावना अपने अन्दर कर बैठता है। निष्क्रिय होने पर भी क्रियावान बना रहता है। इसलिए अहंकार ही उसके बन्धन का हेतु बन जाता है।

स्पष्ट है सजनों अहंकार ही परमात्मा और जीवात्मा में भेद बनाए रखता है। अहंकार ही अविद्या उत्पन्न करता है यानि

बुद्धि और विवेक का शत्रु है व इनको नष्ट करने वाला है। यही काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष आदि के संस्कारों को जगाता है, कर्म-व्यापार में संलग्न करता है और चित्त को मलिन करता है। यही बुद्धि को भ्रष्ट कर मनुष्य को आत्मप्रशंसक, मूढ़, कुकर्मी, अधर्मी, जघन्य (नीच, बुरे) और घृणित विचार वाला बनाता है। इसी से ही अशांति, अकड़बाज़ी, चिंता, अशिष्टता, तनाव और जटिलताएँ पनपती हैं और यही अनीति, अन्याय, शोषण और दुष्कर्मों को जन्म देता है। यही नहीं, अहंकार ही पारिवारिक, सामाजिक मतविरोध, मनोमालिन्य (मनमुटाव) व कलह का कारण है। अतः इस अहंकार को सर्वविनाश का कारण जानकर त्याग देना चाहिए।

सबकी जानकारी हेतु अहंकार के विषय में आगे बातचीत हम आगामी सप्ताह करेंगे।

दिनाँक 24 दिसम्बर 2017 का सबक़

अहंकार - 2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहो:-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों गत सप्ताह हमने जाना कि कर्त्तापन ही अहंकार का हेतु है। जब जीव इस कर्त्तापन की गिरफ़्त में आ जाता है यानि अपने आप को कर्त्ता मान बैठता है तो माया-अविद्या की शक्तियों से बन्धकर अपने आप को संसारी समझ बैठता है। इसी कारण अनेक प्रकार की काम/कामनाएँ करते हुए कर्म फल की इच्छा से सुख-दुःख, संयोग-वियोग, खुशी-गमी, मान-अपमान, हर्ष-शोक आदि से ग्रस्त हो जाता है और एक अशांत व अविचारी मानव की तरह इस संसार में इधर-उधर भटकता रहता है। सजनों यह द्वन्द्वात्मक स्थिति हृदय से समभाव के पूरी तरह से लोप होने व अज्ञान अन्धकार के छा

जाने की विकट स्थिति होती है जिसके परिणामस्वरूप इन्सान नश्वर देह का अभिमानी होकर हर वक्त देह के भोगों में आसक्त रह तीनों तापों से संतप्त रहता है और अपनी अनश्वरता व निर्भय अवस्था का विचार नहीं कर पाता। सजनों हमारे साथ ऐसा न हो इसीलिए विस्तार से सबको अहंकार के विषय में बताया जा रहा है। आओ अब आगे जानते हैं कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इस अहंकार को कैसे व्यक्त किया गया हैः -

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनों इस अहंकार को 'हौं-मैं' यानि जन्म के रोग के रूप में विशेषतः वर्णित किया गया है और कहा गया हैः-

कुदरत ने भांडे घड़े, कुदरत ने पाया जीव।
जीव विचों 'हौं-मैं' निकले,
'हौं' राजा 'मैं' होया वज़ीर।

हां हां 'मैं' होया वज़ीर,
वाह वाह 'मैं' होया वज़ीर।।
'हौं' राजा होया दलगीर,
'मैं' वज़ीर होया फ़कीर।
'मैं' वज़ीर होया फ़कीर,
'मैं' वज़ीर होया फ़कीर।

'हौं' अर्थात् 'हूँ' और 'मैं' यानि कर्त्ता का रूप। इस तरह यह 'मैं हूँ' का भाव है। यह अहंभाव या अहंता दूसरे शब्दों में निजत्व का ही अभिमान है तथा अहंकार का ही रूप है। निजत्व का यह अभिमान मानव को अहंमति अर्थात्

भ्रमात्मक आध्यात्मिक आत्मज्ञान में फँसा, आत्मस्वरूप की विस्मृति करा देता है। परिणामतः उसके अन्दर चेतन तथा जड़तत्व का अविवेक अर्थात् मिथ्या ज्ञान जिसे अज्ञान कहते हैं, उत्पन्न हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह जड़तत्व में आत्मातत्व का आभास करता है यानि जड़तत्व को भूल से चेतनतत्व मान लेता है और इसी कारणवश द्वि-द्वेष व आधि-व्याधि से ग्रस्त हो यानि शारीरिक-मानसिक व आत्मिक रूप से अस्वस्थ हो, विसूचिका यानि जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँस जाता है।

इस संदर्भ में सजनों फिर जब तक समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार उसे आत्मतत्व का यथार्थ-ज्ञान नहीं हो जाता और वह अपनी अजरता-अमरता व नित्यता का बोध कर तद्नुकूल आचार-विचार व व्यवहार नहीं अपनाता तब तक इस बीमारी से उसकी निवृत्ति नहीं हो पाती। इसलिए तो कहा गया हैः-

हौं मैं दा रोग हटावे, दिल विचों दुई मिटावे
नी ओ अंधेरा मिटावे, ह्रदय विच चानणा दिखावे
जन्म दित्ता ने सँवार, ओ सच्चाई वाला,
महाबीर जी पाया ए हार

नी ओ अभिमान हटावे, दिलों अहंकार मिटावे
नी ओ हुण कुल नूं बचावे, है ओ अंधेरे दा चानण
बचाया ने पख परिवार, ओ सच्चाई वाला,
महाबीर जी पाया ए हार

इसी संदर्भ में सजनों सच्चेपातशाह जी इस रोग को

हटाने का तरीका बताते हुए कहते हैं:-

पहले फुरने को स्वच्छ करना है और फिर फुरना अफुर। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार का पहरेवा हटाना है और सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म का पहरेवा धारण करना है। यह है हौं-मैं का रोग हटाना।

साथ ही वह यह भी कहते हैं कि 'हौं-मैं' की बीमारी कुलनाशक होती है। भक्ति भाव से व प्रभु चरणों में प्रीत बढ़ाने से इससे बचा जा सकता है। हौं-मैं कि बीमारी हटाने का मतलब है 'जिससे मैं जग रहा हूँ, उससे सब जग रहे हैं" इस भाव में पक्का रहना है।

फिर वह कहते हैं:-

अन्दर ख़्याल अक्षर वल, दृष्टि लोचे महाराज जी नूं। इससे बाहर की दृष्टि जो फुरने की है भगवानमय हो जाएगी। सजनों इससे गिरना नहीं। यह है थोड़े से विस्तार में "हौं-मैं का रोग हटाना।

इस तरह सजनों वह समझाते हैं कि शब्द में जुड़ने पर ही हौं-मैं का रोग मिटेगा। अतः नाम का प्रवाह चला दो ताकि प्रकाश ही प्रकाश हो जाए।

अब आगे जानो कि अहंकारी कैसा व्यक्ति होता है व किन किन रोगों से ग्रस्त हो जाता है:-

अहंकारी व्यक्ति

अहंकारी घमण्डी व गर्वी होता है व उसमें कर्त्तापन का भाव प्रधान होता है। इसलिए वह अहंवाद में फँसा हुआ मानव अपने व्यक्तित्व को अन्यों से बहुत श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण समझता है जो उस अहंमति की बुद्धि में स्वानुराग व अविद्या उत्पन्न कर देता है। परिणामस्वरूप वह स्वार्थी स्वहितवादी अपने बराबर किसी को नहीं समझता तथा अपने रूप और गुण में मदमस्त हो, अपने विषय में बड़ी-बड़ी अभिमानपूर्ण बातें करते हुए, अपनी प्रशंसा यानि अपना गुणगान आप करता है। इस तरह व्यर्थ ज्ञान के बल पर डींगें मारता है, शेखी बघारता है और खुशामद व चापलूसी करने वालों से घिरा रहता है। यही नहीं अपने को श्रेष्ठ मानने वाला ऐसा घमंडी कभी भी किसी विधि-विधान का पालन नहीं करता।

अहंकारी में स्वार्थपरता की भावना प्रधान होती है इसलिए वह अन्य लोगों को अपना हित साधने के लिए साधन या उपकरण मानता है और उनके हितों की उपेक्षा करता है। यही नहीं, वह कभी भी किसी वस्तु या विचार के प्रति, अपने भावों को बदलने के लिए तैयार नहीं होता। वह यह भी सुनना नहीं चाहता कि अन्यों के भी विचार उपयोगी हो सकते हैं। यह उसके हठी व ज़िद्दी होने का लक्षण होता है।

अहंकारी में सजनों विद्वेष, शत्रुता, प्रतिद्वन्द्विता, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या की भावना प्रधान होती है इसलिए वह दूसरों को नीचा दिखाकर स्वयं को उनसे अधिक अच्छा बताने/दिखाने का यत्न करता है। यही नहीं वह तो जीवन के हर क्षेत्र में मनमानी करता हुआ, अपनी प्रधानता व प्रभुत्व जमाना चाहता है इसलिए वह तानाशाही के बल पर दूसरों पर

अत्याचार व धौंस जमाने से भी नहीं सकुचाता। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

हंकारी ऐसी गरज दिखावे,
दासियां दा दिल कम्ब जावे।
जीव नूं ताकत दे विच लयावीं,
तूं पिच्छे कदम न हटावीं।।

इस प्रकार उसका अन्य सजनों के प्रति ही नहीं अपितु अपने प्रति भी सजन-भाव छूट जाता है। परिणामस्वरूप वह अपना ही नहीं सारे कुल का विनाश कर डालता है। इसी की स्पष्टता हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है कि 'अहंकारता कुलनाशक है'। ऐसा व्यक्ति कभी भी सहजता से सत्य-धर्म के निष्काम भक्तिभाव को नहीं अपना पाता।

सजनों स्पष्ट है कि अहंकारी अपना सही मूल्यांकन नहीं कर पाता और अपने विषय में बढ़ा चढ़ा कर आंकलन करके खुद को ही धोखा देता है। इस धोखे के कारण उसे मानसिक तनाव झेलना पड़ता है जिससे स्नायु तंत्र पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है और उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, मानसिक रोग, अनिद्रा, अपच, मधुमेह, ऐसिडिटी, गैस-ट्रबल, नर्वस ब्रेक डाउन, वात-प्रकोप आदि नाना प्रकार की व्याधियां उसके शरीर को दबोच लेती हैं और वह सदा आशंकित चिन्तित, चिड़चिड़ा, अशान्त, अस्थिर और ज़िद्दी स्वभाव का हो जाता है। याद रखो ऐसा अहंमति अपनी करनी के कारण सदा घृणा, उपेक्षा और निन्दा का पात्र बनता है और अन्त में हार खा धराशाई हो जाता है।

सजनों अब तक हमने जो जाना, वह था तामसिक व राजसिक अहंकार का विनाशकारी रूप। आओ अब हम आपको इसके उस सात्विक रूप से परिचित कराते हैं जो आत्म साक्षात्कार का हेतु है, किंतु इसके लिए आवश्यकता है व्यक्तिगत अहं भाव के कारण उत्पन्न हुए 'तूं'-'मैं' के भेद को मिटाकर 'हम' में परिणत करने की यानि 'अहं ब्रह्म अस्मि' या 'सोऽहमस्मि' के व्यष्टिगत भाव का अनुभव करते हुए उसे समष्टि के स्तर तक ऊँचा उठाने की। अन्य शब्दों में निज की संकुचित परिधि लाँघकर, सर्व को उसी परमात्मा की अभिव्यक्ति मानकर, आत्मभाव द्वारा विश्वबंधुत्व की विराटता में खो जाने पर ही हमें इसके सात्विक रूप की समझ आ सकती है।

इस संदर्भ में सजनों जानो कि जीवात्मा जब चित्त रूपी दर्पण में अहम् वृत्ति (मैं ब्रह्म हूँ) से अपने स्वरूप को प्रतिबिम्बित देखता है, तब ही उसे अहंकार विशिष्ट अपने स्वरूप का बोध होता है। यह ही उसके आत्म साक्षात्कार का हेतु बनता है अन्यथा आत्मा के पास स्वरूप साक्षात्कार का कोई अन्य साधन नहीं होता। इस प्रकार 'मैं ब्रह्म हूँ' का यह भाव ही चित्त में सात्विक भावनाओं को पैदा कर व शुद्ध संस्कारों को क्रियान्वित करके, उसके शुद्ध होने में व आत्मा के मुक्त होने में सहायता प्रदान करता है। इस प्रकार प्रारम्भ में बन्ध का कारण भी यही अहंकार है और अन्त में मोक्ष का कारण भी यही है यानि इसका बने रहना बन्ध का हेतु है और इसकी निवृत्ति मोक्ष का हेतु है। इस संदर्भ में उपनिषदों में कहा गया है:-

जब मुमुक्षु योगी इस अहंकार का परित्याग कर देता है तब चित्त में सारे प्रकार के क्षोभ समाप्त हो जाते हैं। सब क्षोभों के कारण ही चित्त में अहंकार बना हुआ है। यही संस्कारों को कुरेद कुरेद कर जाग्रत करता रहता है। इसके शांत हो जाने पर सर्व द्वन्द्वों का नाश हो जाता है और शरीर, इन्द्रियाँ और अंतःकरण निश्चेष्ट होकर स्थिर हो जाते हैं। इस प्रकार ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है और दृश्य और दर्शन अभेद हो जाता है यानि एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन होने पर एक अवस्था आ जाती है।

इस उपलब्धि के दृष्टिगत सजनों वैराग्य और विवेक द्वारा आत्मबोध करो। आत्मबोध की स्थिति ही अहंकार से बचे रहने का एक-मात्र साधन है। अंततः याद रखो कि जो सर्व ममता को छोड़ सब प्रकार के अभिमान व अहंकार से रहित हो, सुख दुःख को समान समझता है व सब प्राणियों के प्रति वैर भाव को त्याग कर मित्रवत् दया भाव से व्यवहार करता हुआ सदा क्षमावान बना रहता है, वही ब्रह्म को प्राप्त हो भवसागर से पार उतर पाता है।

अंततः सजनों मानो कि समभाव समदृष्टि की युक्ति अनुसार शब्द ब्रह्म विचार पकड़ कर व सजन भाव का पहरेवा पहन कर आप यह कार्य सरलता व सहजता से सिद्ध कर सकते हो। अतः ऐसा सुनिश्चित करने हेतु सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ क्या कह रहा है, ध्यान से सुनोः-

सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के मुख के शब्द

कवित्त

ब्रह्म नाम ब्रह्म है ध्यान बेटा,
हां हां हां ब्रह्म वचन करो प्रवान बेटा।
ब्रह्म विचार नूं फड़न सजन,
फिर ब्रह्म है बड़ा महान बेटा।।

मेरी बात सुन लीजियो बेटा हां हां हां हां,
एहो रैय्यत नूं समझा दीजियो बेटा।
जेहड़ा है मन अन्दर प्रकाश,
हर अन्दर है उसे दा निवास,
उसे दा दर्शन कीजियो बेटा।।

श्री साजन जी के मुख के शब्द

शहनशाह हनुमान जी आप हो दाता आप हो पिता
हां हां हां हां आप हो मेरे बाप शक्तिवान दयालु।
उस शक्तिवान शहनशाह दा मैं, बेटा हो ही चुका,
ओ हिन मेरे सिरताज दयालु।।

अब श्री साजन जी सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी को कह रहे हैं

दयालु आप ही हो ब्रह्म स्वरूप हां हां हां हां,
फिर आप ही हो परवरदिगार दयालु।
सच्ची सरकार दी गोदी में साजन सजन,
तुसां हो मेरे अपर अपार दयालु।।

ब्रह्म दी महिमा कोई विरला गावे हां हां हां हा,
ब्रह्म स्वरूप कोई विरला कहावे।
जेहड़ा खालस सोना हो, खोट न राहवे बदन में,
ब्रह्म प्रकाश फिर ओही कहावे।।

सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी,
श्री साजन जी को कह रहे हैं

हम हैं ब्रह्म तुम हो ब्रह्म हां हां हां हां,
ब्रह्म स्वरूप ब्रह्मांड सारा।
ब्रह्म प्रकाश सारी सगली मानो,
ब्रह्म है जगत जहान सारा।।

श्री साजन जी कह रहे हैं

ब्रह्म स्वरूप है अपना आप, हां हां हां हां,
हम तो है सारा जग प्रकाश।
ब्रह्म स्वरूप कुल इन्सान,
ब्रह्म प्रकाश सारी सगली मान।।

सजनों आप सबकी जानकारी हेतु आगामी सप्ताह हम प्रसन्नता/आनन्द, मानसिक सन्तुलन/असन्तुलन और काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के विषय में जो भी अब तक पढ़ाया गया है, उस विषय में आत्मनिरीक्षण करेंगे।

आत्मनिरीक्षण

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों अब तक हमने विषय-विकारों के रूप में जो भी जाना-समझा उस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

(दोहे)

भैणां पंजां विषयां नूं छोड़ के,
आओ महाबीर जी दे द्वार।
रघुनाथ जी दे चरण दिखा देसन,
सारी उमर खुशी विच गुज़ार।।

भैणां वैर विरोध हटाके,
महाबीर जी दा नाम ध्याओ।
शान्ति हृदय विच वसे,
सियाराम जी दे दर्शन पाओ।।

आशा तृष्णा नूं छोड़ के,
प्रीति महाबीर जी दे चरणां नाल लाओ।
ओ दीन पर दयाल होसन,
मौत दा भय मिटाओ।।

सेवकां दी प्रीति देख के,
महाबीर जी होय प्रसन्न।
ओ दीन पर दयाल हुए,
असली बख़्शया ने धन।।

भैणां हर स्वास नाम ध्याय के,
जन्म लवो सुधार।
मोह माया दी फाँसी कटन,
हनुमान बलधार।।

भैणां आशा तृष्णा दी काली सर्पणी,
बैठी ए कुंडल मार।
जे इस काली तों बचना चाहवो,
भज लवो राम बलधार।।

मौत आवाज़ां मारदी,
करदी ए आजा आ।
नाम ध्याओ महाबीर जी दा,
मौत तों लैसन बचा।।

जित्थे महाबीर जी दा नाम है,
उत्थे मौत नहीं सकदी डरा।
रघुनाथ जी दे चरण दिखा देसन,
मौत नूं देसन हटा।।

रावण ने मौत नूं छोड़िया,
महाबीर जी नूं रही डराये।
महाबीर जी झपट्टा मारया,
मौत नूं लिया फंसाये।।

तेतीस करोड़ देवते आंवदे,
महाबीर जी अग्गुं करन नमस्कार।
नीति ए संसार दी,
मौत नूं छोड़ दियो बलधार।।

रघुनाथ जी दे नाम दी ताकत है,
बली मौत नूं दित्ता ए डराये।
नाम ध्याओ महाबीर जी दा,
शास्त्र रिहा बताये।।

आशा तजो तृष्णा तजो,
भैणां दिल तों तजो अभिमान।
इको रूप पछान लवो,
बली पूरण कर देसन काम।।

मिथ्या सब संसार है,
मिथ्या सब जहान।
महाबीर जी ए फ़रमा रहे,
इको रूप पछान।।

असत्य नूं भैणां छोड़ के,
सत्य नूं लवो धार।
महाबीर जी दी शरणी आओ,
बेड़ा कर देसन पार।।

कूड़ तजो कपट तजो,
भैणां दिल तों तजो अभिमान।
नाम ध्याओ महाबीर जी दा,
खुश होवन राजा राम।।।

बली बड़े बलवान हैं,
रघुनाथ जी दे नाल प्यार।
जो इच्छया फल पावसी,
बली सब कुछ देवन हार।।

जन्म जन्म दियां विछड़ियां,
दासियाँ रहियाँ घबराये।
मेहर कीती महाबीर जी,
रघुनाथ जी नूं दित्ता ए मिलाये।।

सब कुछ महाराज जी नूं सौंप के,
भैणां हो जावो आनन्द।
शरणी आओ महाबीर जी दी,
पूरण परमानन्द।।

किस नाल लावां भैणां दोस्ती,
किस नाल करां प्यार।
सांवले चरणां नूं भुल के,
असां कष्ट उठाये हज़ार।।

गाफ़ल सुतियां भैणां,
इस घर विच आईयां मेहमान।
सच्चे घर दी भाल करो,
भैणां न होवो नादान।।

इक नूं भैणां भुलियां,
कर्मां कष्ट दिखाये हजार।
इको रूप पछान लवो,
फिर कर्म न सकन कुछ विगाड़।।

छोटी उमर कर्म करने लगे,
जन्म बैठे बिगाड़।
महाबीर जी दे चरणां उत्ते डिग पवो,
कर्म कटन बलधार।।

सन्त ओही महात्मा ओही,
शिव ब्रह्मा ओही जान।
असां भुलियां होईयाँ दासियाँ नूं,
महाबीर जी मिलासन राजा राम।।

जो भैणां कर्म कटने चाहो,
जपो महाबीर जी दा नाम।
नाम बड़ा बलवान है,
पूर्ण होसन काम।।

दासी हुण ऐही आख रही,
महाबीर जी दा नाम ध्याओ।
ऋद्धि सिद्धि नव निधि बख्शन,
मौत दा भय मिटाओ।।

सजनों शारीरिक आसक्ति से उबर मौत के भय को मिटाने हेतु गत कक्षाओं में हमने जाना कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार सब वासना स्वरूप हैं। इन पर विजय पाए बगैर अंतःकरण, वृत्तियों, स्मृतियों, बुद्धि व भाव स्वभाव रूपी बाणे को निर्मल नहीं बनाया जा सकता और न ही जीवन के सर्वोच्च महान लक्ष्य की ओर प्रशस्त हुआ जा सकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि इन विकारी विषयों ने ही जीव को भोगवादी बना कर मिथ्या संसार में फँसाया हुआ है और अंतःकरण को अज्ञान अंधकार से आच्छादित कर जीव को सत्य-पथ से भटकाया हुआ है।

ऐसे में सजनों प्रश्न उठता है कि अपने यथार्थ स्वरूप का पुनः बोध करने हेतु इन विकारों पर सहजता से फ़तह किस युक्ति से पाई जाए? तो इस संदर्भ में जानो कि युवावस्था का ताकतवर भक्ति भाव यानि समभाव समदृष्टि की युक्ति अनुसार, संकल्प कुसंगी को संगी बनाकर व संतोष, धैर्य अपना कर, सच्चाई धर्म का निष्काम रास्ता पकड़ने से ही इन पर सहजता से विजय पाई जा सकती है और अंतनिर्हित दिव्य शक्तियों को जाग्रत कर आत्मबोध किया जा सकता है। आत्मकल्याण हेतु ऐसा पुरुषार्थ दिखाने पर ही मन में सम्पूर्णता का भाव पनप सकता है और इंसान सांसारिक विषयों का सहजता से परित्याग करने में सक्षम हो सकता है।

जानो यह एक जितेन्द्रिय इंसान की तरह संकल्प रहित होकर, धीरता से सच्चाई धर्म के निष्काम रास्ते पर अग्रसर होते हुए परोपकार कमाने की बात है। सजनों हम सब भी

सभी दोषों से रहित होकर ऐसा ही परम पवित्र जीवन जी सकें, इस के लिए हमें आत्मनिरीक्षण द्वारा अपने आज के स्वाभाविक स्वरूप को समझना होगा और आत्मिक स्वरूप के प्रतिकूल अपनाए हुए स्वभावों को खोज कर उन्हें त्यागने के प्रति दृढ़ संकल्प होना होगा। अतः हमारी सबसे प्रार्थना है कि इस जीवनोद्धार के कार्य को अफुरता व सत्यता से करना ताकि आप अपनी मनोदशा स्पष्टता से जान सको। सजनों फिर से सुचेत किया जा रहा है कि जीवन में ऐसे मौके बार-बार प्राप्त नहीं होते इसलिए आज अपने चारित्रिक स्वरूप को निष्कलंक बनाने की इस क्रिया को दिलचस्पी में आकर पूर्ण गंभीरता से सम्पन्न करना ताकि मन में वैराग्य भाव उत्पन्न हो जाए और आपके लिए सांसारिक व्यवहार को छोड़ना सहज हो जाए। जानो ऐसा कर पाना ध्यान से सब कर्मों के फल को त्याग अनंत शांति व वास्तविक आनन्द को प्राप्त होने की बात है। आओ अब अपना आत्मनिरीक्षण करें:-

1. क्या चिरस्थाई प्रसन्नता/आनन्द को प्राप्त करने हेतु हम अपने नित्य शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वरूप में स्थिर रहते हुए आत्मिक ज्ञान प्राप्ति करने का यत्न कर रहे हैं?

2. कहीं हम इतना समझने के बावजूद भी, आत्मा के गुण-धर्म के प्रति अनभिज्ञ रह अनित्य, मिथ्या, क्षणभंगुर, नाशवान पदार्थों को सत्य मानकर तद्नुसार असत्य पथ पर चलने की भूल तो नहीं कर रहे? यदि ऐसा ही है तो जान लो कि हमारे मन पर चढ़ा अज्ञानता व मूर्च्छा का मैल साफ नहीं हो सकता और हमारा मन-मस्तिष्क कभी भी संतुलित हो सम अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता।

3. क्या हम सम्यक विचार एवं विवेक द्वारा अपनी कामुक इच्छाओं व कामनाओं पर नियन्त्रण रख निष्काम रास्ता अपनाने में सफल हो पा रहे हैं?

4. क्या यह जानने के पश्चात् कि 'बुद्धिमान लोग कभी अकारण क्रोध नहीं करते और हर परिस्थिति व अवस्था में धीर व क्षमावान बने रहते हैं', हम क्रोध के स्वभाव पर फ़तह पाने में कामयाब हो पा रहे हैं यानि किसी अभिलाषा के न पूरा होने पर अथवा उत्पन्न हुई इच्छा के प्रति दूसरे के विपरीत भाव, वाणी या कर्म दिखाने पर, आत्मनियन्त्रण रखते हुए, अपने भाव, वाणी व कर्म द्वारा अनुचित व्यवहार तो प्रदर्शित नहीं करते?

5. क्या हम संतोष अपनाकर अर्थात् प्रारब्ध व आवश्यकता अनुसार जो प्राप्त है, अपनी उसी हैसियत में संतुष्ट रहते हुए, अपनी अनुचित लोभ-लालसा पर नियन्त्रण रख, सांसारिक वस्तुओं के उपभोग व संचयन करने की प्रवृत्ति में फँसने के स्थान पर, उनका सर्वहित के लिए उपयोग करने की कला सीख पा रहे हैं?

6. क्या हम शरीर तथा सांसारिक वस्तुओं को अपना सब कुछ समझने वाली मोह वृत्ति का निरासक्त भाव से त्याग कर, अपने सत्यमेव यथार्थ स्वरूप में प्रीत जोड़ अपने मन को सदा उस प्रभु में लीन रखने में सक्षम हो पा रहे हैं?

7. क्या हम कर्त्तापन का अभिमान त्याग कर, समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार यह मानते हुए कि 'जिससे मैं जग रहा हूँ, उससे सब जग रहे हैं" अकर्त्ता भाव से इस

जगत में सबके साथ धर्मसंगत सजनतापूर्वक विचर पा रहे हैं?

सजनों हम मानते हैं कि आप सभी ने उपरोक्त के संदर्भ में सत्यता से अपनी-अपनी परख कर ली होगी। इस विषय में सजनों अभी आपका नतीजा जो भी रहा हो, परन्तु आपको निधार्रित लक्ष्य परमपद की प्राप्ति हेतु शीघ्र ही सतत् प्रयास द्वारा इन विनाशकारी विकारों पर शत् प्रतिशत. फ़तह पानी ही होगी। अतः भरसक यत्न करो क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

सजनों फर्स्ट दी करो तैयारी।
फेल जेहड़ा हो गया ओ उमरां राहवे भिखारी।।

अंतत सजनों यह हम सब जानते हैं कि प्रत्येक शरीरधारी जीव, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त अपने कल्याण की खातिर अनेकानेक यत्न/प्रयत्न करता रहा है परन्तु आत्मिक ज्ञान व सद्बुद्धि के अभाव में उसे महज शारीरिक भोगों की प्राप्ति में ही अपना सुख व कल्याण नज़र आता है। इसीलिए वह इनकी प्राप्ति हेतु चतुर-सयाना बनकर, दिन-रात, भांति-भांति के उचित-अनुचित साधन अपनाकर, जगत में इधर-उधर दौड़ता रहता है और सब कुछ पाकर भी शांति व विश्राम नहीं पा पाता। इस संदर्भ में चिरस्थाई शांति व आनन्द को प्राप्त करने हेतु आवश्यकता होती है, प्राकृतिक नियमों के अनुसार इस शरीर के नश्वर, मायावी व परिवर्तनशील स्वरूप को स्वीकार कर, इस सत्य को जानने की, कि न तो यह शरीर पूर्ण है और न ही शरीर के भोग पूर्ण

हो सकते है। इसलिए पूर्ण तत्त्व की खोज ही एकमात्र इस देह व जीवन धारण का लक्ष्य है। यह पूर्ण तत्त्व ही आत्मस्वरूप है जो तमाम जड़ और काल स्वरूप जगत को अपनी ब्रह्म सत्ता से प्रकाशित कर चलायमान कर रहा है। इस तथ्य को समझते हुए सजनों अपने परिपूर्ण अविनाशी स्वरूप को जानो क्योंकि यही परम कल्याण का हेतु है और इस प्रकार जो गत वर्षों में नहीं कर पाए वह इस वर्ष पूरा कर दिखलाओ यानि आने वाले चैत्र के यज्ञ पर फर्स्ट का नतीजा सुना परपमद पाओ। आप सब इस मकसद में कामयाब हों, इस हेतु हमारी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

दिनाँक 7 जनवरी 2018 का सबक़

निर्विकारिता

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,

इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों अभी तक हमने जाना कि अपनी सद्बुद्धि व आत्मिक बल के प्रयोग द्वारा अपने मन, अपनी इन्द्रियों, अपनी इच्छाओं/कामनाओं आदि को नियन्त्रित कर, जागतिक विकारों व दुर्गुणों पर फतह पाने वाला इंसान ही, चारित्रिक दुर्बलताओं से मुक्त हो, अपने भाव-भावना-विचार-वृत्ति-स्मृत्ति-बुद्धि व स्वभाव को निर्मल अवस्था में संजोए रख सकता है व इस तरह अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में निर्विकारी बना रह, आत्मविजय के पथ पर प्रशस्त हो सकता है।

अन्य शब्दों में सजनों जिस प्रकार एक किसान खेत में बीज डालने से पूर्व उसकी तैयारी करता है यानि खर-पतवार, ईंट-पत्थर चुनकर अलग करता है, उसी तरह आध्यात्मिक उत्कर्ष चाहने वाले व्यक्ति को भी आत्मविजय के पथ पर अग्रसर होने से पूर्व मानसिक तैयारी करनी पड़ती है अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी खर पतवार से अपने चित्त को मुक्त कर उसे निर्विकारी बनाना होता है। इस प्रकार जब चित्त विकारमुक्त हो जाता है तो उस में ब्रह्म भाव अनुरूप सुविचारों के पौधे लहलहा उठते हैं।

परिणामतः असीम मानसिक शांति मिलती है और मानव पूर्णतः तनावमुक्त हो संतुष्टि व धीरता से जीवन जीता है। आत्मतुष्टि की इस अवस्था में सजनों मानव के अन्दर लौकिक व पारलौकिक सुख-सम्पदाओं को देखते हुए भी, उन क्षणभंगुर अर्थात् नश्वर भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा जाग्रत नहीं होती और उसका ख़्याल सदा उनके प्रति उदासीन (संसारी कामना से रहित व निर्लिप्त) बना रह, अपने असलियत सत्-चित्त-आनंद ब्रह्म स्वरूप को भरपूर मानते व जानते हुए, सदा उसी में निमग्न रहता है।

इस तरह उसकी प्रकृति सदा सत्य धर्म के निष्काम भाव की साधना के प्रति समान बनी रहती है यानि कभी भी विकृत नहीं होती और वह अनंत और अखंड सुख व शांति की प्राप्ति करता है। सजनों यही होती है मन की संकल्प रहित निर्विकार अवस्था जिसके अंतर्गत इन्सान ब्रह्म भाव अपना, एकाग्रचित्तता से सब कुछ समुचित ढंग से सिद्ध करने का पुरुषार्थ दिखा पाता है।

उपरोक्त तथ्य से सजनों एक मानव के जीवन में निर्विकारता की महत्ता परिलक्षित होती है और ज्ञात होता है कि निर्विकारता व्यक्ति का आंतरिक गुण है। यह व्यक्ति के हर प्रकार से दुर्गुण मुक्त होने की स्थिति है जो उसे स्वार्थमुक्त करती है, विकारमुक्त करती है व वासनायुक्त होने से बचा परोपकार प्रवृत्ति में प्रवृत्त करने में सहायक सिद्ध होती है। इस निर्विकार अवस्था को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम आवश्यक है कि व्यक्ति आत्मबोध द्वारा जीवन के महत्त्व और लक्ष्य को पहचाने और पूरी लगन से उसे पाने का भरसक यत्न करे। निःसंदेह ऐसा करने पर ही वह अपनी स्वाभाविक स्थिति में बने रह, स्वधर्म का बोध कर सकता है यानि अपनी चेतना की मूल प्रकृति को पहचान कर, जीवन निर्वाह के क्रम में, संकीर्ण मन को परे धकेलकर आत्मा के दिव्य संदेश का अनुगमन कर तद्नुसार निर्वैर, निष्कलंक, निर्भय, निरासक्त, निर्विकार जीवन जीते हुए सुन्दर व पावन जीवन चरित्र का निर्माण कर यशस्वी बन सकता है।

सजनों व्यक्तिगत जीवन में निर्विकारिता की इसी अनमोल महत्ता को समझते हुए, आओ अब प्रश्नोत्तर के माध्यम से निर्विकारता जैसे महान गुण के बारे में जानते हैं ताकि हम किसी भी कारण इसे अपनाने में कमज़ोर न पड़ें:-

निर्विकारिता से क्या अभिप्राय है?

निर्विकार शब्द निर् और विकार दो शब्दों के संयोग से बना है, जिसका मुख्य अर्थ है - मनोविकार रहित, परिवर्तन रहित, स्वार्थ रहित, विकार रहित, दोष रहित। इस अर्थ से

जिसमें किसी प्रकार का विकार या परिवर्तन न हो यानि जो परिवर्तन रहित, अविकारी व निर्दोष है तथा सदा एकरस, एकरूप यानि एक सा रहने वाला है उसे निर्विकारी कहते हैं। मन की अपरिवर्तित अवस्था ही निर्विकारिता है। यह सदा स्थिर और एक रूप रहने वाला गुण अथवा विचार है। इसके अन्तर्गत ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान का भेद समाप्त हो जाता है। आधि-व्याधि से रहित अवस्था को भी निर्विकारिता कहते हैं।

निर्विकार अवस्था को कौन साकार करने वाला है?

अकल्प, अजन्मा, अभेद्य और तीनों गुणों (सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण) से रहित परमात्मा ही निर्विकारी अवस्था को साकार करने वाला है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में परमेश्वर कहते हैं:-

निर्विकार ईश्वर परषोत्तम ओ निरंकार मैं हूँ।
ओ मैं हूँ ओ मैं हूँ ओ मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ।।

साथ ही यह भी कहा गया है:

सारे जगत दे हितकारी,
सारे जगत दे हितकारी।
कृष्ण गोपाल निर्विकारनिंग,
निर्विकारनिंग निर्विकारनिंग।।

ईश्वर नाम कहावे,
आत्मा विच परमात्मा राहवे।।

निर्विकारिता किस का पर्याय है?

निर्विकारिता पारदर्शिता का पर्याय है तथा व्यक्ति के शुद्ध विचारों की ग्राहिका है। इसलिए तो कहा जाता है कि निर्विकारी, निर्मल व पवित्र अन्तःकरण ही वह दर्पण है, जिसमें आत्मा का दर्शन, प्रकृति का दर्शन और ब्रह्म स्वरूप का दर्शन होता है। इसके विपरीत जिस प्रकार मैले शीशे में सूर्य की किरणों का प्रतिबिम्ब नहीं दिखता, उसी प्रकार जिनका अन्तःकरण मलिन, विकारी व अपवित्र होता है, उनके हृदय में ईश्वर के प्रकाश का प्रतिबिम्ब प्रतिभासित नहीं होता। इस संदर्भ में भी सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

जेहड़ा निर्विकार मेरी शरणी आवे,
ओ खेड खिडावन वाला मैं हूँ।
आत्मा विच परमात्मा देखो,
ओ सच्चा करतार मैं हूँ।।

एक मानव के लिए निर्विकारता से क्या तात्पर्य है?

एक मानव के लिए निर्विकारिता का अर्थ है - अधोगति की ओर ले जाने वाले विकारों से मुक्ति। इस संदर्भ में सजनों व्यक्ति को पथभ्रष्ट करने वाले विकार अनेक हैं। अतः एक-दो विकारों से छुटकारा पाने का नाम निर्विकारिता नहीं है अपितु जब व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आलस्य इत्यादि समस्त विकारों का त्याग कर अपनी आसुरी वृत्तियों पर फतह पा लेता है और आध्यात्मिक उन्नयन या लोक मंगल के लिए काम करना आरम्भ कर देता है तब उसके इस आचरण की शुचिता को निर्विकारिता कहते हैं।

निर्विकारिता की असली कसौटी क्या है?

सजनों कौन कितना निर्विकारी है या विकारग्रस्त - इसका बोध व्यक्ति के आचरण से होता है। अतः व्यक्ति का विवेकसंगत आचरण ही निर्विकारिता की असली कसौटी है। याद रखो निर्विकारिता के लिए अपरिवर्तनशीलता और स्थिरता का होना आवश्यक है। अतः दुःख-सुख, शोक-हर्ष आदि द्वन्द्वों में रहते हुए भी जो निर्विकारता का दामन नहीं छोड़ते, वे ही इसके आदर्श पर खरा उतर पाते हैं।

व्यक्ति की निर्विकार अवस्था कैसे भंग हो जाती है?

सजनों अपनी मूल सम प्रकृति से च्युत होने के कारण जब व्यक्ति में अस्थिरता उत्पन्न होती है, उसी के परिणामस्वरूप विकार आते हैं। हम कह सकते हैं कि मानसिक विक्षोभ, उद्वेग, उत्तेजना, कुंठा, विकारों व आधि-व्याधि से जब मानव के मन में संकल्प-विकल्पों की उथल-पुथल मच जाती है और उसकी सम प्रकृति सदोषयुक्त एवं विकृतिपूर्ण बन जाती है तो व्यक्ति की निर्विकार अवस्था भंग हो जाती है।

कौन सा व्यक्ति निर्विकारिता जैसे महान गुण से सदा दूर रहता है?

काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, छल, कपट के वशीभूत हुआ विकारग्रस्त/दोषयुक्त अहंकारी व्यक्ति निर्विकारिता जैसे महान गुण से सदा दूर रहता है और नित्यता के स्थान पर अनित्यता का भाव अपना कर अपने ख़्याल को जगत में लिप्त कर बैठता है। इस तरह उसके लिए सत्य निष्ठा से

धर्म पर स्थिर बने रहना कठिन हो जाता है। अतः वह धर्म का रास्ता छोड़ अधर्म का रास्ता अपना अपने जीवन का खेल बिगाड़ बैठता है।

निर्विकारता जैसे गुण को ग्रहण करना क्यों आवश्यक है?

सजनों परिवर्तनशील जगत में मानव जीवन अत्यन्त क्षण-भंगुर है। अपने छोटे से जीवन काल में यदि व्यक्ति स्वयं को संयम, सन्तोष, धैर्य, सत्यनिष्ठा, धर्म, निष्कामता, परोपकारता जैसे गुणों से सम्पन्न कर मर्यादित नहीं बनाता और राग-द्वेष में फँसकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, हिंसा, द्वेष, क्रूरता, व्यभिचार जैसे दुर्गुणों को अपनाता है तो इन मानसिक विकारों के कारण उसका मन संकल्प-विकल्प की तरंगों से तरंगित हो अशांत हो जाता है, चित्त की एकाग्रता भंग हो जाती है, बुद्धि भ्रमित हो जाती है व भाव-स्वभाव का रूप बिगड़ जाता है। इस प्रकार अपनी मूल प्रकृति से पतित हो उसका ख़्याल सांसारिक फुरनों से ग्रसित हो जाता है व उस बुद्धि भ्रष्ट इंसान का शरीर और मन रोगों का घर बन जाता है। इस तरह उसका अपना ही जीवन उसके लिए भारस्वरूप बन जाता है और वह सत्य-धर्म के पथ से गुमराह हो, जन्म-मरण के चक्रव्यूह में भटक जाता है। अतः इस दुःखमय पतित अवस्था से उबर शांतमय व आनन्दमय जीवन व्यतीत करने हेतु, एक मानव के लिए सत् शास्त्र एवं सत्य का संग कर यानि शब्द ब्रह्म विचारों को आत्मसात् कर सब प्रकार से निर्दोष और पवित्र बने रह निर्विकारिता को ग्रहण करना आवश्यक होता है।

निर्विकारिता के लिए अनिवार्य तत्व क्या है?

निर्विकारिता के लिए तीनों तापों (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) से ऊपर उठना ही निर्विशेष की प्राप्ति है। अतः इन तीनों तापों से मुक्त स्थिरचित्त ही निर्विकारिता का अनिवार्य तत्त्व है।

निर्विकारिता जैसे गुण का सबसे बड़ा लाभ क्या है?

सजनों व्यक्ति के चरित्र का निर्मल, निर्विकारी और पारदर्शी गुण उसके भाव, गुण, विचार, आदि के विकास के संदर्भ में सभी प्रकार से महत्त्वपूर्ण और लाभदायक है। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि जो निर्विकारी, मन को विकारमुक्त यानि संकल्प रहित कर आत्मविजय प्राप्त कर लेता है, उस मुक्त मानव के अन्दर से शत्रु-मित्र, अपने-पराए, हर्ष-शोक, सुख-दुःख का द्वि-द्वेष युक्त भाव मिट जाता है और अंतर्मन के समस्त द्वंद्व समाप्त हो जाते हैं। इस तरह समभाव स्थापित हो जाता है और वह शांतचित्त सबको एक समान दृष्टि से देखता हुआ परस्पर सजन भाव का व्यवहार करने में निपुण हो जाता है। यह आत्मिक उत्कर्ष की स्थिति है यानि सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। इसलिए हम सबके लिए बनता है कि इस हेतु प्रसन्नचित्तता से समभाव समदृष्टि का सबक़ आत्मसात् करना स्वीकारें और परस्पर सजनता का व्यवहार करना सुनिश्चित कर निर्विकारी बन जाएँ।

निर्विकार अवस्था की ओर किस प्रकार प्रशस्त हों?

सजनों समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सत्य-धर्म का

निष्काम भक्ति भाव अपना कर मानव बिना किसी यत्न के निर्विकार अवस्था को प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त दृढ़-निश्चय, अभ्यास, सत्य संगति, सत्-शास्त्र का विचार एवं चिंतन, संयमित जीवन-यापन, ईश्वरीय हुक्म की मननकारी, इन समस्त साधनों द्वारा निर्विकार अवस्था की ओर प्रशस्त हुआ जा सकता है। याद रखो मात्र सुनने व कहने से व्यक्ति निर्विकारी नहीं हो जाता। इसके लिए सतत् अभ्यास यानि पुरुषार्थ द्वारा अंतर्मन में घर कर गए विकारों को आत्मनिरीक्षण द्वारा पहचानकर, आत्मनियंत्रण रखते हुए बाहर खदेड़ने की आवश्यकता है। अभ्यास के बिना यह सम्भव नहीं। हम कह सकते हैं कि स्वस्थ चित्त से सत्य के निकट रहते हुए निर्विकार होकर संयमपूर्वक जीवन बिताते हुए ही व्यक्ति स्वयं और प्रकृति को दोषमुक्त कर सकता है।

स्पष्ट है सजनों, प्रकृति, व्यक्ति, वस्तु अथवा तथ्य का अप्राकृतिक और अविकारी गुण ही निर्विकारिता है। इस संदर्भ में सजनों हम जानते ही हैं कि प्रकृति और मानव जगत की सृष्टि ईश्वराधीन होने पर भी विकारों से युक्त है। जहाँ कहीं उसमें केवल ऋत् अथवा सत्य दृष्टिगत होता है, वह ईश्वरीय अथवा ईश्वर के निकट जान पड़ती है, वहीं उसका वास्तविक और सच्चा रूप होता है। प्रकृति की ही तरह सजनों व्यक्ति भी स्वयं को दोषमुक्त करके तथा तथ्यों को सत्य पर आधारित करके निर्विकार बनने का प्रयास करता है और सर्वथा शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक रूप से निरोगी होकर, निर्विकारिता अथवा विशुद्धि की अवस्था को धारण कर लेता है। युग पुरुषों की चारित्रिक निर्विकारिता इसका श्रेयस्कर उदाहरण है। तभी तो इसके

विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया है:-

निर्विकार है स्वरूप आपदा,
सुजाणे कोई विरला पछाने।
ओ३म कई रंग तेरे ओ दाता,
तूं ही जाने कोई विरला पछाने।।

कहने का आशय यह है सजनों कि ब्रह्म निर्गुण और निर्विशेष है, जबकि जीव एवं प्रकृति सर्गुण और सविशेष यानि गुणों से युक्त है। प्रकृति और प्राणी दोनों में ही उत्पत्ति और संहार देखा जाता है यानि दोनों ही नश्वर हैं। प्रकृति नित नूतनता धारण करने वाली है, अतः उसका निर्विकार रूप संभव नहीं। जीव का भी रूप प्रकृति के समान है यानि कभी आधि-व्याधियों से, तो कभी सांसारिक विडम्बनाओं व परिस्थितियों का शिकार हो वह विकार-ग्रस्त होता रहता है।

पर इतना होने के बावजूद भी चैतन्य ईश्वर का चेतन अंश होने के नाते वह इन तमाम झंझटों से मुक्ति पा, आत्मस्वरूप में स्थित होने हेतु, ईश्वर प्रदत्त विशेष बुद्धि और विवेक के संवर्द्धन द्वारा, ईश्वरीय गुणों को आत्मसात् कर, विकारों से मुक्त होने का यानि निर्विकारिता को चरितार्थ करने का प्रयास करता है। इस आशय से सजनों हम मानते हैं कि यद्यपि एकमात्र परब्रह्म/ब्रह्म ही अजन्मा, निर्विकल्प, स्थिर, निश्चित, निर्मल और पूर्णतःनिर्विकारी है तथापि आत्मयथार्थ यानि ब्रह्मस्वरूप की प्रतीति कर तद्नुरूप ढलने हेतु, समस्त विकारों और दोषों से मुक्त होना ही एक मानव के लिए निर्विकारिता की कसौटी है। इस कसौटी पर खरा उतर कर ही एक मानव अपने जीवन के परम प्रयोजन को सिद्ध कर

सकता है व अंततः अपने सच्चे घर परमधाम पहुँच विश्राम को पा सकता है। इस संदर्भ में ऐसे सजन के विषय में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कहता हैः-

निर्विकार विकार न कोई,
दरख़्त दी सदा जय जय होई।
सूरज चढ़े ने कई हज़ार,
दरख़्त तेरे भाग जागे ने।।

साथ ही यह भी कहा गया हैः-

फिर ओ निर्विकार विकार न कोई ओय,
फिर निराकार भक्ति है जे सोई ओय।
हो गया ओ खालस सोना,
फिर खोट न राहवे कोई ओय।।

ईश्वर परमात्मा निराकार ओही ओय।
फिर ओही है सर्वज्ञ ओय।।

अतः सजनों आप भी हिम्मत में आकर इन चालीस दिनों के नीति नियमों पर खरा उतरकर यह परम पुरुषार्थ दिखाओ और रौशन नाम कहाओ।

आपकी जानकारी हेतु परमपद प्राप्ति हेतु शुद्धता के महत्त्व को समझते हुए आगामी सप्ताह हम इसी विषय पर बातचीत करेंगे।

शुद्धता

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि 'दिल को सदा ईर्ष्या (जलन), द्वेष (शत्रुता) और आपस की फूट (अनबन और वैर-विरोध) से अलग रखना है क्योंकि आध्यात्मिक शिक्षा (आत्मा-परमात्मा संबंधी शिक्षा) और व्यावहारिक शिक्षा (वर्ताव संबंधी शिक्षा) प्राप्त करने के लिए हृदय की शुद्धता अति उत्तम साधन है। इस हृदय को दर्पण की तुलना देते हैं। यदि दर्पण निर्मल हो तो उसमें जो घटता है वही नज़र आता है पर यदि उस पर थोड़ा सा भी दाग हो तो साफ़ किए बिना नज़र नहीं आता, ऐसा ही हाल हमारे दिल का भी है। यह दिल ही है जिसमें जो विचार या इच्छा निश्चित की जाये सो

ही पक्की हो जाती है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, इसे जिधर लगाओ वहीं लग जाता है। इसलिए आयु की घड़ियों को मुश्किल जान इसे शुभ कर्मों यानि अच्छे कामों में लगाना है तथा बुरी बातों से बच कर रहना है। ऐसे सजनों के मेल-मिलाप से सदा बचना है, जिन के अन्दर और बाहर कुछ और हो। हमें ऐसे सजनों की संगत यानि साथ नहीं करना क्योंकि ऐसे सजनों की संगत का फल बुरा निकलता है।

सजनों सच्चेपातशाह जी के उपरोक्त कथन से आध्यात्मिक और व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने हेतु हृदय की शुद्धता बनाए रखने की आवश्यकता अनुभव होती है। अतः आओ आज इसी शुद्धता के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं:-

शुद्धता से क्या अभिप्राय है?

शुद्धता शुद्ध होने की अवस्था/गुण/भाव है। शुद्धता में शुद्ध शब्द का विशेष महत्त्व है। शुद्ध से तात्पर्य शत-प्रतिशत पवित्र, निर्मल, साफ़, सच्चा, असली, निश्छल, निष्पाप, निर्दोष, सही, ठीक, कंचन/खरे व निष्कलंक होने से है। अन्य शब्दों में किसी भी प्रकार का अपमिश्रण या बाह्य पदार्थ जैसे विकार, दोष, मलिनता आदि का न पाया जाना यानि मूल यथार्थ रूप में स्थित रहना ही वास्तविक रूप से शुद्ध/विशुद्ध होने का प्रतीक होता है।

सरल शब्दों में शुद्धता सजनों एक ऐसा भाव है जो प्रायः वस्तु के भीतर ही स्थित उसका निजी गुण होता है। जैसे सोने में निहित शुद्धता उसके भीतर अवस्थित गुण का ही नाम है। उसकी शुद्धता आग में तपाने के संस्कार से नष्ट

नहीं होती अपितु और भी निखर कर सामने आती है क्योंकि यह शुद्धता का गुण उसमें पहले से होता है। किंतु कागज़ या घास फूस को यदि शुद्ध करने हेतु आग में तपाया जाए तो वे जलकर राख हो जाते हैं क्योंकि कागज़ कोरा/स्वच्छ हो सकता है, शुद्ध नहीं। हम कह सकते हैं कि शुद्धता हृदय में स्थित एक पवित्र भाव है जो विशुद्ध पूर्ण ब्रह्म ईश्वर का अंश होने के कारण मनुष्य मात्र में पहले से ही निहित होता है। इसी संदर्भ में जैसा कि कहा भी जाता है कि शिशु/बच्चे भगवान का रूप होते हैं क्योंकि तब उनमें संसार की कलुषित भावनाएँ नहीं होती। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा भी गया हैः-

मैं खालस सोना आया,
ईश्वर नूं भुला के आल्हा जन्म गँवाया।

खोट भर लिया इस बदन में,
बेसमझी दे विच आके जीवन सफल न बनाया।

हुण मैं दस्सां ही क्या,
हुण मैं दस्सां ही क्या, मैं की करन आया।।

इससे स्पष्ट होता है कि शुद्धता हृदयगत वह भाव है जो मनुष्य की मानसिकता से जुड़ा है। अतः शुद्ध होने की मानसिकता, हृदय की शुद्धता के लिए अनिवार्य है।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में शुद्धता का महत्त्व जनाने के लिए अलग अलग जगह पर अलग-अलग तरीकों से अधिकतर कंचन शब्द का प्रयोग हुआ है। उदाहरणस्वरूपः-

नी सरस्वती तूं कंचन हो जा,
कूड़ा आड़ा कढ हीरे लाल जवाहर दिखा।

सरस्वती कंचन भई कंचन करे कुल जहान,
महाबीर पूरन मिल पवन ज्योति दा दर्शन करान।।

ओ कंचन नाम धरावे परम पद पावे।

सजनों सुरत नूं कंचन करो फिर नाम ते ध्यान नूं फड़ लवो
ओ नदी मेरे नाल मिलना चाहवे,
कंचन होके जगत ते वाहवे
तद ओ मेल मेरे नाल खावे

सजनों यहाँ कंचन का अर्थ है सुवर्ण या सोना। याद रखो जो कंचन होता है वही स्वच्छ, सुन्दर, मनोहर, निरोगी व स्वस्थ होता है। तभी तो सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ने हमें अपने बदन से खोट निकाल इस जगत में खालस सोना होकर विचरने का आवाहन दिया है ताकि हम आजीवन अपनी वास्तविक अवस्था में स्थिरता से बने रह इस जगत में सत्य को प्रसारित कर सकें।

पूर्णतः शुद्ध कौन है?

परम पवित्र निर्गुण, निरूपाधि सच्चिदानन्द ब्रह्म ही पूर्णतः शुद्ध है। इस परिप्रेक्ष्य में जैसे कि कहा भी गया हैः-

कंचन हूँ मैं आप, कंचन कुल जहान।
कंचन जड़ चेतन प्रकाशे, कंचन कुल सगली मान।।

ओ खालस सोना चमके ओ खालस सोना,
ओ सच्ची सरकार रे हाँ।
सच्ची सरकार ओ सिरजनहार रे हाँ।।

इस तथ्य के दृष्टिगत हमें मानना होगा कि हमारा वास्तविक स्वरूप विशुद्धता का प्रतीक है। अतः अंतर्निहित इस विशुद्धता के भाव को आत्मसात् कर 'विचार ईश्वर है अपना आप' इस विचार पर सर्वथा स्थिर बने रहो।

शुद्ध व्यक्ति की क्या पहचान होती है?

आत्मबोध हो जाने के कारण उस शुद्ध व्यक्ति के मिथ्या ज्ञान का सर्वथा विनाश हो जाता है इसलिए सत्य का पारखी ऐसा व्यक्ति न तो धार्मिक दृष्टि से पतित होता है और न ही नैतिक दृष्टि से भ्रष्ट होता है। उसमें किसी प्रकार की मैल या मिलावट नहीं होती यानि उसमें कोई दोष या अवगुण नहीं होता। रजोगुण व तमोगुण से रहित, निष्काम भाव से पवित्र कर्म करने वाले उस सत्त्वगुणी संकल्प रहित धर्मात्मा से कोई गलती या भूल नहीं होती। तभी तो ब्रह्मचर्य व्रत अर्थात् ब्रह्म का आचरण करने वाले उस विवेकशील पुण्यात्मा का अंतःकरण, वृति-स्मृति, बुद्धि, मन-वचन-कर्म, आचार-विचार-व्यवहार व चरित्र शुद्ध होता है। इस तरह वह ओजस्वी व तेजस्वी ईमानदार इंसान निष्पाप, निर्दोष व सच्चा यानि खालिस होता है और सच्चाई-धर्म के रास्ते पर निष्कामता से चलते हुए सबके हित/कल्याण के निमित्त ही कार्य करता हुआ जगत हितकारी नाम कहाता है। ऐसे सजन के विषय में ही इस ग्रन्थ में कहा गया है:-

खालस सोना दरख़्त होया,
वे खालस सोना दरख़्त होया।
त्रिलोकी विच चानणा दिखावे वे,
जेहड़ा इस दरख़्त दे नीचे आवे,
चानणे नाल चानणा हो जावे।।

शुद्धि कितने प्रकार की होती है?

शुद्धि दो प्रकार की होती है - आन्तरिक एवं बाह्य यानि मानसिक शुद्धि एवं शारीरिक शुद्धि। मानसिक शुद्धि को अन्तःकरण की शुद्धि भी कह सकते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से पहले प्रकार की शुद्धता दूसरे प्रकार की शुद्धि से श्रेष्ठ मानी जाती है। इसके अंतर्गत व्यक्ति को आत्मज्ञान की प्राप्ति द्वारा आत्मतुष्ट होकर अपने आप को पंच विकारों से मुक्त रखते हुए सदा एक अवस्था में बने रहना होता है। आशय यह है कि मन को संकल्प रहित अवस्था में साधे रख अपने शारीरिक स्वभावों का टेम्प्रेचर सम रखना होता है। सजनों जान लो कि आध्यात्मिक साधना हेतु अर्थात् समभाव समदृष्टि की युक्ति को निर्विघ्न आत्मसात् करने के लिए अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों प्रकार की शुद्धियाँ आवश्यक मानी जाती हैं। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

निर्मल तेरी ओ जोत साजन,
निर्मल ही निर्वाण हुआ।
निर्मल आद् अन्त तूं भासे,
निर्मल कुल जहान हुआ,
निर्मल कुल जहान हुआ।।

निर्मल वृति निर्मल स्मृति,
जैं सूक्ष्म युक्ति वल ध्यान दिया

निर्मल पा लिया बाणा उसने,
अपना आप पहचान किया,
अपना आप पहचान किया।।

शुद्धता का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

भाव शुद्धि शुद्धता का अनिवार्य तत्त्व है। अतः इस हेतु आत्मनिरीक्षण व आत्मनियंत्रण प्रक्रिया द्वारा भाव की त्रुटियाँ या दोष दूर करके उसे सुधारना व स्वच्छ, सुन्दर व सुसंस्कृत बनाना आवश्यक है। अतः सजनोंः-

पकड़ो सजनों आप नूं,
संकल्प नूं पकड़ के दिखाओ हां हां हां हां।
फिर खोट न राहवे इस बदन में,
खालस सोना हो जाओ।।

शुद्धता किस पर निर्भर करती है?

यह मन में रहने वाले भावों की पवित्रता यानि अंतःकरण की शुद्धता पर निर्भर करती है। जब शुद्धता की भावना जन्म लेती है तब व्यक्ति शुद्ध बनने के लिए प्रयत्नशील होता है। अतः सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म-भाव को धारण कर अपने आचरण की शुचिता को बनाए रखो क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

फिर खालस सोना चमके,
विच खोट न कोई,
हो जाओ सजनों ब्रह्म नाल ब्रह्म।
न फिर मर ते न मुड़ जम।।

व्यक्ति की विशुद्धता कैसे आंकी जाती है?

सजनों जिस प्रकार सोने को तपाकर उसके शुद्धतम रूप को आंका जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति की विशुद्धता की पहचान उसके यथार्थ रूप से होती है यानि खरा होना उसके विशुद्ध होने का प्रमाण होता है। याद रखो कोई भी भाव/विचार तभी विशुद्ध माना जाता है जब उसमें किसी अन्य तथ्य के मेल की कोई संभावना न हो, इसे ही यथातथ्य अथवा यथार्थ भी कहते हैं। इस तरह सत्य ही वह कसौटी है जिस पर यथार्थ की परख की जाती है।

इस आधार पर किसी भी व्यक्ति की विशुद्धता उसके हृदय की पवित्रता, निश्छलता, शुद्धविचारों, खरेपन से आंकी जाती है। यहाँ खरेपन से तात्पर्य निष्कपट व दोष/खोट रहित होने से है। खरा व्यक्ति सदा छल-रहित सत्य और स्पष्ट बात कहने वाला ईमानदार इंसान होता है। ऐसा बनने हेतु ही सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

पकड़ो सजनों आप नूं फिर खालस सोना हो जाओ।
फिर खोट न राहवे इस बदन में,
जगत ते चमको ते चमक हो जावो।।

शुद्धता कहाँ से परिलक्षित होती है?

यह मनुष्य के विचारों, आचरण व व्यवहार से परिलक्षित होती है। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

सानूं कोई विरला देखेगा,
दयालु जी नूं सब कोई देखेगा।
शक्ल डौल और खाण पीण नूं,
बोलचाल और रैहणी बैहणी।

जो कंचन कर के आवेगा,
ओ दर्शन साडे पावेगा,
ओही दर्शन साडे पावेगा।।

किसी भी व्यक्ति के भावों या विचारों की शुद्धता क्या प्रदर्शित करती है?

किसी भी व्यक्ति के भावों व विचारों की शुद्धता उसके मन के पवित्र व निष्कलुष होने के साथ ही उसके सात्विक और यथातथ्य रूप को प्रदर्शित करती है।

शुद्धता की रक्षा करना अनिवार्य क्यों है?

शुद्धता मनुष्य का आंतरिक गुण है अथवा एक ऐसी मानसिक अवस्था है जो किसी भी विदेशी तत्त्व के अथवा विपरीत तत्व के सम्पर्क से नष्ट हो सकती है। अतः स्थिर बुद्धि होने के लिए शुद्धता की रक्षा अनिवार्य है।

शुद्धता का विकास कैसे करें?

1. इस हेतु सजनों जैसे पहले भी कहा गया है कि शुद्धता हृदय में स्थित एक पवित्र भाव है जो शुद्ध पूर्ण ब्रह्म ईश्वर का अंश होने के कारण मनुष्य मात्र में पहले से ही निहित होता है। अतः सर्वप्रथम हमारे लिए अंतर्निहित इस शुद्धता के भाव की रक्षा करना अनिवार्य है यानि हमें किसी भी विजातीय तत्व यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विषय विकारों के प्रवेश द्वारा इस भाव को दूषित होने से बचाना होगा। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया हैः-

काम, क्रोध, लोभ अन्दर कोई नहीं,
यह बताया महाबीर जी प्यारे ने।
वैर-विरोध हैन बाहर भैणौं,
झगड़ा मुकाया महाबीर जी प्यारे ने ।।

2. भावना की उत्तरोत्तर वृद्धि हेतु सदाचार की ओर झुकाव होना अनिवार्य है। अतः स्वार्थ की ओर से मुख मोड़ परमार्थ में दिलचस्पी रखनी होगी। इसमें सबसे बड़ा बाधक सिद्ध होगा आपका अपना बेलगाम मन क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

रघुनाथ जी दे चरण भुलावंदा ए,
संसार दे वल जल्दी जांवदा ए।
इस मन नूं आप समझाओ महाबीर जी,
तुहाडे चरणां तों जावां बलिहार महाबीर जी।।

अतः सीधे रास्ते पर लाने के लिए इस मन को उपशम करना होगा।

3. सदाचार के उत्तमोत्तम रूप को जानने के लिए सत्प्रवृत्तियों को जाग्रत एवं परिवर्धित (बढ़ाने के लिए) करने वाले सत्-शास्त्र का पठन, चिंतन एवं मनन कर वर्णित शब्द ब्रह्म विचारों को ग्रहण करना होगा। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

महाबीर जी तों दासी की कुझ मँगदी,
सम संतोष, सत् शास्त्र दा विचार।।

4. कुसंग छोड़ सदाचारी यानि शुद्ध आचार-विचार व व्यवहार करने वालों की ही सत्संगति करनी होगी। याद रखो, अनेक चरित्रहीन व्यक्ति सत्संगति से शुद्ध चरित्र वाले हो जाते हैं। इस संदर्भ में कहा गया हैः-

महाबीर जी तों दासी की कुझ मँगदी,
बनिया रहे दासियां दा सत्संग नाल प्यार।।

5. सद्गुणों का शनैः-शनैः अर्जन कर शारीरिक-मानसिक रूप से स्वच्छ हो जाना होगा। इस संदर्भ में जानो, बाह्य शुचिता जलादि से और आंतरिक शुचिता सत्य से होती है। तभी तो कहा गया हैः-

असत्य नूं भैणां छोड़ के, सत्य नूं लवो धार।
महाबीर जी दी शरणी आवो, बेड़ा कर देसन पार।।
सच्चे घर दी भाल करो, न होवो नादान।।

शारीरिक व मानसिक शुद्धि के पथ में मुख्यतः क्या बाधाएँ आती हैं?

शारीरिक शुद्धि में प्रायः बाधाएँ नहीं रहती। यदाकदा रोग आदि के कारण भले ही शारीरिक शुद्धि बाधित हो अन्यथा यह एक निर्बाध प्रयत्न है, जो प्रायः मनुष्य द्वारा सहज ढंग से पूर्ण किया जाता है, किन्तु मानसिक शुद्धता का पथ बड़ा दुर्गम है। शारीरिक शुद्धता का अर्जन जितना सहज है, मानसिक शुद्धता उतनी ही अधिक दुःसाध्य है। मनुष्य बाहर से धुला हुआ स्वच्छ और पवित्र दिखाई देता है, किन्तु अन्दर से मानसिक स्तर पर घृणा, द्वेष, स्वार्थ, अहंकार आदि दुर्भावों का मैल सतत् ढोता रहता है। उसका वश न बुद्धि पर चलता है और न ही हृदय पर। उसकी भावनाएँ ज़रा सा ताप पाते ही भटक जाती हैं। स्वार्थ उपजाने वाली बुद्धि भी विचारों को पवित्र नहीं रहने देती। वह स्वार्थ को पराश्रय देती हुई चिन्तन को अशुद्ध कर देती है। पाखण्ड और आडम्बर भी आत्म-शुद्धि में बाधा डालते हैं। इनमें उलझा हुआ व्यक्ति आत्म-शुद्धि के सहज पथ से दूर चला जाता है यानि जब तक मनुष्य मक्कारी के चंगुल में फँसा रहता है, तब तक वह आत्म-शुद्धि से निश्चित ही कोसों दूर रहता है।

सारतः सजनों हम कह सकते हैं कि जीवन की भागदौड़ और सम्पत्ति अर्जन को प्रमुखता देने वाली भावना मनुष्य की मनःशक्ति के विकास में बाधक है। आशय यह है कि आज कल का मनुष्य सात्विक भावों एवं शब्द ब्रह्म विचारों को ग्रहण करने के प्रति चैतन्य नहीं है परन्तु विशुद्धता वहीं से आती है। वह कदाचित् तड़क भड़क वाले जीवन से नहीं आ सकती। इसके लिए सर्वथा कुसंग व कुमति का त्याग अनिवार्य है।

शुद्धता की कसौटी क्या है?

सजनों शुद्धता की परख विपरीत एवं विषम परिस्थितियों की आँच में ही हो सकती है। निकृष्ट एवं कलुषित वातावरण में भी यानि भावों एवं विचारों का वैपरीत्य उपस्थित होने पर भी जो व्यक्ति अपने विशुद्ध स्वरूप में स्थिर बना रहता है, वह ही श्रेष्ठ मानव कहलाता है।

स्पष्ट है सजनों अंतःकरण की विशुद्धता एक मानव को नैतिक रूप से उर्ध्वगामी बना चारित्रिक रूप से श्रेष्ठ बनाती है व एकता की भावना से जीना सिखाती है। इस प्रकार व्यक्तिगत शुद्धता का प्रभाव फिर पारिवारिक व सामाजिक सदस्यों पर भी पड़ता है। आशय यह है कि यदि व्यक्ति सदाचारी है तो वह अपने निकटस्थ लोगों को भी वैसा ही बनने के लिए प्रेरित करता है। इस तरह व्यक्तिगत चारित्रिक शुद्धता, पारिवारिक व सामाजिक सदस्यों को भी परिष्कृत करती है। एक संपूर्ण परिष्कृत समाज वैश्विक अन्य समुदायों को प्रभावित एवं प्रेरित करता है। इस तरह मन-वचन व कर्म की शुद्धता अपने आप में सबका मंगल समोहे होती है।

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि अपने आचार-विचार व व्यवहार को शुद्ध करने का सबसे बड़ा लाभ है चारित्रिक उद्धार। सजनों मनुष्य जब यह संकल्प कर लेता है कि उसे अपने व्यक्तित्व में सभी प्रकार की शुद्धताओं का समावेश करना है तो वह अपने में विशेष प्रकार की दृढ़ता भी अपनाता है। शुद्धता के प्रति उसकी यह निष्ठा जितनी प्रबल होती है, मनुष्य का व्यक्तित्व भी उतना ही सुदृढ़ होता है यानि वह सहजता से बाह्य आकर्षणों और भुलावों में बहकता

नहीं। यह चारित्रिक सुदृढ़ता तथा शुद्धता के लिए किए जा रहे कठिन श्रम एवं कर्मों की समाज में प्रशंसा, उसे शुद्धता को सुरक्षित रखने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार जब समाज में शुद्धता का समादर होता है तब उसके व्यक्तित्व के शुद्ध प्रकाश में उसके आस-पास के मनुष्य तथा समाज भी प्रभावित होता है। लोग उसका अनुकरण करने के लिए उसे उदाहरण के रूप में प्रयुक्त करते हैं। बहुतों में से कुछ उनके जैसे बन भी जाते हैं। इस प्रकार शुद्धता न केवल व्यक्ति का अपितु समाज का उद्धार करने में भी सहायक सिद्ध होती है। किसी समाज का गुण उसकी निजता का परिचायक होता है। अतः यदि किसी समाज के अधिकांश व्यक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्धता को धारण किए रहते हैं तो उस समाज की प्रशंसा निःसंकोच आने वाली पीढ़ियाँ युग-युगान्तरों तक गाती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में सतयुगी संस्कृति इसी कारण श्रेष्ठ व अनुकरणीय मानी जाती है।

इस संदर्भ में सजनों जानो कि शुद्धि के संदर्भ में शारीरिक पवित्रता से अधिक चित्त-वृत्तियों की पवित्रता तथा वासनादि के क्षय को विशेष महत्त्व दिया जाता है। उपनिषदों के अनुसार आत्मज्ञान रूपी मिट्टी और वैराग्य रूपी जल से धोने के द्वारा जो पवित्रता होती है, वही वास्तविक पवित्रता है। मल, मूत्रादि दुर्गन्ध-युक्त शरीर की शुद्धि तो मिट्टी एवं जल से होती है, लेकिन वह सब तो लौकिक शुद्धि है। वास्तविक शुद्धि तो इन्द्रिय-निग्रह द्वारा 'मैं' और 'मेरा' के अहंभाव का परित्याग करना ही है। अतः सबकी जानकारी हेतु आगामी सप्ताह सजनों हम इसी शुचिता/आत्मशुद्धि के विषय में सविस्तार बात करेंगे।

दिनाँक 21 जनवरी 2018 का सबक़

आत्मशुद्धि

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,

इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों कहते हैं कि आत्म-तत्त्व को जिसने जाना, वही दिव्य ज्ञानी हुआ। यही दिव्य ज्ञान परमानंद की प्राप्ति का साधन बनता है। अतैव, अन्य कुछ जानने से पहले अपने आप को जानना जरूरी है। यहाँ विडम्बना की बात यह है कि जिस प्रकार 'दीपक तले अन्धेरा' यानि प्रदीप के नीचे ही अन्धकार होता है, उसी प्रकार ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ व सर्वोत्कृष्ट कृति मानव, अपने इस सीमाबद्ध शरीर में व्याप्त उस अनंत दिव्य ज्ञान के स्रोत - परमेश्वर को सहजता से नहीं जान पाता। इससे निर्बोधता व अपूर्णता का भाव पनपता है। परिणामस्वरूप वह जगत से आज़ाद रहने हेतु विचारसंगत

निष्काम भाव से अकर्त्ता होकर विचरने के स्थान पर, अपूर्णता के प्रभाव से युक्त हो, कामनायुक्त, अविचारी रास्ता अपनाकर, अपना जीवन व्यर्थ गँवा बैठता है। तभी तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में परमेश्वर कहते हैं:-

जब अन्दर बाहर परमेश्वर राहवे,
ओ बाहर जंगलों में ढूँढन किस तरह जावे।
जब पता है ओ वस्तु है घर में,
हीरे जैसा जन्म अमोलक मिलया।
फिर उस जन्म नूं क्यों वृथा गँवावे, वृथा गंवावे।।

सजनों अपने आप को जानने की यह क्रिया तब आरम्भ होती है, जब मनुष्य के अन्दर निजी वास्तविक आत्मस्वरूप को जानने की जिज्ञासा पैदा होती है और वह आत्म-मूल्यांकन द्वारा आत्मशुद्धि में बाधक तत्त्वों यथा अज्ञान, काम, क्रोध, लोभ व मोह आदि मलों को त्याग कर अहंकारयुक्त अपनी मिथ्या सत्ता का विसर्जन कर देता है और ए-विध् अपने विशुद्धतम निर्मल स्वरूप को पहचान उसमें स्थित हो जाता है। कहने का आशय यह है कि आत्मा तो अपने आप में शुद्ध-बुद्ध है, पर विकार वृत्तियों का अज्ञान अंधकार जब उसके अंतःकरण को मलाच्छादित कर देता है तो मानव न तो अपने आत्म-स्वरूप को जान पाता है और न ही परमात्मा को। इस तरह अपने अस्तित्व के मूल तत्त्व यानि परम सत्ता से सम्बन्ध विच्छेदन होने पर फिर वह इस जगत में निरुद्देश्य मारा-मारा इधर-उधर भटकता रहता है।

स्पष्ट है सजनों मल से ढके दर्पण में जिस प्रकार प्रतिबिम्ब स्पष्ट नहीं होता, झिल्ली के कारण जिस प्रकार गर्भ ढका

रहता है, ठीक वैसे ही इन विकारों के रहते परमात्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। इसका प्रमुख कारण यह है कि अग्नि के समान भोगों से न तृप्त होने वाले इस वैरी काम से ज्ञान ढका हुआ है। यह कामरूपी मल मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित करके जीवात्मा को देह के, सम्बन्धों के व विषयी पदार्थों के मोह में डालता है। इसके नाश व मुक्ति का एक ही उपाय है, सत्य-धर्म की साधना द्वारा आत्मस्वरूप को जान लेना, पहचान लेना यानि आत्मसाक्षात्कार कर लेना और निष्काम हो जाना। इसलिए तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

हुन शीशे दी कर लौ सफाई ओय,
अन्दर सिंहासन ते देखो रघुराई ओय।

जान लो कि अपने को जानने-पहचानने की इस क्रिया के दौरान सजनों निरंतर आत्मनिरीक्षण द्वारा अपने अंतर्मन के भावों/क्रियाओं को जाँचते-परखते रहने से व आत्मनियंत्रण द्वारा आत्मसुधार करने से मन/अंतःकरण निर्मल होना आरम्भ हो जाता है। याद रखो अपने मन को बाह्य पदार्थों में लीन रखने से अपने अंतर्मन के मल का पता नहीं चलता। इसका प्रमुख कारण यह होता है कि मनुष्य की यात्रा बाहर संसार की ओर होती है और उसका ख़्याल बहिर्मुखी होता है इसलिए अंतर्घट में क्या हो रहा है उसको नहीं जान पाता। परिणामस्वरूप उसका अहंकार इतना प्रबल हो जाता है कि वह अज्ञानी जो कुछ भी करता है, उसे ही परम सत्य मान लेता है।

अतः इस अज्ञान से उबर अपने चोले को बेदाग़ रखने के लिए, मानसिक एवं भौतिक दोनों धरातलों पर, अपने भावों, आचार-विचार व व्यवहार का अध्ययन करते हुए सचेतन बने रहने की आवश्यकता होती है और मन के सत्वप्रधान भाव को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए रजोगुण एवं तमोगुण से संघर्ष कर अपना बचाव करना आवश्यक होता है। कहने का आशय यह है कि निर्मलता के भाव की रक्षा के प्रति ललक मन का स्थाई भाव या संस्कार बन जाना चाहिए यानि विपरीत परिस्थितियों में विरुद्ध एवं अविरुद्ध भाव भी उसे दबा न सकें। इस प्रकार निरंतर प्रयत्नशील रहने पर ही अंतःकरण को शुद्ध एवं निर्मल बनाया जा सकता है यानि मन के तुच्छ भावों को त्यागने व उनका परिष्कार करने की भावना से ही उज्ज्वलता की ओर उन्मुख हुआ जा सकता है। इस संदर्भ में सजनों परमेश्वर कहते हैं:-

हनुमान जी ने नाम ध्यान बक्षया वे सजनों,
सजनों वे, स्वतन्त्र युक्ति ओन्हां दी करो प्रवान।

फिर खालस सोना खोट न राहवे,
अपना आप लवो सजनों वे,
वे पहचान वे, युक्ति है स्वतन्त्र, स्वतन्त्र करो कमाई।

उपरोक्त तथ्य के दृष्टिगत सजनों जग-जीवन हो या अध्यात्म दोनों में शुद्धता/निर्मलता/शुचिता/आत्मशुद्धि की भूमिका अपरिहार्य है। गत सप्ताह हमने शुद्धता के विषय में जाना, आओ आज इसी से सम्बन्धित अन्य शब्दों यथा निर्मलता/शुचिता/आत्मशुद्धि के विषय में जानते हैं:-

निर्मलता से क्या आशय है?

निर्मलता का शाब्दिक अर्थ है जिसके अन्तर्मन में किसी प्रकार का कोई मल, मैल, मलिनता या प्रकृति दोष, दुष्ट भाव/दुर्भाव, वैमनस्य, बुराई न हो। इस अर्थ से जो अपने विशुद्ध रूप में है यानि स्वच्छ, पवित्र, पाप रहित, निष्कलंक (बेदाग़), निर्दोष, निष्कपट व खालस है अर्थात् जिसमें विकारों की कोई खोट नहीं है और पवित्र स्वभाव वाला सदाचारी इंसान है, वह भूलों व त्रुटियों से रहित शुद्ध अंतःकरण वाला उज्ज्वल दीप्तिमान/प्रकाशमान पवित्रात्मा ही निर्मलता का प्रतीक माना जाता है और अंतर्विद्यमान परमेश्वर के दर्शन पा सकता है। अतः सजनों:-

खोट न राहवे इस बदन में, ख़ालस सोना हो जा।
ईश्वर दे दर्शन पा, फिर ईश्वर दे दर्शन पा।

सजनों जान लो कि निर्मलता मन की सत्वोद्रेक स्थिति का नाम है। तमस् भाव से ज्योति भाव की ओर उन्मुख होने की स्थिति/ गुण/भाव के उन्नयन की अवस्था है। अतः जागतिक सीमाओं यानि जागतिक कालुष्य जड़ोन्मुख बद्धता से ऊपर उठकर हृदय की मुक्तावस्था को प्राप्त करो। याद रखो निर्मलता/उज्ज्वलता चरित्रगत होती है। इसका मनोभाव व्यक्ति के विचारों, क्रियाक्लापों में प्रतिफलित होता है। निर्मलता की पराकाष्ठा वहीं मानी जाती है जहाँ मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों धरातल पर समभाव अभिव्यक्त होता है। यानि ज्ञान, इच्छा, कर्म तीनों उज्जवलता भाव से संयुक्त हों। यही इसका मूल अर्थ है। ऐसा होने पर भक्ति के बाह्य उपकरण यानि आडम्बर अर्थहीन हो जाते हैं। भक्त एवं

भगवान एक भूमि पर समानाभूति में परिणत हो जाते हैं। भक्त की यह स्थिति उज्ज्वलता के चरम रूप का बिंबांकन कही जाती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया है:-

सप्तद्वीप में पहुँचदियां महाराज जी दर्शन दिखा ही रहे।
दिन खुशियां रातीं सुखां दी नींदर,
सम नूं धारण करके एकता ही दिखा रहे।
ओन्हां दी निर्मल भक्ति, निर्मल शक्ति,
निर्मल चाल सजनां नूं सिखा ही रहे।
शक्तिवान शक्ति हत्थां विच दे के,
ओ शक्ति कैसी चमका ही रहे।

इस प्रकार सजनों हम कह सकते हैं कि मन का वासना-रहित होना निर्मलता है। बुद्धि के धरातल पर अहंकार का विसर्जन निर्मलता है। इसका श्रेष्ठतम रूप है - 'मैं शरीर नहीं हूँ, चैतन्य हूँ' । इससे दो लाभ हैं - एक तो मनुष्य, शरीर और आत्मा के अन्तर को जानने लगता है, दूसरा वह इस तथ्य से भी परिचित हो जाता है कि आत्मा श्रेष्ठ है, उसी का उत्थान साधना का विषय है जबकि शरीर एक साधन मात्र है। अतैव आत्मोत्थान के लिए वह सत्य-धर्म का भक्ति भाव अपनाकर निष्काम हो जाता है। निष्काम का शाब्दिक अर्थ है इच्छा रहित, सब सांसारिक कामनाओं/वासनाओं से रहित, जो फल की भावना की कामना से न किया जाए। यह मन की संकल्प रहित अवस्था होती है। निष्कामी कामनाशून्य होने के कारण समस्त सांसारिक इच्छाओं/बन्धनों, आकांक्षाओं व वासनाओं से रहित हो जाता है और कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति से मुक्त हो, ख़ुशी और ग़मी दोनों से ऊपर

उठ, ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी सिद्ध होता है। इसलिए सजनों धर्म ग्रन्थों में कहा गया है, निष्काम कर्म करने से चित्त शुद्ध होता है और मुक्ति प्राप्त होती है।

अतः सजनों याद रखो कि मन की निर्मलता उसके क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर के मूलोच्छेदन पर निर्भर करती है। अपने अंतःकरण को स्वच्छ दर्पण सा बनाना है। इसके दर्पण होने की कल्पना तभी साकार होती है, जब उसमें परमात्मा का प्रतिबिम्ब पूर्ण रूप से दिखाई देने लगे। तभी तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

प्रभु जी हैन ओ परवरदिगार,
आलम सारी रही जे ओन्हां नूं पुकार।
निर्मल प्रेम जैंदा होवे प्यार,
तदों प्रभु जी नूं मनाउणां है।

अतः इस भव जाल में रहते हुए सजनों निष्काम भाव अपना कर मोह-माया से रहित हो जाओ और इस तरह अपने असलियत स्वरूप की पहचान कर निर्मल हो जाओ। याद रखो निर्मलता चेतनता की अवस्था है। इस अवस्था में उत्तरोत्तर वृद्धि करने से मनुष्य ऊपर उठने लगता है और शनैः शनैः पूर्ण समर्पण की अवस्था में पहुँच कर परम चैतन्य की प्राप्ति कर लेता है यानि लक्ष्य सहजता से प्राप्त हो जाता है। इसलिए सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार:-

हृदय पवित्र करो अपना आप,
एक निग़ाह एक दृष्टि रखोगे, पकड़ियो अपना आप।

निर्मलता की कसौटी क्या है?

किसी के प्रति किसी प्रकार का मनोमालिन्य कपटता या द्वेष का न होना ही निर्मलता की कसौटी है। इस हेतु आवश्यक है कि हम निर्वैर होकर समभाव से अपनी आत्मा के समान ही सभी जीवों की आत्मा को मानते हुए उनके प्रति मित्रता का दृष्टिकोण रखें व इस तरह परस्पर सजनता का भाव अपना कर, परोपकार की भावना से सभी जीवों के कल्याणार्थ लीन रहें। इस हेतु सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार :-

सजन हम हैं सजन तुम हो,
सजन दृष्टि मान लवो।
सजन मानो सजन जानो,
सजन बुद्धि पहचान लवो।

शुद्धता/निर्मलता को अन्य शब्दों में शुचिता भी कहते हैं, इससे क्या अभिप्राय है?

व्यक्ति के प्रकृतस्थ वे विशिष्ट भाव/विचार अथवा सद्‌गुण जो मनुष्य के आन्तरिक और बाह्य जगत को समान भाव से परिष्कृत करने की शक्ति और क्षमता रखते हैं, शुचिता कहलाते हैं। शुचिता व्यक्ति विशेष की प्रवृत्ति का वह सहज स्वाभाविक दैवी गुण विशेष है, जो देवतुल्य व्यक्तियों की प्रकृति से परिलक्षित होता है। इसका प्राथमिक अर्थ है पवित्र या शुद्ध होने की अवस्था, धर्म या भाव। स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से खान-पान, रहन-सहन आदि में स्वच्छता व शुद्धता बनाए रखने की अवस्था भी शुचिता कहलाती है। इसे

अग्रेज़ी में सेनिटेशन कहते हैं। याद रखो नित्य कर्म में बारम्बार किए गए सतत् अभ्यास से यह गुण समृद्ध होता है। पवित्रात्मा सदैव ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके यानि ब्रह्म भाव अनुरूप आचार-विचार अपनाकर व्यावहारिक शुचिता दर्शाती है।

शुचिता के कितने स्तर है?

याद रखो कि शुचिता के दो स्तर हैं, बाह्य और आंतरिक।

आंतरिक शुचिता से क्या अभिप्राय है?

आंतरिक शुचिता को आत्मशुद्धि भी कहते हैं। वैसे तो शरीर की आंतरिक शुचिता का सम्बन्ध अंतःकरण से है परन्तु फिर भी चित्त शुद्धि व मन की पवित्रता के अतिरिक्त देह शुद्धि को भी आत्मशुद्धि का अभिन्न अंग माना जाता है यानि मन और शरीर इन दोनों की पवित्रता आत्मशुद्धि में सम्मिलित है। ऐसा इसलिए क्योंकि आत्म शब्द का मुख्य अर्थ 'अपना' और 'आत्मा' होता है। इसलिए इन शब्दों में शुद्धि का योग करने पर इसके दो अर्थ बन जाते हैं यथा 'अपनी शुद्धि' और 'आत्मा की शुद्धि'। 'अपनी शुद्धि' का अर्थ भी अंत में आत्मा की शुद्धि में पर्यवसित हो जाता है। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया हैः-

संस्था बदन तुसां करो स्वतन्त्र,
फिर साडे कोलूं लै लौ मन्त्र।
श्री राम नाम दा जाप है मेरा,
फिर जीवन बना लौ अपना।।
बन जाए ओ जीवन तेरा फिर जीवन बना लौ अपना।।

साजन जी दी सूक्ष्म है वृत्ति,
सूक्ष्म है जे ओन्हां दी चाल डौल,
सूक्ष्म है जे ओन्हां दा पहरेवा।

ओन्हां दी गल बात कोई मुश्किल समझे,
ओन्हां दी गल वल ध्यान देवे जेहड़ा।
ओन्हां दी गल बात ओही समझे,
ओन्हां दी गल वल ध्यान देवे ओ जेहड़ा।।

इस संदर्भ में याद रखो शारीरिक पवित्रता से मानसिक पवित्रता अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतः आत्मशुद्धि शब्द के अर्थ में आत्मा/मन की पवित्रता का भाव प्रबल समझना चाहिए। आत्मा की शुद्धि के बिना अपनी शुद्धि पूर्ण नहीं हो सकती।

आत्मशुद्धि क्यों आवश्यक है?

सजनों जानो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, अज्ञान, प्रमाद, स्वार्थ, घृणा, ईर्ष्या-द्वेष, हिंसा, स्तेय, असत्य, अनर्गल प्रलाप, अभद्रता आदि विकार अज्ञान रूप में आंतरिक हृदय के आगे प्रदूषण स्वरूप हैं। आत्मिक उन्नति हेतु मनुष्य के लिए आवश्यक होता है कि वह प्रदूषण स्वरूप इन समस्त दूषित विचारों तथा पाशविक वृत्तियों से मुक्त होकर शुचितासम्पन्न बनें। अतः अंतर्वृत्तियों के उत्कर्ष हेतु आत्मशुद्धि आवश्यक होती है। इसीलिए आचरण की शुचिता सर्वोपरि मानी जाती है। अन्य शब्दों में अंतर्मन को सँवार कर आत्म स्वरूप का दर्शन करने की दृष्टि से, आत्मशुद्धि हेतु चारित्रिक दुर्बलताओं का निवारण कर हृदयभावों में शुचिता लाना, आत्मनियंत्रण पर बल देना, स्वार्थवृत्ति से ऊपर

उठकर त्याग भावना का विकास करना और समभाव समदृष्टि की युक्तिसंगत साधना को जीवन का प्रमुख अंग मानकर अभ्यंतर जगत को शुचितापूर्ण बनाने का प्रयास करना, परम आवश्यक है। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में परमेश्वर कह रहे हैं:-

जिन्हुं मेरे मिलने दी होई ए चाह,
स्वभावां वल्लों ख़्याल नूं लवे ओ हटा।
इलाही सूरत चमके ओ मेरी,
इन्सान दर्शन लवे ओ पा।।

आत्म-शुद्धि का अनिवार्य तत्त्व क्या है?

आत्म-शुद्धि के लिए अनिवार्य तत्त्व आत्मिक ज्ञान है, क्योंकि आत्मिक ज्ञान के अभाव में ही आत्मा अशुद्ध भासित होता है। मूल रूप में तो वह नित्य, शुद्ध, निर्मल, साक्षी, विभु, पूर्ण, अक्रिय, असंग, निस्पृह, एक व शांत है। भ्रमवश ही वह संसारी प्रतीत होता है। प्रश्न यह है कि इस भ्रम के निवारण का उपाय क्या है? सर्वविदित है कि इस भ्रम निवारण का एकमात्र उपाय आत्मिक ज्ञान ही है। आत्मज्ञान की प्राप्ति से सारे सन्देह दूर हो सकते हैं और जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानकर शुद्धता की प्राप्ति कर सकती है। इसलिए कहा भी गया है:-

ज्ञान की अग्नि में अज्ञानता का नाश करो।

इससे स्पष्ट है कि आत्मिक ज्ञान आत्म-शुद्धि का अनिवार्य तत्त्व है। इसके बिना आत्म-शुद्धि नहीं हो सकती। शुद्ध

आत्मा ही चरम सत्य की अनुभूति में सक्षम हो सकती है। अतः सजनों अपना जीवन बनाने हेतु आत्मिक ज्ञान प्राप्ति के लिए तत्पर हो जाओ और इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित इन पंक्तियों को सदा याद रखोः-

इन्सानी जून मुश्किल मिलती है।

ओ इन्सान सब कुछ पा सकता है,
जो पा लवे आत्मिक ज्ञान।
आवागमन उस सजन दा मिट गया,
मेल उसने खा लिया, ओ पहुँच गया परमधाम।।

आत्मशुद्धि कैसे हो सकती है?

आत्मशुद्धि का सबसे सरल तरीका बताते हुए सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

श्री राम नाम दा जाप कुड़े,
तुसीं कर लवो हृदय साफ कुड़े।।

इस संदर्भ में सजनों जानो कि अंतःकरण की शुचिता के लिए आध्यात्मिक ज्ञान को प्रामाणिक माना जाता है। यद्यपि जीवात्मा शुद्ध, नित्य, सुखरूप और स्वयं प्रकाशमान है तथापि वह अज्ञान के कारण अज्ञानी जन को मलिन प्रतीत होता है और आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने पर पुनः शुद्ध प्रतीत होता है। इससे सिद्ध है कि आत्मिक ज्ञान आत्मशुद्धि का सर्वोत्तम साधन है। इसकी प्राप्ति से सजन निष्काम कर्म करने में प्रवृत्त होता है। उसके अन्तःकरण की समस्त प्रवृत्तियाँ तथा मनोभाव शुचिता की परिधि में आकर प्रथम

विश्लेषित होते हैं, तदुपरान्त परिष्कृत होते हैं। परिणामतः चित्त शुद्ध होता है और मुक्ति प्राप्त होती है।

इस संदर्भ में सजनों आत्मिक ज्ञान प्राप्ति के जो भी साधन हैं, वे सब भी आत्म-शुद्धि के ही साधन कहे जाते हैं। प्रणव का अजपा जाप, सत्संगति, सत्-शास्त्र का विचार और सद्गुणों का सतत् अभ्यास ज्ञान प्राप्ति के सहज साधन हैं। अतः इन्हें ही आत्म-शुद्धि का साधन भी मानना चाहिए। तभी तो कहा भी गया हैः-

'सजनों शब्द है हमारी पढ़ाई, ग्रन्थ है हमारी सफाई, सजनों जो ग्रन्थ है उससे है हमारे अन्दर की सफाई। इसके सुनने से मन्दी चीजें छोड़नी है और अच्छी चीजें धारण करनी है यानि सच्चाई धारण करनी है और सच का वर्तवर्ताव करना है।'

इस तथ्य के दृष्टिगत सजनों मनुष्य को चाहिए कि वह जीवनगत समस्त जटिलताओं को सरल, साध्य बनाने के लिए आत्मिक ज्ञान को ग्रहण कर धारण करे। आत्मशुद्धि के लिए प्रयत्न अनिवार्य है। बिना आत्मशुद्धि के कल्याण की प्राप्ति असंभव है। अतः सजनोंः-

जाँचें तोले और तुल खड़ोवे, रख लवे अपनी लाज।

बाह्य शुचिता से क्या आशय है?

आंतरिक शुचिता के साथ व्यक्ति को बाह्य शुचिता पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि इन दोनों का परस्पर

घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस संदर्भ में सजनों प्रकृति व जगत के साथ मनुष्य का अटूट सम्बन्ध है, क्योंकि मनुष्य को साँस लेने एवं स्वस्थ रहने के लिए उचित स्थान, उचित आवास-निवास, उचित परिवेश, समुचित खान-पान और रहन-सहन की व्यवस्था अपेक्षित होती है। अतः जगत का वह स्थान अथवा पर्यावरण जहाँ व्यक्ति निवास करता है अथवा जिस संस्थान, परिवार या समाज विशेष से निकट का सम्बन्ध रखता है और जिनके बिना उस का अस्तित्व असंभव होता है, उसका निर्मल और स्वच्छ होना बाह्य शुचिता के अंतर्गत आता है। इस प्रकार बाह्य शुचिता का सम्बन्ध जगत के बाह्य पदार्थों से है। इसके द्वारा व्यक्ति सम्पूर्ण परिवेश जहाँ वह रहता है, भोजन, शयन, विश्राम करता है, ज्ञान अर्जित करता है, परमेश्वर का ध्यान करता है, उसे स्वच्छ आडम्बरविहीन और प्रदूषण मुक्त बनाता है।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में आन्तरिक बाह्य शुचिता को कैसे दर्शाया गया है?

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में सच्चेपातशाह जी ने व्यक्तिगत रूप से हमें अपनी दैनिक दिनचर्या में बैहरूनी व अन्दरूनी दो प्रकार की वृत्तियों की स्वच्छता अपनाने पर बल दिया है। बैहरूनी वृत्ति की स्वच्छता के अंतर्गत हमारे शरीर, परिधान (वस्त्र), खुराक, आसपास के वातावरण व व्यवहार यानि रैहणी-बैहणी की स्वच्छता आती है। अतः इस हेतु हमें:-

'अपने रिहायशी मकान को साफ सुथरा रखना है यानि हर एक चीज़ घर में तरीके से पड़ी हो और घर चमकता हुआ नज़र आए।

अपने शरीर रूपी मकान को साफ सुथरा रखना है यानि अपनी हैसीयत के अनुसार जो कपड़ा भी पहनो वह साफ सुथरा और उजला हो।

अपनी हैसीयत के अनुसार खुराक भी खानी है ताकि सेहत ठीक रहे।

अपने बाल बच्चों को भी साफ-सुथरा रखना है और उनको जी करके बुलाना है ताकि उनके संस्कार अच्छे हो जाएं और वह भी इसी तरह से बोलें।

तत्पश्चात् अन्दर की सफ़ाई करने का निर्देश दिया गया है। अन्दर की सफ़ाई करने से तात्पर्य अपने शारीरिक स्वभावों की सफाई करने से है। इस हेतु सर्वप्रथम जिह्वा को कटु शब्दों व अपशब्दों जैसे गाली-गलौच, निंदा चुगली आदि के प्रयोग से स्वतन्त्र करना है। फिर संकल्प अर्थात् अपने भाव को सजन और संगी बना कर उसे स्वच्छ करना है। इस तरह अपना विचार या इरादा पवित्र व निष्कपट रखना है। तत्पश्चात् अपनी देखने की शक्ति अथवा वृत्ति को कंचन यानि पवित्र व स्वच्छ रखना है। ध्यान रखना है कि कोई भी काम व कामना हमारी दृष्टि की कंचनता भंग न कर सके। कहा गया है कि जैसे-जैसे हम अपने स्वभावों को पकड़ते जाएंगे और अन्दरूनी वृत्ति में हमारा ख़्याल यानि सुरत, सब काम करते हुए भी महाराज जी के साथ जुड़ी रहेगी तो वह कंचन हो जाएगी और महाराज जी के साथ मेल खा जाएगी।

इस संदर्भ में सजनों अपने अंतःकरण को अशुद्ध होने से बचाने हेतु, गृहस्थ आश्रम की यानि घरेलू व निरर्थक बातों की

कचहरी बन्द कर सम, सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म जैसे दिव्य गुणों का प्रसंग चलाने के लिए प्रेरित किया गया है।

स्पष्ट है सजनों बैहरूनी वृत्ति की स्वच्छता जहाँ हमें शारीरिक रूप से स्वस्थ व स्वच्छ रखने के साथ-साथ, हमारे आचरण व व्यवहार को उत्तम बनाकर हमें सब की नज़रों में सुन्दर, स्पष्ट व मधुर बनाती है, वहीं अन्दरूनी वृत्ति की स्वच्छता मानसिक रूप से हमें स्वस्थ व स्वच्छ रखने के साथ-साथ, हमारे व्यक्तित्व व चरित्र को निखारती है तथा सज्जन व श्रेष्ठ पुरूष बनने में हमारी सहायक सिद्ध होती है। याद रखो पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए दोनों ही वृत्तियों की स्वच्छता को अपनाना आवश्यक है, तभी हम प्रत्येक कार्य करने में दक्ष हो सकते हैं और आत्मविश्वासी व स्वावलंबी बन सकते हैं।

आत्मशुद्धि की कसौटी क्या है?

आत्मशुद्धि की कसौटी मनुष्य का आचरण व व्यवहार है।

शुचिता से क्या लाभ है?

आत्म-शुद्धि से आशय मनुष्य की सर्वांगीण पवित्रता से है। यह आत्म-कल्याण का मंगल पथ प्रशस्त करती है।

अतः इसे मुक्ति का सोपान कहा जाना सर्वथा उचित है। इस प्रकार शुचिता के माध्यम से सामान्य मानव भी महामानव बन जाता है। ऐसा इसलिए क्योंकि वर्तमान वातावरण में अन्तर्मन में निवास करने वाले दुर्गुण जैसे काम, क्रोध, शंका, धन-वैभव की लिप्सा, पद प्रतिष्ठा प्राप्त करने का लोभ व

मोह, धूर्ततापूर्वक दूसरों को ठगने का प्रयास, हिंसा के बल पर चोरी-डकैती और परस्त्रीहरण, व्यभिचार आदि की प्रवृत्ति निःसन्देह भयावह है और लोक-परलोक दोनों ही दृष्टियों से नारकीय है। ऐसे में मन में सुविचारों के आगमन से व हृदय की पवित्रता से अनिष्टकारी विचारों का दमन हो सकता है और जीवन अभय हो सकता है। इस उपलब्धि के दृष्टिगत सजनों अपने अन्दर सद्‌गुणों एवं सात्विक वृत्तियों का निरन्तर विकास करो, वैसा ही पढ़ो, वैसा ही सुनो, वैसा ही कहो, वैसा ही सोचो जिससे अंतर्मन कलुषित न हो। ऐसा करने से सद्‌गुणों की वृद्धि होगी और नैतिक रूप से अपने आपको ऊँचा उठाने में सहायता प्राप्त होगी। सजनों नैतिकता का विकास व्यक्ति को व्यक्तिगत स्तर से उठा कर, समष्टिगत स्तर पर पहुँचा देता है। ऐसा होने पर जो मैं हूँ वैसे ही सब लगने लगते हैं। दूसरे को कष्ट देना अपने को कष्ट देना लगता है। दूसरे के साथ प्रेम करना अपने साथ प्रेम करना प्रतीत होता है। याद रखो ऐसी भावना का प्रादुर्भाव जब मनुष्य में होता है तो स्वभावतः उसका उदात्तीकरण हो जाता है।

अंततः सजनों जान लो कि शुद्धता जीवन का अनिवार्य तत्त्व है। जीवन रचनात्मकता का पर्याय है। रचनात्मकता के लिए देह और मन दोनों स्तरों पर शुद्धता अपेक्षित है। अशुद्धता भयानक रोगों को जन्म देती है और जीवन के क्षरण का कारण बन जाती है। वस्तुतः यदि देखा जाए तो आत्म-शुद्धि ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है। पशु आदि जीव देहशुद्धि तो यथा-अवसर कर लेते हैं किन्तु मनःशुद्धि की उन्हें न तो आवश्यकता है और न ही अवसर। यह मनुष्य ही है जिसे

देहशुद्धि की आवश्यकता का ज्ञान है और नाना प्रकार के मनोविकारों से ग्रस्त होने के कारण मनःशुद्धि की तीव्रतम आवश्यकता है। इस संदर्भ में हम मानते हैं कि सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए व्यक्ति अनन्त प्रयासों के बावजूद भी प्रपंचों और छल-छद्मों से स्वयं को मुक्त करने में अनेक कठिनाईयों का अनुभव करता है। इसी कारण उसकी गति, अनंत निम्नगामी होने की ओर उन्मुखी होती रहती है। परन्तु कठिन साधना और अभ्यास से स्वयं को दिव्य गुणों से भरपूर करना पड़ता है। तभी मानव संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म, बल, शील, क्षमा, संयम, साहस, उदारता, स्नेह आदि के बोध से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि पर विजय प्राप्त कर पाता है। निःसंदेह निरन्तर अभ्यास और कठोर परिश्रम द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान के अनुशीलन, आत्म संयम, सत्-शास्त्र के विचार और समभाव-समदृष्टि की साधना से मन व इन्द्रियों को वशीभूत करते हुए, आत्मशुद्धि और शुचिता-सम्पन्न होने का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

आत्मशुद्धि की महत्ता के दृष्टिगत सजनों हम किसी भी कारणवश इस महत्त्वपूर्ण कार्य की सिद्धि के प्रति कमज़ोर न पड़ें और सुनिश्चित रूप से अपने जीवन मकसद को प्राप्त कर एक श्रेष्ठ मानव बन सकें इस हेतु आगामी सप्ताह हम आत्मज्ञान/आत्मबोध के विषय में बातचीत करेंगे।

आत्मज्ञान/आत्मबोध

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहो:-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों गत सप्ताहों में हमने निर्विकारी बनने हेतु आत्मशुद्धि की अनिवार्यता को जाना और इस द्वारा हमें ज्ञात हुआ कि अंतःकरण/हृदय आकाश की शुचिता के लिए आत्मज्ञान/अध्यात्मज्ञान ही एकमात्र सर्वोत्तम साधन है। इस संदर्भ में सजनों जानो कि आत्मज्ञान से तात्पर्य अपने को पूर्ण रूप से जानने/पहचाने से है। अपने आप से यहाँ आशय सजनों आत्म (स्व) की पहचान वस्तुतः आत्मा और परमात्मा की पहचान से है। इसे आत्मा का स्वरूप ज्ञान या ब्रह्म का ज्ञान यानि आध्यात्मिक ज्ञान भी कहते हैं। यह आत्म-साक्षात्कार व ब्रह्म-साक्षात्कार की स्थिति है जिसे पाकर

इंसान त्रिकालदर्शी हो जाता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

जैं ब्रह्म शब्द पहचान लिया,
उस शब्द जिहा शब्द न कोई।
ब्रह्म विचार कोई मुश्किल पकड़े,
उस अपना आप पहचान लिया।।

स्पष्ट है सजनों जो आत्मा को जान जाता है, उसे अपने वास्तविक ब्रह्म स्वरूप का बोध हो जाता है यानि आत्मा और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं है। इस परिप्रेक्ष्य में सजनों यह भी स्पष्ट कर दें कि आत्मा ब्रह्म है तो परमात्मा परब्रह्म है। ब्रह्म से यहाँ तात्पर्य उस सब में बड़ी, परम तथा नित्य चेतनसत्ता से है जो जगत का मूल कारण और सत-चित-आनंदस्वरूप मानी गई है तथा परब्रह्म से तात्पर्य उस निर्गुण और निरुपाधि ब्रह्म से है जो जगत से परे है। तभी तो इस विषय में परमेश्वर सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहते हैं कि :-

ओ३म् ब्रह्म हूँ ब्रह्मा दा वी ब्रह्म हूँ।

सजनों जानो कि जो उस सूक्ष्मतम आद् स्रोत के साथ जुड़, आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है और तद्नुकूल ब्रह्म भाव/सर्व एकात्मा का भाव अपना लेता है, वह एकता, एक अवस्था में आ परमात्मा के साथ परमात्मा हो जाता है और ज्योति स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर नाम कहाता है।

सजनों यह अंतर्ज्ञान यानि अन्तःकरण में अपने आप उपजने वाला (स्वयं स्फुरित) ईश्वरीय ज्ञान है। इसी के द्वारा पवित्र

अंतःकरण यानि निश्छल व निष्काम हृदय में सत्य का बोध होता है और जीव आत्मदर्शन का परमसुख प्राप्त कर आत्मतुष्ट हो जाता है यानि परम संतोष प्राप्त कर ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है। इस परिप्रेक्ष्य में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ भी कह रहा हैः-

निष्काम रस्ते ते आना रे दर्शन हमारा पाना रे।

सबकी जानकारी हेतु सजनों यह आत्मज्ञान सामान्य ज्ञान से सर्वथा भिन्न है। यह बुद्धि की प्रखरता का नहीं अपितु माया के स्पर्श से दूर आत्मा की निष्कलुषता यानि पावनता का प्रतिबिम्ब है। यह आत्मा की पुकार है जिसको सुनकर व्यक्ति सन्मार्ग पर चलने के लिए स्वतः प्रेरित होता है। अंतर्ज्ञान को अन्तर्दृष्टि या ज्ञानचक्षु भी कहते हैं। इसके खुलने पर जीव न केवल हृदय वेद विदित ज्ञान व अपने अंतर्मन की बात जान सकता है अपितु दूसरे के मन की, यहाँ तक कि भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों की बात भी जान सकता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

खोलो मस्तक दी ताकी,
दिखा दिओ रघुनाथ जी दी झांकी।
मिला दिओ मैनूं तुसी अविनाशी,
दर्शन दिखाओ रज के।।

इस प्रकार सजनों जो इस आत्मज्ञान द्वारा एक सर्वव्याप्त आत्मा को जान लेता है वह सबको जान लेता है यानि जिसने स्वयं को पहचान लिया वह ब्रह्म (ईश्वर) को पहचान

लेता है और उसके हृदय में परम श्रेष्ठ सजन-भाव उजागर हो जाता है। ऐसा सजन फिर किसी के साथ वैर और प्रीत नहीं करता, किसी को अपना व किसी को पराया नहीं समझता। वह तो सबको आत्मभाव से देखते हुए परमात्म स्वरूप ही जानता है और परोपकार प्रवृत्ति अपना कर सजन भाव से विचरता है। इसलिए तो कहा गया हैः-

ब्रह्म है पारब्रह्म परमेश्वर,
ब्रह्म ओ अपर अपार दिस्से।
ब्रह्म है आत्मा विच परमात्मा,
ब्रह्म ब्रह्म सिंघासन ते निरंकार दिस्से।।

याद रखो कि ब्रह्म ही पूर्ण है अतः उसका ज्ञान ही पूर्ण ज्ञान है। जिस व्यक्ति को इस आत्मतत्त्व का पूर्णतः ज्ञान हो जाता है वह शीघ्र ही उच्च शिखर पर चढ़ जाता है। इंद्रियों के विषय फिर उसे विषतुल्य लगने लगते हैं यानि बाह्य पदार्थों के प्रति उसमें अरुचि उत्पन्न हो जाती है और संसार मिथ्या प्रतीत होने लगता है। इस तरह मन की चंचलता के कारण उत्पन्न आशा-तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, इच्छा, शोक तथा भय से सहज ही मुक्ति मिल जाती है और इनके स्थान पर जीवन में संतोष, क्षमा, धैर्य, विनय, शील, सरलता, स्पष्टता, समता आदि गुण प्रकट हो जाते हैं। फलतः जीवन निखर जाता है और शरीर की भी परवाह नहीं रहती। व्यक्ति शोक, लोभ, मायाबंधन से सर्वथा छूटकर सच्चिदानंद स्वरूप हो जाता है और अफुर हो परमपद को प्राप्त कर मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। तभी तो कहा गया हैः-

इन्सानों जैं जीवन बनाया अपना, आ-आ-आ-आ,
जैंदे छुट गए सारे ख़्याल सजनों।
ओहदी जोत जगे निर्वाण दे अन्दर,
ते जग रही जे ओ कमाल सजनों।।

ऐसा होने पर सजनों फिर देवालयों व तीर्थ-स्थानों में भटकने की व व्रत-नेम आदि करने की आवश्यकता नहीं रहती अपितु सब कार्यव्यवहार करते हुए भी मन परमेश्वर में लीन रहता है और अन्दर की पवित्रता आचरण द्वारा स्वतः प्रस्फुटित होती है। यही कारण है कि ऐसा इंसान फिर बाल्यावस्था के कर्मकांड व आडम्बर युक्त भक्ति-भावों में फँसने की भूल नहीं करता अपितु इसके स्थान पर युवावस्था का सुदृढ़ व स्थिर भक्ति-भाव अपना कर, नौजवान युवावस्था को धारण कर लेता है और उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो जाता है।

अन्य शब्दों में जब मनुष्य राग और भोग में रुचिशील जीवन जीने के स्थान पर, वैराग्य और त्याग में प्रवृत्त होकर, आत्मा और परमात्मा के स्वरूप और सम्बन्ध का विचार कर, लौकिक और भौतिक साधनों से भिन्न, आध्यात्मिक उन्नति के साधनों के सम्बन्ध में अपने मन में विवेचन करता है तो आत्मा और अनात्मा के विवेक ज्ञान द्वारा आध्यासिक/मिथ्याज्ञान से उत्पन्न भ्रमपूर्ण और कल्पित ज्ञान से मुक्ति पा, जीवात्मा और परमात्मा के विषय का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर, ब्रह्मसाक्षात्कार कर सकता है। इस तरह इस ज्ञान को आत्मसात् करने वाला जीव जीवनमुक्त हो, ब्रह्मभूत हो जाता है। ऐसे सजन के विषय में सतवस्तु के

कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

आत्मपद दियां तारियाँ कोई विरला पिया लांवदा,
ओ विरला पिया लांवदा।
जन्म ते मरण कोई विरला पिया मिटावंदा,
कोई विरला पिया मिटावंदा।।
परमपद दी होई ए जिन्हुं चाह,
जग प्रकाश हो जाऊगा।

आओ परमपद की प्राप्ति हेतु अब इसी विषय में आगे जानते हैं:-

स्पष्ट है सजनों आत्मज्ञान चारित्रिक उपलब्धि है। सतत् आत्मनिरीक्षण व आत्मनियंत्रण द्वारा अपने आचार-विचारों व चारित्रिक स्वरूप का निरंतर परिशोधन यानि सुधार करते रहने से आत्मज्ञान प्राप्त होता है। अतः सत्संग द्वारा शब्द ब्रह्म विचार पकड़, सांसारिक आसक्ति का परित्याग करो और अपने आप को पूर्ण रूप से जानो व तदनुरूप अपने चरित्र को सुधार कर, निज् का सम्यक् ज्ञान यानि आत्मज्ञान प्राप्त करने के योग्य अधिकारी बनो क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ भी कह रहा हैः-

इको आप दी इको पछान करो ओ पूरी,
न होगी दिलगीरी वक्त है अखीरी।

याद रखो यह ज्ञान, आत्मा और उससे भी बढ़कर परमात्मा का ज्ञान है। दूसरे शब्दों में यह जीवात्मा- परमात्मा के विषय में सम्यक् ज्ञान है। इस सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करने वाला

आत्मज्ञानी सोते हुए भी सदा जाग्रत रहता है यानि आत्मसत्ता के प्रति विश्वास रखते हुए हर कार्य विवेकपूर्ण करता है। इस तरह वह संतोष-धैर्य अपनाकर आप तो सत्य-धर्म के विचारयुक्त सवलड़े रास्ते पर निष्कामता से चलता ही है, साथ ही औरों को भी सद्‌मार्ग पर प्रशस्त करने का परोपकार कमाता है। यही नहीं वह सभी चराचर प्राणियों के प्रति समभाव रखता है और समदृष्टि से सबके साथ सजनता का व्यवहार करता है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

समभाव समदृष्टि, समभाव समदृष्टि,
सजन जेहड़ा इक निगाह इक दृष्टि देखे जगत जहान,
ओ जी ओ जी।
कर लैंदा ओ मेरे साजना, कर लैंदा ओ मेरे साजना।
कर लैंदा आत्मिक ज्ञान ओ जी ओ जी।

इसके विपरीत सजनों अविवेकी व्यक्ति आत्मज्ञान का लाभ प्राप्त करने से वंचित रह जाता है और आत्मसत्ता के प्रति विश्वास न रख पाने के कारण अविचारयुक्त कवलड़े रास्ते पर चलता है। इसी वजह से सजनों प्रसन्नचित्तता के स्थान पर झुखना-रोना उसके स्वभाव के अंतर्गत हो जाता है और वह कभी सुखी नहीं हो पाता। इस संदर्भ में सजनों यह इन्सानी चोला प्राप्त कर, सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर होने के बावजूद हम इस परम उपलब्धि से वंचित रह जाएँ और यह अनमोल जीवन हार बैठें, यह हमें शोभा नहीं देता। ऐसा इसलिए भी कह रहे हैं क्योंकि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

कुदरत ने इन्सान बनाया,
ओहदे विच इक जीव बना के।
आत्मपद दी खोज करो,
अपनी इन्सानी दिखा के।
हाँ अपनी इन्सानी दिखा के,
वाह अपनी इन्सानी दिखा के।।

इस उद्देश्य पूर्त्ति हेतु सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित आध्यात्मिक विषयों यथा सर्वव्यापी आत्मतत्व/चैतन्य/ब्रह्म/परमेश्वर आदि का मनन एवं चिंतन कर, अक्षर ब्रह्म यानि अपने अविनाशी आत्मतत्त्व को जानो। इससे श्रेष्ठ अक्षर अव्यय ब्रह्म व उससे परे परब्रह्म का मर्म तो स्पष्ट होगा ही साथ ही अपने 'स्व-भाव' (क्षर विराट् विश्व) का रहस्य तथा उसकी कार्यप्रणाली भी स्पष्ट होगी। इस तरह आपके लिए 'ईश्वर है अपना आप' इस विचार पर सुदृढ़ बने रह, इस जगत में अपने समस्त कर्त्तव्यों का संपादन निर्लिप्तता से करते हुए अकर्त्ता भाव में अडिग बने रहना सहज हो जाएगा। जानो यह एक सत्-वादी इंसान की तरह सर्गुण-निर्गुण सम कर जान विचार, एक दृष्टि, एकता और एक अवस्था में बने रहने की शुभ बात होगी।

इस संदर्भ में जानो कि आज के समयकाल में 'मैं हूँ' यह जो भाव प्रत्येक प्राणी में पाया जाता है, उसी स्वकीय भाव का नाम 'स्वभाव' है। हरेक प्राणी 'मैं हूँ' ऐसा अपना स्वसिद्ध अस्तित्व घोषित करता है। मनुष्य सारे विश्व के अस्तित्व को भले ही अमान्य करे, लेकिन वह कभी अपने अस्तित्व को नहीं भुला सकता यानि अन्य पदार्थों का भान नष्ट होने पर

भी 'मैं हूँ' यह संवेदना या प्रतीति नष्ट नहीं होती इसलिए इसे 'निज भाव' या 'स्वभाव' कहा जाता है तथा व्यक्ति की जन्मजात मानसिक प्रवृत्ति माना जाता है। अधिकतर इस स्वाभाविक मानसिक मनोवृत्ति द्वारा व्यक्ति अपने अस्तित्व के स्थूल पहलू यानि शारीरिक पहचान तक ही सीमित रह अहंकारी हो जाता है और मिथ्या शारीरिक शक्ति, दैहिक सुन्दरता, बुद्धिमत्ता, भौतिक संपत्ति/उपलब्धियों, सामाजिक महत्त्व आदि की प्राप्ति पर गर्व युक्त होकर अपने को अन्य लोगों से श्रेष्ठ समझने लगता है। चाहे सामान्य लोक व्यवहार में सजनों ऐसा व्यक्ति औपचारिक शिष्टाचार में मान-सम्मान पाता हुआ, सफल और सयाना गिना जाता है परन्तु हकीकत में 'मैं' और 'मेरा' तक सीमित उसकी यह मनोवृत्ति उसके यथार्थ आत्मबोध को विकृत बना देती है यानि आत्मविस्मृति का कारण बनती है क्योंकि व्यक्ति अपनी सहज बुराईयों व कमियों से परिचित हो, संकल्प कुसंगी को संगी बना उस पर फतह नहीं पा पाता। इसी 'हौं-मैं' के कारण उसका ख़्याल अफुर नहीं हो पाता और वह आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर, आत्मबोध के सर्वोच्च एवं उत्कृष्ट स्वरूप का बोध नहीं कर पाता। इसलिए कहा गया है:-

आत्मिक ज्ञान दी जिस सजन नूं होवे चाह,
उस सजन दी जिह्वा न झुखे,
संकल्प न झुखे, झुखना है फुरना।

सजनों आपके साथ ऐसा न हो इसलिए अब आगे ध्यान से सुनो:-

आत्मबोध का सर्वोच्च एवं उत्कृष्ट स्वरूप तो सजनों समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, आध्यात्मिक चिंतन यानि एकाग्रचित्त होकर अपने मन को प्रभु में लगाने यानि संकल्प कुसंगी पर फतह पाने से ही प्रतीत होता है। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ भी कह रहा है:-

जिन्हुं मेरे मिलने दी होइ ए चाह,
स्वभावां वल्लों ख़्याल नूं लवे ओ हटा।
इलाही सूरत चमके ओ मेरी,
इन्सान दर्शन लवे ओ पा।।

संकल्प कुसंगी पर फ़तह पाने हेतु सजनों यह कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

फिर जे संकल्प नूं जितना चाहो,
शारीरिक स्वभावां नूं जे जितना चाहो,
कुसंगी संकल्प नूं सजन बनाओ,
संकल्प दे स्वभावां वल्लों जित पा के
फिर जाँचो तोलो ते तुल खड़ोवो,
फिर स्वभावां वल्लों जित पाओ सजनों,
स्वभावां वल्लों जित पा लवो।

इस प्रकार सजनों इस युक्ति को प्रवान कर जब सजन, देह और आत्मा का यथार्थ रूप जानकर, स्थूल देह एवं समस्त भौतिक पदार्थों को अनित्य, क्षर यानि नाशवान समझने लगता है और आत्मा को उनसे सर्वथा भिन्न, शाश्वत् और अविनाशी यानि अक्षर जानता है तब उसका आत्मबोध सच्चा माना जाता है। वस्तुतः आत्मबोध नित्य और अनित्य के

विवेक से उत्पन्न ज्ञान का ही बोधक है। ऐसा व्यक्ति संसार में रहता हुआ भी वैराग्य या अनासक्ति के भाव से युक्त होकर परम पुरुषार्थ मोक्ष को परम लक्ष्य बनाकर उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है और यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके आत्मा के सच्चे स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव कर आत्मोन्नति करता है।

इस आधार पर सजनों आत्मा यानि शुद्ध चैतन्य यानि परम तत्त्व का साक्षात्कार ही आत्मबोध का वास्तविक हेतु है जो व्यक्ति को परमात्मा से अभिन्न होने का अनुभव कराता है। अतः इस के लिए अपने मन में परमपद प्राप्ति की प्रबल इच्छा जाग्रत करो। जान लो जितनी यह इच्छा प्रबल होगी उतना ही आत्मानुभूति के लिए लालायित होकर निष्कामता से परमार्थ को अपनाने की ओर प्रेरित व प्रवृत्त होंगे। यहाँ आवश्यकता होगी सत्संग व सत् शास्त्र का विचार एवं मनन करने की। मत भूलो कि शुष्क शब्दबोध से यानि वेद-शास्त्रों के मात्र अध्ययन/पठन से या उनके गायन एवं सुनने मात्र से कुछ नहीं होगा अपितु उन शब्द ब्रह्म विचारों का चिंतन कर उन्हें आचार-व्यवहार में लाना होगा और इस तरह सर्व में उस अपरोक्ष आत्मा की अनुभूति करनी होगी। यहाँ चिन्तन से तात्पर्य ध्यान द्वारा यानि बार-बार स्मरण करके किसी वस्तु, तथ्य अथवा विषय पर भली भांति सोचने-विचारने व विवेचना करने से है। इस आध्यात्मिक चिंतन से अंतर्मन का कालुष्य धुल जाएगा और अंतर्मन स्वस्थ होकर आपको आध्यात्मिकता की दिशा में ले चलेगा जिससे आप संसारी स्वभावों की तरफ से जित पा निरंतर आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति करने लगोगे। इस प्रकार बहिर्मुखी होने के स्थान पर

अंतर्मुखी हो जाओगे तो स्वतः ही हृदय में अफुरता का वातावरण पनपेगा और आपके लिए संतोष, धैर्य पर बने रह सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर सुदृढ़ता से बने रहना सहज हो जाएगा। इस तरह तीनों तापों का घटता-बढ़ता टैम्प्रेचर सम हो जाएगा और फिर समभाव-समदृष्टि जो एक निगाह एक दृष्टि देखनी होती है बिना यत्न के उसकी प्राप्ति हो जाएगी। यह होगा जन्म की बाज़ी को जीत लेना।

तभी तो कहा गया है जब मनुष्य अंतर्निहित आत्मज्ञान का बोध कर दृढ़तापूर्वक उसका चिन्तन करता हुआ किसी भी कार्य में संलग्न होता है तो वह क्रमशः ध्येय प्राप्ति की ओर स्वतः अग्रसर होता जाता है। इस संदर्भ में उपनिषदों में भी कहा गया है:-

'आत्मसाक्षात्कार न तो प्रवचन करने से, न पांडित्यपूर्ण मेधाबुद्धि से, न ही अत्याधिक वेद श्रवण या ज्ञान से हो सकता है। किन्तु यह आत्मा (परमात्मा) स्वयं ही जिसका वरण करता है उसी के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और यह आत्मा (परमात्मा) स्वयं ही उसको अपने शरीर यानि स्वरूप को खोलकर प्रकट कर देता है।

निःसंदेह यह जानने के पश्चात् सजनों आप सबके अन्दर निःस्वार्थ भाव से यह इच्छा जाग्रत हो गई होगी कि ईश्वर आपकी सुरत का वरण कर लें। क्या ऐसा ही है?

हाँ जी।

तो फिर जानो कि इस हेतु सर्वप्रथम आपको आत्मशुद्धि

यानि अपने अंतःकरण की शुद्धि कर सतवस्तु का श्रृंगार पहनना होगा। जो सतवस्तु का सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म रूपी सुन्दर श्रृंगार पहन कर आएगा ईश्वर स्वतः उसकी सुरत का वरण कर लेगें और अपना पूरा स्वरूप खोल कर समझा देंगे। इस तरह उस रूप/स्वरूप को धारण करने वाले के अन्दर फिर शब्द ब्रह्म के रूप में ब्रह्म विचार यानि आत्मिक ज्ञान प्रस्फुटित होने लगेगा और वह आत्मविश्वासी उसके प्रयोग द्वारा अजर-अमर अवस्था को प्राप्त कर, अंत अपने घर परमधाम पहुँच विश्राम को पाएगा यानि जगत विजयी नाम कहाएगा।

स्पष्ट है सजनों परमपद प्राप्ति हेतु आत्मबोध की अदम्य एवं उत्कट इच्छा होना अनिवार्य है। अन्यथा सामान्य लौकिक व्यवहार में लोग अच्छी तरह से जानते हैं कि देह सहित सभी पदार्थ नाशवान हैं तथापि इतने ज्ञान से उन्हें सच्चा वैराग्य नहीं होता क्योंकि संसार को मिथ्या मानने की मनोवृत्ति अल्प समय तक ही टिकती है और इंसान फिर-फिर माया के वशीभूत हो लोभ-लालसा के घेरे में आ जाता है। इसलिए ज्यादातर लोग ऐन्द्रिक सुखोपभोगों के लिए लालायित होकर उनके पीछे दौड़ते रहते हैं। इससे सिद्ध हो जाता है कि कोरा एवं शुष्क शाब्दिक आत्मज्ञान भीतरी सतह को छूता नहीं और वह शुकवत् (तोते की) रटन जैसा निरर्थक होता है। इसलिए व्यवहार में देखा जाता है कि अनेक शास्त्रों का ज्ञाता होते हुए भी मनुष्य सांसारिक भोगों की माया में डूबा रहता है। ढेर सारे सिद्धान्तों का ज्ञान निष्फल बना रहता है। इसके विपरीत यदि मानव समभाव समदृष्टि की युक्ति अनुसार, हकीकत में शब्द को गुरु

मानकर, अपनी ब्रह्म सत्ता को ग्रहण कर लेता है और उस द्वारा प्रदत्त आत्मज्ञान का अल्प अंश भी आचरण में ला निष्कामता से सत्य-धर्म के रास्ते पर चल पड़ता है तो वह सचमुच आत्मसाक्षात्कार यानि अपने असलीयत स्वरूप की पहचान कर परमपद प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। अतैव सजनों अगर आपके मन में परमपद प्राप्त करने की प्रबल इच्छा है तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ की वाणी के रूप में विदित शब्द ब्रह्म विचारों को अमल में लाना सुनिश्चित करो और यह शुभ कार्य सिद्ध कर लो। इस हेतुः-

सजनों हिम्मत लड़ाई जावो,
अपनी किस्मत जगाई जावो, समझो एहो बात।
जित किस्मत वलों पाई जावो,
फिर ओ किसे दा न लवे ओ साथ।।

अंततः सजनों याद रखो सच्चा आत्मबोध अपनी अपरोक्ष सत्ता को सच्चिदानंद स्वरूप जानकर परब्रह्म से अभिन्न महसूस करने में ही है। इसी से जीवनमुक्त हो सकता है व परमपद की प्राप्ति हो सकती है।

आप सबकी जानकारी हेतु सजनों आगामी सप्ताह हम, गत सप्ताहों में जो भी पढ़ा है उस के विषय में आत्मनिरीक्षण करेंगे।

आत्मनिरीक्षण

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

सजनों आज के समयकाल में कोई विरला ही इस सत्य को अंगीकार कर, अपने दिल से एक दूसरे के प्रति वैर भाव मिटा, परस्पर एकता व एक अवस्था में दृढ़ता से बना रह पाता है। आप भी ऐसे ही विरले इंसान बनो।

इस हेतु मन-वचन-कर्म से यानि पूरे दिल से

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

याद रखो ऐसा करने पर ही स्थिर बुद्धि हो आत्मकल्याण कर सकते हो।

सजनों गत सप्ताहों में निर्मलता, आत्मशुद्धि, आत्मज्ञान व

आत्मबोध के विषय में जानने-समझने के पश्चात् हमें ज्ञात हुआ कि शुद्ध चित्त वृत्ति व मन का उपशम होना, आत्मज्ञान व आत्मबोध के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जानो चित्त की शुद्धता व मन की निर्मलता द्वारा कुदरत की रमज़ जानने हेतु सत्य का संग, सत्-शास्त्र का अध्ययन-मनन करने के उपरांत, शब्द ब्रह्म विचारों को अमल में लाना बहुत ज़रूरी है। अन्य शब्दों में अंतर्मुखी होकर जब कोई व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को जानने की चेष्टा करता है तो ही वह आत्मसुधार व आत्मबोध की ओर प्रवृत्त माना जाता है। इसके विपरीत बाहरी दुनियां की चकाचौंध और बहुविध् रूप आकर्षणों के कारण स्वयं को काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के चक्रव्यूह में फँसाए रखने वाला बहिर्मुखी मानव कभी भी आत्मसुधार की दिशा में उद्यत नहीं हो पाता और यहाँ आने के बावजूद यानि वचन प्रवान न कर पाने के कारण जन्म की बाज़ी हार बैठता है।

स्पष्ट है सजनों आत्म-उद्धार/आत्मोद्धार हेतु व्यक्ति का अन्तर्मुखी होना अति ज़रूरी है। अन्तर्मुखता एकाग्रता को जन्म देती है और एकाग्रचित्तता आत्मावलोकन में सहायक बनाती है। एकाग्रता के अभाव में अपने मन की दुनियां की रमज़ जान अपने यथार्थ को समझना सर्वथा दुष्कर प्रतीत होता है। इस संदर्भ में सजनों जानो, निज यथार्थ को समझे बगैर, किसी दूसरे व्यक्ति को, समाज को और संसार को भी नहीं जाना जा सकता। अन्य शब्दों में आत्मनिरीक्षण, आत्मचिंतन, आत्मावलोकन यानि अपने आप को देखना-बूझना या परखना, अन्तश्चेतना की खिड़की होती है जिसके ज़रिए निज प्रकृति और आस-पास के परिवेश का साक्षात्

किया जा सकता है यानि अज्ञान और अहं की कूपमंडूकता से निकलकर जीवन को सार्थकता दी जा सकती है। इसी के द्वारा व्यक्ति सात्विकता को ग्रहण करता है और उसके प्रकाश में अपनी कमज़ोरियों व बुराईयों को जान-समझ कर आत्मसंयम द्वारा आत्मसुधार करने का प्रयत्न करता है। इस तरह आत्मोन्नयन के पथ पर प्रशस्त हो, अपने अन्दर विद्यमान परम शक्ति के अंश रूप को पहचान कर, उसे आजीवन प्रदीप्त रखने के लिए प्रतिबद्ध हो जाता है और अंतर्निहित क्षमताओं और प्रतिभाओं का विकास करता है। अंतर्दृष्टि की सहायता से न सिर्फ़ अपने अन्दर अपितु सारे चराचर जगत में उस परमब्रह्म के प्रकाश का अनुभव कर आत्मतृप्त हो जाता है। इस प्रकार स्वः को विश्वरूप से अभिन्न देखते हुए यानि स्वयं को संपूर्ण भूतमात्र में और सर्वभूतों को स्वः में देखते हुए, सर्वत्र आत्मवत् समभाव व सजन भाव से विचरता है और सदाचरण करने वाला सच्चा आत्मयोगी कहलाता है। यहाँ आत्मोन्नयन के साथ सामाजिक उद्धार की भावना भी उसमें जाग्रत हो जाती है और वह त्याग भाव से ईश्वर की सेवा के निमित्त अपने आप को अर्पित कर, निष्कामता से परोपकार करता है और अपने जीवन का परम प्रयोजन सिद्ध कर लेता है। सजनों यह है महत्ता आत्मनिरीक्षण यानि आत्मावलोकन की। इसी उपलब्धि के दृष्टिगत आओ हम सब भी गत सप्ताह पढ़ाए गए सबकों के विषय में गंभीरता से आत्मलोचन करें:-

1. क्या आप बुरी बातों के कुसंग से बचने हेतु अपने दिल को सदा ईर्ष्या-द्वेष, आपस की फूट और दुःख-सुख, शोक-हर्ष आदि द्वन्द्वों से अलग रख पा रहे हो?

2. क्या आप इस जगत में निष्कामता से विचरते हुए अपने मन को विकार रहित, स्वार्थ रहित, दोष रहित व संकल्प रहित अवस्था में साधे रख अपनी आसुरी वृत्तियों पर फतह पाने में सक्षम हो पा रहे हो?

3. क्या आप सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित आध्यात्मिक विषयों यथा सर्वव्यापी आत्मतत्व/चैतन्य/ब्रह्म/परमेश्वर आदि का मनन एवं चिंतन कर, अक्षर ब्रह्म यानि अपने अविनाशी आत्मतत्त्व को जानने का प्रयास कर रहे हो?

4. क्या आप भाव शुद्धि हेतु सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म भाव को धारण कर अपने आचरण की शुचिता को बनाए रखने में कामयाब हो पा रहे हो यानि मानसिक एवं भौतिक दोनों धरातलों पर, अपने भावों, आचार-विचार व व्यवहार का अध्ययन करते हुए सदैव सत्वप्रधान भाव को धारण करने के प्रति सचेतन बने रह पा रहे हो?

5. क्या आप अंतर्निहित अपने वास्तविक स्वरूप की विशुद्धता के भाव को यानि 'विचार ईश्वर है अपना आप' इस विचार को आत्मसात् कर अपने असलियत प्रकाश पर खड़े हो पा रहे हो?

6. क्या आप निर्वैर होकर समभाव से अपनी आत्मा के समान ही सभी जीवों की आत्मा को मानते हुए उनके प्रति मित्रता का दृष्टिकोण रखते हुए, परस्पर सजनता का भाव अपना कर एक सत्यवादी इंसान की तरह एकता व एक अवस्था में बने रह पा रहे हो?

7. क्या आप परमपद प्राप्ति हेतु निरंतर अपनी जाँचना

तुलना करते हुए अपने आचार-विचारों व चारित्रिक स्वरूप का निरंतर परिशोधन यानि सुधार करने में सफल हो पा रहे हो?

उपरोक्त विश्लेषण के संदर्भ में सजनों हम विश्वास करते हैं कि पूर्ण कामयाबी प्राप्त करने के लिए आपने सही तरीके से आत्मनिरीक्षण कर अपनी नाकामयाबी के कारणों को समझ लिया होगा। इस विषय में सजनों जैसा कि सब जानते ही हैं कि सृष्टि के अन्य प्राणियों को यह सामर्थ्य प्राप्त नहीं कि वे अपना आत्मनिरीक्षण कर आत्मसुधार कर सकें। मनुष्यों में भी सभी इस पथ के पथिक नहीं होते। जो इस पथ पर चलना भी चाहते हैं उनमें से भी अधिकतर अभावों से ग्रस्त होकर, जागतिक समस्याओं से परास्त होकर और परिस्थितियों से त्रस्त होकर ध्वस्त हो जाते हैं। ऐसे में सतत् रूप से, बारम्बार अपनी प्रवृत्ति, स्वभाव और प्रकृति का अध्ययन व निरीक्षण करने वाले, कई विरले जागरूक व पुरुषार्थी भाग्यशाली समझदार इंसान ही, व्यक्तिगत दुर्बलताओं से मुक्ति पा आत्मोन्नति के मार्ग पर प्रशस्त हो पाते हैं। उनके ही व्यक्तित्व में संतोष, धैर्य, क्षमा और सहिष्णुता जैसे गुण विकसित हो पाते हैं। ऐसे व्यक्ति फिर अपनी बुराई या कमज़ोरी सुनकर कदाचित् उत्तेजित नहीं होते यानि मिथ्या आरोपों से तिलमिला कर, क्रोध में आकर अपना आपा नहीं खोते वरन् आत्मसंयम का व्यावहारिक प्रमाण देते हैं। इस हेतु वे बार-बार स्वयं को आत्मावलोकन की तुला पर तोलते हैं और आवश्यकता पड़ने पर आत्मनियन्त्रण द्वारा स्वयं को साधते हैं। हम कह सकते हैं

कि आत्म विश्लेषण की निरंतर दीप्ति से सम्पन्न होने के कारण ही सजनों वे आत्मविश्वास से भरे होते हैं और कभी भी अहंकार युक्त झूठा प्रदर्शन नहीं करते। हमें भी सजनों आत्मविश्वासी बनने हेतु, आत्मनिरीक्षण की इस महत्ता को समझना है और सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार, कदम-कदम पर अपना निरीक्षण करना है और दिव्य दृष्टि का सबक़ ले मृतलोक पर विजय प्राप्त करने वाले भाग्यशाली इंसान बनना है। इस संदर्भ में सजनों यह ग्रन्थ बार-बार कह रहा है:-

कदम कदम ते विचार, विचार नाल होवे प्यार।
दिव्य दृष्टि सजनों दिखाओ, जित्तो मृतलोक नूं।।

अर्थात्

जो बात किसी के साथ करो विचार कर करो और विचार से ही उत्तर दो।

क्योंकि

विचार महाराज जी के मुख की बाणी है और विचार ही सजनों जीत और फ़तह है। विचार ही कुदरती आई हुई है। जबकि अवविचार कुसंग के कारण मनुराज ने रची है। ऐसी बात अपने व सबके अन्दर खलबली/उत्पाद मचा अशांति फैलाती है। यह संकल्प के कुसंगी होने का प्रतीक होता है। अतः यदि जीवन बनाकर परमपद पाना चाहते हो तो मनमत के कुसंग में मत फँसो अपितु विचार शब्द को पकड़ कर अपना जीवन बनाओ क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

जिस सजन ने विचार के साथ कुल दुनियां में और जनचर बनचर जड़ चेतन में एक प्रकाश समझ लिया उस सजन की फ़तह ही फ़तह।

अंततः सजनों जान लो कि मनुष्य चाहे कितनी भी भौतिक उन्नति करे तथा अनेक उपलब्धियों से व्यवहार में सम्मानित हो किंतु जब तक वह अपनी आत्मा के निजी शुद्ध चैतन्य के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानता तब तक वह तृष्णा पूरी न होने के कारण अपने आप को अपूर्ण, बेचैन और अतृप्त सा महसूस करता है। उसे पूर्ण तृप्त तथा परमानन्द से सराबोर करने की क्षमता केवल आत्मज्ञान व तत्पश्चात् होने वाले आत्मबोध में ही निहित है। इसी से उसके व्यक्तित्व का जागरण हो सकता है और वह भौतिक धरातल यानि जागतिक परिधि से ऊपर उठकर, आत्मिक यानि आध्यात्मिक बोध कर परिपूर्णता के एहसास से सराबोर हो जाता है। इसी में सजनों मानव जन्म की सच्ची सार्थकता निहित है। आप सब भी सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित युक्ति प्रवान कर, अपना जीवन सार्थक कर सको इस हेतु हमारी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं। अंत में इस कार्य में सफलता प्राप्त करने हेतु आओ अफुरता से एक चित्त होकर बोलेंः-

एक निगाह ओ एक दृष्टि,
एक दृष्टि ओ एक दर्शन।
जनचर बनचर जड़ ओ चेतन,
ओ एक दर्शन ओ एक दर्शन।।

धारण/धारणा-1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,

इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों जैसा कि हम सब जानते हैं कि जब से समभाव-समदृष्टि का स्कूल खुला है तब से लेकर अब तक हमें लगातार जीवन मुक्त हो, परमपद की प्राप्ति करने का आवाहन दिया जा रहा है। इस संदर्भ में सजनों जीवन वह है, जिसमें प्राणी अपनी इन्द्रियों द्वारा चेतन व्यापार करता है तथा मुक्ति अपने आप में हर प्रकार के बंधन से छूटने का सूचक है। इस अर्थ से जीवनमुक्त होने से तात्पर्य जीवित दशा में ही, आत्मज्ञान प्राप्ति द्वारा जीवन का मर्म जान व आत्मतुष्ट हो, मायाबंधन से छुटकारा पाने से है। तभी तो कहा गया है कि जो अखंड चैतन्य स्वरूप के ज्ञान द्वारा, अज्ञान का नाश करके, आत्मरूप अखंड ब्रह्म का साक्षात्कार

कर लेता है और ज्ञान-अज्ञान, पाप-पुण्य, संशय-भ्रम आदि के बंधन से निवृत्त हो जाता है वही ब्रह्म, जीव और जगत के खेल की रमज़ जान जीवनमुक्त कहलाता है। सजनों यह जीवनमुक्ति प्रकृति और पुरुष के बीच विवेकज्ञान से प्राप्त होती है। सबकी जानकारी हेतु यहाँ प्रकृति से तात्पर्य उस मूलशक्ति से है जिसने अनेक रूपात्मक जगत का विकास किया है व जिसका रूप दृश्यों में दृष्टिगोचर होता है तथा पुरुष से तात्पर्य उस अकर्त्ता तथा असंग चेतन तत्त्व से है, जो प्रकृति से भिन्न तथा उसका पूरक अंग यानि आत्मा है। अन्य शब्दों में सजनों जब मानव यह जान जाता है कि यह प्रकृति जड़, परिणामिनी और त्रिगुणामयी है और मैं (पुरुष) नित्य तथा चैतन्य स्वरूप हूँ, तभी वह इस परम उत्तम अवस्था को प्राप्त करता है।

निःसंदेह इस उत्तम अवस्था की प्राप्ति हेतु सजनों आत्मज्ञान प्राप्ति द्वारा, सांसारिकता की तरफ से अपने मन को मोड़ कर व द्वि-द्वेष से मुक्त होकर यानि इन्द्रियों के प्राकृतिक व्यापारों को करते हुए भी अपने मन-चित्त को उससे विलग रख, पूर्ण सचेतनता व भक्ति भाव से, ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल रखते हुए आत्मस्वरूप में केन्द्रित करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार बैहरूनी वृत्ति छोड़कर अन्दरूनी वृत्ति में बारम्बार, सत्य धारणा करने के अभ्यास से संकल्प कुसंगी, संगी होने लगता है और किसी प्रकार का अभाव नहीं खलता। फलतः सुरत कंचन होने लगती है, मन संतुष्ट हो शांत होने लगता है, चित्त एकाग्र होने लगता है तथा बुद्धि स्थिर होने लगती है यानि समूचा अंतःकरण शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार हृदय सचखंड होने पर जीवात्मा को

आनन्द की अनुभूति होती है। इस आनन्द रस में सराबोर होने पर दुनियां के सब रस फीके लगने लगते हैं और जगत के खोखलेपन अर्थात् नश्वरता का बोध हो जाता है। ऐसा होने पर इंसान अपने यथार्थ आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कर 'ईश्वर है अपना आप' इस विचार पर स्थिर हो जाता है। इस सर्वश्रेष्ठ चैतन्य अवस्था में मन में शुद्ध ब्रह्म-भाव पनपता है। फिर जैसे ही ब्रह्म चिंतन द्वारा अंतःजगत व बाह्य जगत ब्रह्ममय भासता है तो हृदय में समभाव स्थित हो जाता है और इन्सान की अंदरुनी और बैहरुनी दोनों वृत्तियाँ यानि वृत्ति-स्मृत्ति, बुद्धि व भाव स्वभाव रूपी बाणा स्वतः ही निर्मल हो जाता है। फलतः उस उच्च बुद्धि उच्च ख़्याल, आत्मज्ञानी के हृदय में सतवस्तु प्रकट हो जाती है और उसके लिए विचार, सत्-ज़बान, एक दृष्टि, एकता और एक अवस्था में बने रह परस्पर सजन भाव का व्यवहार करते हुए परमपद पाना सहज हो जाता है।

इस संदर्भ में सजनों यदि हमारे मन में भी, सुनिश्चित रूप से ब्रह्मपद प्राप्त करने की चाहना है तो हमें सत्य धारणा के विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित जीवनदायक उच्च विचारों का ग्रहण कर, न केवल जीवन की हर परिस्थिति में उन पर स्थिरता से एकरस बने रहने का पराक्रम दिखाना होगा वरन् अपने बौद्धिक बल का जनहित के लिए प्रयोग करते हुए, अपने आचार-विचार और व्यवहार से अन्य कलुकाल के स्वभावों में फँसे हुए इंसानों को सत्कर्मों की प्रेरणा देने में भी कुशल होना होगा। आपकी जानकारी के लिए सजनों अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति हेतु जो शब्द ब्रह्म विचार धारण कर, निष्कामता से अपने व

सर्वहित के निमित्त व्यवहार में लाने आवश्यक हैं, उनका विवरण इस प्रकार हैः-

सोपान तृतीय

समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसारः-

भक्ति शक्ति नूं धारण करके, सच दा कीता व्यापार,
रामा सच दा कीता व्यापार।
रोशनी निकली ऊँदी सब जग अन्दर, देख रहे नर नार
सियापति रामचन्द्र जी की जय।।

की० 11

सोपान चतुर्थ

सतवस्तु के स्वभाव पकड़ने हेतुः-

सजन शब्द अफुर अवस्था कोई विरला धारण करदा ए।
सजन शब्द उच्चारण करके ओ किसे कोलों नहीं डरदा ए।

की० 73

सोपान पंचम

प्रभु संग मेल खा, जगत में रोशन नाम कहाने हेतुः-

बल शील सन्तोष क्षमा,
एहो व्याख्यान साडा धारण करो।
हां हां इस दा मान करो,
हां हां इस दा मान करो।

की० 35

हृदय सचखंड बनाने हेतुः-

सच खण्ड दी जिसनूं चाह होवे सच्चाई धर्म नूं धारण करो।
गुरु नानक सच दी पट्‌टी लिखी सारे जगत डिट्‌ठी।
इस मन्त्र नूं इन्सानों पकड़ो, ओन्हां ताईं मेल करो।

की० 60

हर उपाधि से बचने हेतुः-

सच्चाई धर्म नूं धारण कर लवे,
हनुमान जी दे चरणां नूं फड़ लवे।
ओ तां दर्शन कर लवे मेरा,
जो चरणां नाल है जुड़या।

की० 96

भगवान की सर्वव्यापकता का भान करने हेतुः-

कलुकाल दी छडो सजनों वृत्ति,
सतवस्तु दी वृत्ति धारण करो।
सतवस्तु विच सच ही बोलचाल,
सत सत दा ही उच्चारण करो।

की० 109

सोपान षष्ठम

आत्मस्वरूप में स्थित रहने हेतुः-

सजनों सुरत नूं कंचन करो फिर नाम ते ध्यान नूं फड़ लवो।
भक्ति नूं फिर धारण करके शक्ति दा हथियार फड़ लवो।

ओ सम सन्तोष नूं धारण करो, फिर धैर्य विचार नूं फड़ लवो।
वैराग दी डोर नूं धारण करो फिर सुरत चरणां दे कोल कर लवो।

की० 23

सच्चाई धर्म में स्थिर रह अपना फ़र्ज़ अदा हँस कर निभाने हेतुः-

सुकर्मों में उत्तम जकड़ता है।
दुःख कलेश कष्ट में आवे तो भी सुकर्म वह छोड़ता नहीं।
सच वर्त्ते सच वर्त्त वर्तावे,
सुकर्मा नूं धारण कर फिर किसी से ओ डरता नहीं।

की० 24

सोपान सप्तम-1

सर्वज्ञ ईश्वर की पहचान करने हेतुः-

सच्चाई धर्म धारण कर लौ सजनों,
फिर चरणां नूं फड़ लौ सजनों।
तुसां इन्हां रीतियां ते चल के सजनों,
ओ रिझा लौ मैनूं सजनों।

की० 1

ख़्याल को अफुर अवस्था में साधे रखने हेतुः-

इक बात लवो फड़ सजनों, दूजी बात न राहवे कोई गल।
राम नाम दी माला सजनों, हृदय विच धारण लवो कर।
फिर ओ फुरना सजनों, न मचावे हलचल, न मचावे हलचल।

की० 9

ब्रह्म भाव अपना सजन-पुरुष बनने हेतुः-

सजनों समभाव समदृष्टि नूं धारण करो।
वैरी दुश्मन शत्रु सारे, इक सजन दृष्टि फड़ो।

की० 10

सतवस्तु के स्वभाव अपना कर यश कीर्ति प्राप्त करने हेतुः-

पोशाक दी चमक देखो,
चमक निराली ए।
पोशाक लै के खड़ा,
पोशाक दा वाली ए।
कोई विरला पोशाक फड़दा,
कोई विरला ओ धारण करदा।
जेहड़ा ओ धारण करे,
ओही जगत ते मालो माली ए।

की० 15

निगाह महाराज जी नाल जोड़ दिव्य दृष्टि प्राप्त करने हेतुः-

विचार शब्द जेहड़ा सजन फड़े,
सहनशक्ति ओ धारण करे।
जित लई उसने ओ इन्द्रपुरी,
इन्द्रपुरी दियां अप्सरां वी जित लईयां।

की0 38

सोपान सप्तम-2

ब्रह्म सत्ता है जित्थे कित्थे अर्थात् जेहड़ा देखो सजनों मन मन्दिर प्रकाश

ओही असलियत ब्रह्म स्वरूप है अपना आप
इस ब्रह्म विचार पर स्थिर रह आत्मज्ञानी बनने हेतु मानोः-

वृत्ति है जे एहो कमाल, वृत्ति है जे एहो विशाल।
एहो कोई मुश्किल फड़दा, विरला कोई धारण करदा।

की० 1

सत्य-धर्म के भक्ति भाव पर स्थिर बने रह
एक शक्तिशाली इंसान की तरह मौत के भय से निर्भय होकर
बेखौफ़ा-बेख़तरा इस जगत में विचरने हेतुः-

भक्ति जेहड़ा सजन लैंदा है फड़, शक्ति लैंदा धारण कर।
जेहड़ा वचन करे प्रवान, ओहदे कोलों भक्ति बड़ी बलवान।
जेहड़ा वचन करे प्रवान, ओहदे कोलों शक्ति बड़ी महान।

की० 12

वैराग अवस्था प्राप्त करने हेतुः-

राम नाम नूं धारण करके, फिर मेल साडे नाल खांदी है।

की० 15

अविचार युक्त कवलड़ा रास्ता छोड़,
विचारयुक्त सवलड़ा रास्ता अपना कर।
व जिह्वा स्वतन्त्र,
संकल्प स्वच्छ व एक निगाह एक दृष्टि होकर।
विवेकबुद्धि होने के प्रति अपना परिणाम लेने हेतुः-

महाराज जी दा केहड़ा है जे पुत्र,
जो वचन पालन करके आया है।

समभाव समदृष्टि नूं सजन धारण करके आया है।

की० 28

बुधवार का पहला बोर्ड

भक्ति-शक्ति आप ने धारण की हुई होगी,
यह है सोए हुए सजन को जगा देना।

अर्थात्

भक्ति-शक्ति धारण कर जाग्रति में आना व एक दृष्टि होकर एक दर्शन में स्थित हो मानना किः-

यह सारा प्रतिबिम्ब मेरा ही है। इसी प्रतिबिम्ब को हर एक में देखना है, जनचर बनचर में वही है, जड़ चेतन में उसी का प्रकाश है। यही असलियत मेरा ब्रह्म स्वरूप है 'वृत्ति है जे एहो कमाल वृत्ति है जे एहो विशाल' एहो कोई मुश्किल फड़दा, विरला कोई धारण करदा।

सोपान सप्तम-3

बुधवार का दूसरा बोर्ड

अंतर्मुखी होने हेतुः-

सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के वचन हैं कि सब सजन अब बैरूनी वृति को छोड़कर अंदरुनी वृत्ति को धारण करें और महाराज जी के साथ जुड़े रहें।

सम पर खड़े हो व दिव्य दृष्टि प्राप्त कर तीनों कालों की पहचान करने हेतुः-

सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म यह चार सवाल हैं,
जो कि धारण करके हल करने हैं।

निर्मल भक्ति, निर्मल शक्ति व निर्मल चाल पकड़ सर्गुण निर्गुण सम कर जानः-

सप्तद्वीप में पहुंचदियां,
महाराज जी दर्शन दिखा ही रहे।
दिन खुशियां राती सुखां दी नींदर,
सम नूं धारण करके एकता ही दिखा रहे।

की० 14

बुधवार का तीसरा बोर्ड

आत्मसाक्षात्कार करने हेतुः-

बैरूनी वृत्ति को धारण करते हुए और अपने गृहस्थ
आश्रम को ठीक चलाते हुए
हम ने अन्दरूनी वृत्ति को पकड़ना है।

इस तरहः-

हमने अपने शरीर को सच खण्ड बनाना है। यह सच्चाई से इस कदर भर जावे कि इसकी सुगन्धि देवलोक की सुगन्धि को भी मात कर देवे। सत्य को धारण करते हुए धर्म के रास्ते पर हम सीधे विचरते जावें। कार्य-व्यवहार करते हुए हमारा ख्याल महाराज जी के साथ जुड़ा रहे। जो मन मन्दिर प्रकाश है, जग अन्दर, जनचर, बनचर, जड़ चेतन सब में हमें वही प्रकाश नजर आवे। इस प्रकार एक निगाह, एक दृष्टि सजनों पन्द्रह दिनों के अन्दर हो सकती है। इसलिए

हमें पूरी तरह से यत्न करना चाहिए। चलो पन्द्रह दिन के अन्दर अगर हम इस वृत्ति को धारण करने में अपने आप को असमर्थ समझते हैं तो जितना शीघ्र हो सके यह वृत्ति अवश्य धारण कर लेनी चाहिए और एक ख़्याल हो जावे महाराज जी नाल मेल एहो खावे। कहने का आशय यह है कि जो ब्रह्म भाव को धारण कर के वर्ताओ करेगा, वही ब्रह्म पदवी को पा सकेगा।

इसलिए याद रखो यह जो समभाव-समदृष्टि की युक्ति अर्थात् युवावस्था के भक्ति भाव का महत्त्व बहुत भारी है। इसका फल चारों धाम का तीर्थ है, बाहर के तीर्थ नहीं। अतः इस महान युक्ति को अन्दर धारण करके इस शरीर को पवित्र करो और खालस सोना होकर प्रभु के साथ प्रभु हो जाओ।

याद रखोः-

जद सजन धर्म वल्लों फतह पा
गया तां ए चार सवाल हल हो गये।
फिर सजनों विचार नूं फड़ लओ,
सत नूं धारण कर लवो।
फिर एक निगाह एक दृष्टि में आकर एकता दिखाओ।

की० 16

शक्तिसम्पन्न बन विश्राम अवस्था में आने हेतु स्मरण रहेः-

शक्तिवान आप ही हो बड़े शक्तिवान दाता,
आप दी शक्ति है बड़ी महान दाता।
एहो शक्ति कोई विरला धारण करदा,
कोई विरला पावे विश्राम ओ दाता।
आप दी शक्ति कोई विरला धारण करदा,

जेहड़ा आप दे वचन करे प्रवान ओ दाता।

की० 33

सोपान सप्तम-4

अतः फुरने दी सृष्टि पर फ़तह पा परमधाम दा नज़ारा देखने हेतुः-

शक्तिवान दाते जी दी शक्ति ओ लैणी ओ फड़।
युवावस्था नाले बल दी प्राप्ति लवे ओ धारण कर।

की० 16

परोपकार कमा परोपकारी नाम कहाने हेतुः-

सुन लौ इक बात, सुन लौ इक बात,
ओ मेरे श्री साजना सुन लौ इक बात।
एहो बात हृदय में धारण कीजिए,
धारण करके हृदय में रख लीजिओ।
पर उपकार जेहड़ा कमावेगा,
पर उपकारी नाम कहावेगा।
जेहड़े सोये पड़े ओ सोये पड़े,
जेहड़े सोये पड़े ओ सोये पड़े।
सोयां होयां नूं जागृति में लियावेगा,
पर उपकारी ओ नाम कहावेगा।

की० 20

सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की
बताई हुई युक्तियों को अपना।

उनकी तरह ब्रह्मचारी व परोपकारी बनने हेतुः-

ओ मेरा प्यारा आहा मेरा प्यारा,
प्यारा है ब्रह्मचारी।
ओ ब्रह्मचारी परउपकारी है ओ परउपकारी,
आ हा हा हा हा हा।
उन्हां नूं कोई विरला समझे आ हा,
कोई विरला धारण करदा आ हा।
धारण करदियां होयां जगत ते फिर वी रहे न्यारा।

वीरवार का तीसरा बोर्ड

स्वभावों का घटता बढ़ता हुआ टैम्प्रेचर समाप्त कर इक रूप होने हेतुः-

जिस सजन को प्रकाश नहीं, वह सजन यत्न करके ख्याल ध्यान वल, ध्यान प्रकाश वल जोड़ें ताकि प्रकाश हो जाए। जहां ख्याल है वहां दृष्टि। जिसे खुला प्रकाश है वह नीचे लिखी हुई युक्ति को धारण करे। जो प्रकाश महाराज जी का हृदय में देखे, वह असलियत प्रकाश मेरा अपना आप है समझे। आगे मैं भूला रहा, अब मेरी भूल दूर हो गई है। यही प्रकाश कुल दुनियां में है। अलफ जो आद अक्षर है उससे प्रकाश होता है 'ये' में खड़े होने से मेल महाराज जी से होता है। सजनों मोटी मोटी बातों का संकल्प तो हट गया परन्तु सूक्ष्म बातें इस युक्ति को धारण करने से हट जाएंगी। यह घटता बढ़ता हुआ टैम्परेचर समाप्त हो जाएगा।

इस तरह जीव कह उठेगाः-

एक हूँ एक हां, एक नज़रों में एक ही एक हर अन्दर सुहा रहा जनचर बनचर जड़ चेतन ओ हर्षा रहा। इको रूप तुम्हारा, इको रूप तुम्हारा। शरीर दी बनावट अलग अलग कोई पतला कोई भारा कोई गोरा कोई काला।

सजनों हम सब संकल्प पर पूरी तरह से फतह पा परोपकार जैसा उत्तम पुरुषार्थ दिखाने में कामयाब हो सकें, इस हेतु सजनों आओ आज धारणा के महत्त्व को समझते हैं:-

धारणा/धारण

धारण शब्द का शाब्दिक अर्थ है अंगीकार करना, ग्रहण करना, सेवन करना, परिधान/वस्त्र या आभूषण पहनना, थामना, किसी वस्तु को अपने ऊपर रखना अथवा अपने किसी अंग में लेना या अपने ऊपर ठहराना जैसे शेष जी ने पृथ्वी को व शिवजी ने गंगा को धारण किया हुआ है। इस अर्थ से धारण शब्द से अभिप्राय किसी भाव/वस्तु/ज्ञान को ग्रहण करके उसे अच्छी तरह थामने/लेने/पकड़ने/संभालने व अंगीकार करके स्मरण रखने से है।

पारमार्थिक दृष्टिकोण से धारण से अधिक धारणा का महत्त्व है। अतः धारण के संदर्भ में धारणा शब्द को भली भांति समझना अनिवार्य है। धारणा से अभिप्राय धारण करने की अवस्था/गुण/क्रिया/भाव से है। धारणा वह शक्ति है, जिससे कोई बात समझ कर मन में धारण की जाती है। इसे मन या ध्यान में रखने की वृत्ति भी कहते हैं। यह मन के दृढ़ विचार/निश्चय/संकल्प और स्थिरता को दर्शाती है। किसी

विषय/व्यक्ति/कार्य/प्रसंग आदि के सम्बन्ध में मन में बना हुआ कोई व्यक्तिगत/निजी विचार या विश्वास भी धारणा कहलाता है।

धारणा वह आन्तरिक शक्ति है जिसके माध्यम से हमें जानी, देखी या सुनी हुई बात का ज्ञान होता है और वह बात हमारे मन/चित्त में स्थाई रूप से संचित हो जाती है। योग के अनुसार चित्त को एकाग्र करने के लिए, चित्तवृत्तियों को चारों ओर से हटाकर, किसी विषय में लगाना/टिकाना या दृढ़ करना और वहाँ से हट जाने पर फिर वहीं खींच कर लाना धारणा है। इसलिए उपनिषदों में कहा गया है:-

'मन को संकल्पात्मक मानकर उसे आत्मा में लय करते रहना और परमात्मा के चिंतन में स्थित रखना धारणा कहलाता है।' जानो प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों के दोषों को तथा धारणा के द्वारा पापों को जलाते हैं।

इस प्रकार सजनों धारणा चित्त को एकाग्र करने की प्रथम अवस्था है जिसके अंतर्गत मन/चित्त को सब ओर से हटाकर निर्विकार, शान्त और स्थिर करने का प्रयत्न किया जाता है। इस दौरान बीच-बीच में अन्य वृत्तियाँ भी आती रहती हैं पर सतत् प्रयास से मन में कोई और भाव या विचार नहीं रह जाता, केवल ब्रह्म का ही ध्यान रह जाता है। उस समय मनुष्य मात्र ब्रह्म चिन्तन ही करता है, उस वैरागी में किसी प्रकार की वासना नहीं उत्पन्न होती और न ही उसकी इन्द्रियाँ विचलित होती हैं। यही धारणा पीछे स्थायी होकर ध्यान व समाधि अवस्था में परिणत हो जाती है।

यहाँ धारणा, ध्यान और समाधि का सूक्ष्म अंतर स्पष्ट करते हुए बता दें कि जब सजन आत्मसंयम द्वारा अपने चित्त की वृत्तियों पर अधिकार कर लेता है और उन्हें चारों ओर से हटाकर परमात्म चिंतन में रत कर देता है तो यह धारणा कहलाती है। धारणा की विकसित दशा में एक समय में एक ही ज्ञान का प्रवाह अन्दर बहता है यानि दूसरा कुछ उसके साथ मिश्रित नहीं होता।

धारणा जब इस अवस्था को पहुँचती है कि धारणीय वस्तु के साथ चित्त के प्रत्यय (विश्वास) की एकतानता (तन्मयता) हो जाती है, तब उसे ध्यान कहते हैं। ध्यान अवस्था में ध्येय (उद्देश्य), ध्याता (ध्यान करने वाला) और ध्यान (चित्त की ग्रहण वृत्ति) का अलग-अलग भान होता है। यही ध्यान जब चरमावस्था को पहुँच जाता है यानि ध्यान और ध्याता का भान नहीं रहता तो वह समाधि कहलाता है। इस अवस्था के अंतर्गत ध्येय के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता अर्थात् ध्याता ध्येय में इतना तन्मय हो जाता है कि उसे अपनी सत्ता भूल जाती है।

यह ध्यान की उच्चतम अवस्था कहलाती है जिसमें अभ्यास और वैराग्य द्वारा समस्त चित्तवृत्तियों का निरोध यानि नाश हो जाता है। यह चित्त की विषय मुक्त पूर्ण एकाग्रता यानि परमात्मा में लीन होने की अवस्था होती है। इस अवस्था को प्राप्त कर जीव विश्राम पा जाता है। इस संदर्भ में सजनों धारणा के उचित महत्त्व को दर्शाने हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

(श्री साजन जी के मुख के शब्द)

अदल बदल हो रही है दुनियां कैसे समझा रहे,
समझा रहे श्री कृष्ण चन्द्र भगवान।
जपो भगवान, जपो भगवान जिन्हुं सिमरे कुल जहान
जपो श्री कृष्ण चन्द्र भगवान।।

ओ ओ ओ मुख में कैसे मुरली साजे हथ चक्र सुदर्शन
आहा हथ चक्र सुदर्शन वाह वाह।
संख चक्र गदा पद्यमधारी नटवर ओही जान,
जपो भगवान जपो भगवान।।

सच नूं धारण करके जेहड़ा सच कमावे,
बेखौफा बेख़तरा, बेडर ओ हो जावे।
निर्भय, निर्वैर ओन्हु मिले त्रिलोकी दी कुर्सी।।
कैसा ओ चमक रिहा, चमके ओ सुजान,
जपो भगवान जपो भगवान।
जपो भगवान, जपो भगवान जिन्हुं सिमरे कुल जहान
जपो श्री कृष्ण चन्द्र भगवान।।

सुगम रस्ता ओ धारण करके अगम अगोचर पावे।
बिन किश्तियों बिन बेड़ियों बिन जहाज़ों पार हो जावे।।
निर्भय, निर्वैर ओन्हु मिले विश्रामी पलंग।
कैसा ओ चमक रिहा, चमके ओ महान,
जपो भगवान जपो भगवान।
जपो भगवान, जपो भगवान जिन्हुं सिमरे कुल जहान
जपो श्री कृष्ण चन्द्र भगवान।।
शक्ति नूं धारण करके जेहड़ा शक्ति नूं चमकावे।

बिन हथियारों बिन तीरों बिन तलवारों जय ओ पावे।।
निर्भय, निर्वैर ओन्हु मिले अनमोल सिंहासन।
हीरे रत्न जड़त ताज ओहदा जान,
जपो भगवान जपो भगवान।
जपो भगवान, जपो भगवान जिन्हुं सिमरे कुल जहान
जपो श्री कृष्ण चन्द्र भगवान।।
निष्काम नूं धारण करके जेहड़ा निष्काम हो जावे।
बिन औखियाईयों, बिन खेचलों बिन तकलीफ़ों पार हो जावे।।
निर्भय, निर्वैर, ओ ऐसे पद नूं पावे।
ओ चमक रिहा, चमके कुल जहान,
जपो भगवान जपो भगवान।
जपो भगवान, जपो भगवान जिन्हुं सिमरे कुल जहान
जपो श्री कृष्ण चन्द्र भगवान।।
निर्वाण पद नूं पाय के जोती नाल जोत हो जावे।
बिन फुरनियों बिन सूरजों सर्व प्रकाश हो जावे।।
ओ चमके सच खण्ड ब्रह्माण्ड, ओ सर्व सर्व ही जान,
जपो भगवान जपो भगवान।
जपो भगवान, जपो भगवान जिन्हुं सिमरे कुल जहान
जपो श्री कृष्ण चन्द्र भगवान।।

हम सब भी सजनों उपरोक्त कीर्तन में वर्णित युक्ति को अपना कर अफुर हो बिन सूरजों प्रकाशित हो सकें, इस हेतु धारणा के विषय में इससे आगे बातचीत आगामी सप्ताह करेंगे ।

दिनाँक 18 फरवरी 2018 का सबक़

धारण/धारणा-2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,

इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि ध्येय (उद्देश्य) वस्तु में मन की जो स्थिति है, उसका नाम धारणा है। केवल ध्येय वस्तु में मन एकाग्रता से ठहरा रहे यानि बाहर की ओर किसी प्रकार का लक्ष्य न रहे तथा चित्त का लक्ष्य केवल एक ही ओर रहे, उसी को धारणा कहते है। इस संदर्भ में निर्वात यानि हवा से रहित प्रदेश में दीप जिस प्रकार विचलित न होकर स्थिर रहता है, उसी प्रकार चित्त जब किसी ओर विभक्त न होकर एकमात्र ध्येय वस्तु अथवा परमात्म चिंतन में अवस्थित रहता है, तब उसे धारणा कहते हैं। इस तरह धारणाभ्यास युक्तात्मा अर्थात् जिसका चित्त स्थिर हुआ होता है उसे ही अन्तकाल में परमपद की प्राप्ति होती है।

इसी महत्त्व के दृष्टिगत सजनों प्रत्येक व्यक्ति के लिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित, युवावस्था के भक्ति-भाव अनुसार, निष्कामता, सम-संतोष, धैर्य-सहनशक्ति, सच्चाई-धर्म, बल-शील, क्षमा, वैराग्य, सत्-नाम, समभाव-समदृष्टि आदि दिव्य गुणों को इस प्रयत्न से धारण करने का विधान रखा गया है कि फिर किसी भी परिस्थिति व अवस्था में चित्त इनसे विच्युत यानि डगमगाए न। इस प्रकार चित्त को साधे रखने से ही उत्तम धारणा आरंभ होती है।

स्पष्ट है धारणा का सर्वोत्तम रूप शुद्ध धारणा है इसलिए तो ईश्वर प्राप्ति के निमित्त, राग-द्वेष आदि से रहित होकर, भक्ति भाव व निष्कामता से किए जाने वाले जप-तप, वेद-पाठ, पूजा-अर्चना-उपासना, नाम-स्मरण, भजन-बन्दगी, संकीर्तन, नित-नेम, सत्-शास्त्र का विचार, सत्संग इत्यादि सत्य धारणा द्वारा चेतना को व्यवस्थित यानि स्थिर कर, मन-चित्त को एकाग्र करने के उत्तम साधन माने जाते हैं। इसी कारण से शुद्ध धारणा को योग (सुरत-शब्द के मेल) का प्रथम अंग माना जाता है और कहा जाता है कि धारण करने का नाम ही ध्यान है। इसी ध्यान के स्थायी हो जाने में धारण किया हुआ भाव/वस्तु/ज्ञान धारणा में परिणत (रूपांतरित) हो जाता है। ऐसा होने पर फिर इन्द्रियाँ/मन किसी ओर विचलित नहीं होता अपितु तन्मय होकर एकमात्र ध्येय वस्तु पर स्थिर रहता है और प्रकृत धारणा योग सिद्ध हो जाता है।

स्पष्ट है सजनों धारणा कोई एकांगी (एकतरफा) वस्तु नहीं है अपितु यह तो एक आन्तरिक शक्ति है जिसके माध्यम से

धारक किसी विचार, विश्वास, सत्य आदि का ग्रहण कर उसे धारण करता है। अतः इसके लिये अनेक तत्त्वों का समायोजन (एकत्र) होना आवश्यक है। इसी संदर्भ में आओ जानें कि धारणा के अनिवार्य तत्व क्या हैं:-

धारणा के अनिवार्य तत्त्व

1. धारणा के लिये आन्तरिक शक्ति व हृदय या व्यक्ति को दृढ़ रहना आवश्यक है यानि उस पर किसी प्रकार के भय का आतंक नहीं होना चाहिए।

2. इस हेतु व्यक्ति की स्मृति (यादगार) प्रबल होनी चाहिए, जिससे वह धारणा के आधार का स्मरण बनाये रख सके। स्मृति की प्रबलता जितनी अधिक होगी, धारणा की स्थिरता उतनी ही दृढ़ रहेगी।

3. धारणीय वस्तु के सम्बन्ध में धारक को उसका पूरा ज्ञान होना चाहिए क्योंकि बिना ज्ञान के पहचान नहीं होती और बिना पहचान के प्रेम व स्नेह नहीं बनता, बिना प्रेम या स्नेह के उसके प्रति कोई धारणा नहीं बन पाती है।

4. धारणा की सुरक्षा के लिए निर्मल-मति का होना आवश्यक है। मति से आशय सत्-असत् विवेचनी बुद्धि से है। मति भ्रष्ट होने से धारक, धारणा-भ्रष्ट भी हो जाता है।

5. याद रखो पवित्र जीवन में ही धारणा का स्वरूप पवित्रता के साथ रह सकता है। मलिन तन और मन से धारणा का स्तर गिर जाता है।

6. जिससे सम्बन्धित धारणा करनी है, उसके प्रति विश्वास का होना अति आवश्यक है। विश्वास के अभाव में धारणा की उच्चता, पवित्रता और स्थिरता में गिरावट आ जाती है। विश्वास के बिना धारक या साधक को उचित परिणाम की प्राप्ति भी नहीं हो पाती।

7. एक मर्यादा में रहने पर ही धारणा विशेष का विकास हो पाता है। अतः समुचित तरीके से धारणा करने हेतु सम्बन्धित नीति-नियमों व आचार-संहिता की पालना अनिवार्य है।

8. धारणकर्त्ता के लिए, धारणा की सुरक्षा हेतु बार-बार अभ्यास करना अनिवार्य है। इसके लिए अपने मन को निश्चल यानि स्थिर व दृढ़ रखें यानि जिस की धारणा की गई है उसके विपरीत मन में कोई बात नहीं आनी चाहिए।

9. धारणा के लिए लोक-चेतना, एकनिष्ठा, अभेद-दृष्टि और वासनाहीनता आवश्यक है।

सारतः सजनों हम कह सकते हैं कि आन्तरिक शक्ति, अभय, दृढ़ता, स्मृति, प्रबलता, ज्ञान, निर्मलमति, व्यक्तिगत विचार, पवित्रता, विश्वास, मर्यादा, आत्मिक ज्ञान व अभ्यास, निश्चल मन, एकनिष्ठता, अभेद दृष्टि, वासनाहीनता आदि धारणा के अनिवार्य तत्त्व हैं।

विधि एवं निषेधपरक प्रयोग

धारणा की स्थिति में केवल ध्येय वस्तु पर ध्यान, मन या

विचार का दृढ़ होना तो आवश्यक है ही, साथ ही यह भी जरूरी है कि मन अन्यत्र यानि कहीं ओर न बहक जाए यानि मन का निग्रही (दमन) व एकाग्र (एक ओर स्थिर) होना आवश्यक है। अन्य शब्दों में ईश्वर चिन्तन/नाम-अक्षर चलाते समय मनुष्य के मन में न तो किसी प्रकार की वासना उत्पन्न होनी चाहिए और न ही उसकी इन्द्रियाँ विचलित होनी चाहिए। याद रखो ऐसी धारणा ही भविष्य में स्थायी होकर ध्यान में परिणत होती है। सजनों इसलिए सच्चेपातशाह जी कहते हैं जिसका नाम हो उसी का ध्यान हो और कोई ख़्याल या फुरना न सतावे। यदि बार-बार यत्न करने पर भी ऐसा हो तो सांसारिक चिंतन/बातों के कनरस का निषेध कर देना चाहिए। ऐसा करने से कुछ ही दिनों में अफुर अवस्था बनने लगेगी और फिर इष्ट का ध्यान अबाध गति से स्थिर होने लगेगा। इस संदर्भ में सजनों याद रखो कि एक (परमार्थ) की प्राप्ति के लिए दूसरे (संसार) का निषेध आवश्यक है। अन्यथा जिसका ख़्याल व ध्यान दोनों ओर भटकता है वह कहीं का नहीं रहता।

ब्रह्म विषय में आत्मा के चिन्तन का नाम ध्यान है और मन की धृति (धारण करने या पकड़ने की क्रिया) धैर्य को सुदृढ़ करने वाली है (अर्थात किसी ओर विचलित न होकर मात्र ब्रह्म विषय में मन को समाधान यानि समाधिस्थ करने का नाम ही धारणा है)। इस धारणा की सिद्धि हेतु मानव को सदैव भक्ति-भाव के बाह्य मिथ्या आडम्बरों व कर्मकांडों से दूर रहना चाहिए और पवित्र मन, विचार, कर्म और दृढ़ विश्वास के साथ धारणा की रक्षा करनी चाहिए। इसमें बाधक तत्त्वों का निषेध कर देना चाहिए। याद रखो जब तक

समभाव-समदृष्टि की युक्ति को धारण करने में बाधक घटकों का निषेध नहीं करोगे, तब तक यह साधना पूरी नहीं हो सकती। अतः इस साधना की पूर्ति हेतु समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुरूप, तत्त्वों/नीति-नियमों/कायदे यथा शब्द ब्रह्म विचारों का ग्रहण और विपरीत तत्त्वों यथा निंदा-चुगली, द्वि-द्वेष, लड़ाई-झगड़ा, संसारी बातों के कनरस इत्यादि का निषेध करो, तभी सफलता पा सकोगे।

अभी तक सजनों धारणा के विषय में हमने जो भी जाना समझा उससे हमें ज्ञात हुआ कि धारणा आन्तरिक शक्ति है, जिसके द्वारा हम किसी ज्ञान-वस्तु, विचार या सिद्धान्त को ग्रहण कर उसे अपने भीतर स्थिर करते हैं। इस अर्थ से ग्रहण, धारणा प्रक्रिया का प्राथमिक चरण है यानि जब तक हम किसी चीज को ग्रहण नहीं करते तब तक उसे अंगीकार यानि धारण नहीं कर सकते। इस अर्थ से सजनों ग्रहण शब्द के अर्थ से परिचित होना व तत्पश्चात् यह जानना कि क्या ग्रहण करने योग्य है व क्या नहीं, अनिवार्य है। आओ अब इसे जानते हैं:-

शाब्दिक अर्थ

ग्रहण का शाब्दिक अर्थ है पकड़ने या लेने की क्रिया/भाव, स्वीकार करना। उदाहरणस्वरूप बालकों में माता-पिता की आदतों को ग्रहण करने की अपूर्व क्षमता पाई जाती है। विद्या या ज्ञान के प्रति उत्सुकता होने से छात्रों या जिज्ञासुओं में विद्या या ज्ञान की ग्रहणशीलता पाई जाती है। सजनों में गुणों की अत्याधिक ग्रहणशीलता होती है।

ग्रहण के संदर्भ में स्मरण रखने योग्य बिन्दु

1. जो ग्रहण या प्राप्त किए जाने योग्य हो अर्थात् जो ठीक होने के कारण माना जा सकता हो, उसे ही ग्रहण करना चाहिए। अन्य शब्दों में जो श्रेय यानि श्रेष्ठ हो, उसे ही ग्रहण करना चाहिए। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में ब्रह्म सत्ता को ग्रहण करने की हिदायत देते हुए कहा गया है 'मूल मंत्र है शब्द गुरु। सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ने मूल मंत्र शब्द को गुरु बताया और कहा कि हे इन्सान यह तेरी ही ब्रह्म सत्ता है। अगर तू इस महान सत्ता को ग्रहण कर ले तो तू खुद ही भगवान है।'

2. चेतन पदार्थों की ग्रहणशीलता बुद्धि पर निर्भर करती है और जड़ पदार्थों की ग्रहणशीलता उनकी संरचना पर। कहने का आशय यह है कि जड़ पदार्थ की ग्रहणशीलता चेतन प्राणियों से सर्वथा भिन्न है।

3. ग्रहण प्रक्रिया इन्द्रियों, मन व बुद्धि तीनों के सहयोग से संचालित होती है इसलिए जो ग्रहण किया जाता हो, उसे देखा-सुना-जाना जा सकता है और नियमानुसार विचार आदि के निमित्त प्रयोग में लाया जा सकता है। याद रखो यदि बुद्धि में तीक्ष्णता नहीं होती तो ग्रहणशीलता मंद या फिर शून्य हो सकती है परन्तु यदि मन व बुद्धि के सहयोग से विचार कर, समुचित तरीके से ग्रहण करने की प्रक्रिया की जाए तो हम ग्राह्य यानि ग्रहण करने योग्य भाव/वस्तु/ज्ञान आदि को अंगीकार करके उसे प्राप्त कर सकते हैं।

4. किसी भी भाव/वस्तु/ज्ञान आदि को ग्रहण करने यानि लेने के लिए व्यक्ति के मन में उसे प्राप्त करने की इच्छा/जिज्ञासा/उत्सुकता/प्रवृत्ति/क्षमता का होना अनिवार्य होता है। जहाँ इच्छा, प्रवृत्ति या क्षमता नहीं, वहाँ ग्रहण नहीं हो सकता। इस प्रकार किसी भी भाव/वस्तु/ज्ञान को ग्रहण करने की उन्मुखता या किसी वस्तु को ग्रहण करने की इच्छा/जिज्ञासा/उत्सुकता/प्रवृत्ति/क्षमता - चाहे वह तीव्र हो या मंद, उसकी ग्रहणशीलता के स्तर को प्रकट करती है। मन की सहजता इसमें सहायक होती है।

5. विवेकशीलता ग्रहणशीलता में निर्णायक सिद्ध होती है। इसी द्वारा ज्ञात होता है कि क्या ग्रहण करने योग्य है और क्या नहीं। याद रखो विवेक द्वारा विधि/नियम/रीति के रूप में माने जाने योग्य भाव/वस्तु/ज्ञान को ग्रहण करने वाला ही गुणशील माना जाता है। गुणशील व्यक्ति में गुणों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति लक्षित होती है जबकि दोषपूर्ण व्यक्ति में दोषों का ग्रहण करने की प्रवृत्ति लक्षित होती है।

6. गुणों अथवा दोषों की ग्रहणशीलता सम्पर्क पर निर्भर करती है उदाहरणस्वरूप सत्संग से गुणों का और कुसंग से दोषों का ग्रहण होता है। जिस व्यक्ति में शब्द ब्रह्म विचारों को ग्रहण करने की क्षमता जितनी अधिक होती है, उसकी समझ की पकड़ जितनी समर्थ होती है व उन्हें आत्मसात् करने का आग्रह (हठ, बल) जितना प्रबल होता है, वह व्यक्ति सत्संग और उत्तम व्यक्तियों की संगति व सम्पर्क में रहते हुए उन श्रेष्ठ विचारों को ग्रहण करने का प्रयास करता है।

7. जिस व्यक्ति की ग्रहणशीलता जितनी विचारयुक्त होती है वह उतना ही सक्षम एवं क्रियाशील होता है। इस तरह ग्रहणशीलता एक तरह से बुद्धिमत्ता की ही निशानी है।

स्पष्ट है सजनों विवेक व अनुभव से ग्रहणशीलता का निर्णय सहज हो जाता है इसलिए ग्रहण को अनुभवों के दो प्रकारों में से एक जिसे अध्यवसाय कहा जाता है, माना जाता है। यहाँ अनुभव से तात्पर्य स्मृतिजन्य ज्ञान (यादगार) से भिन्न, प्रत्यक्ष रूप से परीक्षा द्वारा प्राप्त किए उपार्जित यानि संग्रहित ज्ञान से है तथा अध्यवसाय से तात्पर्य लगातार उद्योग यानि अविश्रांत परिश्रम व दृढ़ निश्चय व उत्साह से किसी काम को सम्पन्न करने से है। पारमार्थिक अर्थ से अध्यवसाय के द्वारा, इन्द्रियों के माध्यम से, विषय का ज्ञान होते समय, रजोगुण और तमोगुण की न्यूनता हो जाती है और सत्त्वगुण की प्रधानता हो जाती है, जिससे ज्ञेय विषय (जानने योग्य विषय) का निश्चित ज्ञान प्राप्त होता है। इस निर्विकल्पक ज्ञान यानि सदा एकरस और एकरूप स्थिर रहने वाले ज्ञान प्राप्ति की अवस्था में इन्द्रियों के द्वारा निराकार की प्रतीति होती है।

इसके विपरीत समुचित विवेकशीलता के अभाव में व्यक्ति सही मार्ग से भटक जाता है और ग्राह्य व अग्राह्य (यानि ग्रहण करने व न ग्रहण करने योग्य) भाव/वस्तु/ज्ञान का विचार किए बगैर पतनोन्मुख हो जाता है। अतः इस हेतु संकल्प कुसंगी व दुर्जनों की संगति का परिहार और सत्य व सज्जन पुरुषों की संगति करना आवश्यक है। याद रखो सजनों श्रेष्ठ पुरुषों के महान गुणों का परिचय, उनके सम्पर्क

में रहकर ही करना सम्भव हो पाता है। ऐसे सारग्रही सजनों के पास अनुभवों का विपुल भण्डार होता है, जिनमें गुण-दोष विवेचन से सही मार्ग तलाशने का सन्देश होता है। इस सन्देश को समझने वाला ग्राह्य भाव/ज्ञान/वस्तु का ग्रहण कर अपनी धारणा शक्ति को सबल बनाने व इस तरह अपनी योग्यताओं का विकास करने में सफ़ल हो जाता है।

सजनों अभी आपने जाना कि धारणा की शुद्धता व स्थिरता को बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि हम मूलमंत्र शब्द गुरु के रूप में सर्वत्र अभिव्यक्त अपनी ब्रह्म सत्ता का ग्रहण कर अपने अन्दर सत्य धारणा का विकास करें और धर्म के रास्ते पर निष्कामता से सीधे चलते जाएं। निःसंदेह मन में व्याप्त शत्रु यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, तृष्णा, भ्रम आदि आपकी इस सत्य धारणा में अटकल बन आपको धर्म मार्ग से विचलित करने का सतत प्रयत्न अवश्य करेंगे परन्तु आप याद रखना कि दृढ़-निश्चयी, वैरागी व्यक्ति अपनी राह का ही राही होता है। उसका मन-वचन और कर्म कभी भी निर्धारित पथ से नहीं डिगता यानि वह जीवन में आने वाले अनेकानेक प्रलोभनों व परिस्थितियों के प्रभावों से अपने आप को सुरक्षित रख, ईश्वर के समान स्थिर व समचित्त बना रहता है। इस तरह अनेक व्यवधानों के उपरान्त भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं आता और वह निश्चित धारणा पर स्थाई बना रहता है। याद रखो सजनों विचलन अधोमार्ग दिखाता है। इसी कारण जो सब में लिप्त रहता है, तुष्टिकरण यानि अपने मन को संतुष्ट करने वाली नीति का अनुसरण करता है, वह चंचल मन, मति-भ्रष्ट और विवेकशून्य निर्बल हृदय वाला कच्चा धारक कहीं भी व कभी

भी सफल नहीं हो पाता। अतः गम्भीरता, निश्चयन व दृढ़ता द्वारा हर कदम पर सत्य धारणा की रक्षा करना अनिवार्य है। यदि लेश मात्र भी इनके प्रति निर्बलता हुई तो धारणा की रक्षा नहीं हो सकेगी। इस संदर्भ में याद करो उन युग पुरुषों को, जिन्होंने सत्य धारणा के साधक बन उसे साधा और जीवन के हर क्षेत्र व परिस्थिति में सफलता प्राप्त करी। निःसंदेह सत्य धारणा के धनी होने के कारण ही वे महान बने और उनका यशोगान युग-युगान्तर तक गाया जा रहा है। उनकी तरह पुण्यात्मा व महान बनने हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसारः-

सजनों समभाव समदृष्टि नूं धारण करो।
वैरी दुश्मन शत्रु सारे, इक सजन दृष्टि फड़ो।

अंततः सजनों याद रखो कि समभाव-समदृष्टि की धारणा अपने आप में पावन अभ्यास व तपस्या है। मन में खोट या स्वार्थपरता की स्थिति में यह धारणा सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि हृदय और मस्तिष्क के पूर्ण विकास के अभाव में ऐसे व्यक्ति की धारणा बराबर बदलती रहती है। फलतः वह अपनी आन्तरिक शक्तियों का समुचित प्रयोग नहीं कर पाता और उसके मन के अन्दर भय, निर्बलता, विस्मरण, अज्ञान, मति-हीनता, विचार-शून्यता, अविश्वास, मर्यादा-हीनता, अनाभ्यास, चंचलता, अव्यवहारिकता, अधर्म, अनश्वरता, बहु-निष्ठा, भेद-दृष्टि और वासना का स्थायी घर बन जाता है। निश्चित रूप से ऐसी कलुषित दशा में धारक के हृदय में कोई धारणा नहीं आ सकती और मानव जीवन व्यर्थ चला जाता है।

अतः सजनों सहज और दृढ़ हृदय को समभाव-समदृष्टि की धारणा के लिए विशेष रूप से उपयोगी मान विशुद्ध मन से इसकी धारणा कर फिर इसकी रक्षा करो। याद रखो व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में इस अंतरिन्द्रिय धारणा का विशेष महत्त्व है क्योंकि इससे मात्र आंतरिक ही नहीं अपितु बाह्य उन्नति भी होती है। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि धारणा बाह्य अन्तस का परिचायक, प्रतिबिम्ब या आईना होता है। धारणा की कोटि से व्यक्ति का आचरण, व्यवहार, संस्कृति और सभ्यता का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। कुछ लोग अपने कपटी आचरण को छिपाने के लिए अपनी धारणा के विपरीत भी दिखाने का आचरण करते हैं, परन्तु अन्ततः वे धारणा के अनुसार ही करते हैं। इस दशा में जो उनको पूरा नहीं समझ पाते, वे हानि उठाते हैं। इसके विपरीत पवित्र व्यक्ति की धारणा और आचरण में सहज समानता होती है। पवित्र धारणा व्यक्ति, समाज और परिवेश को भी पवित्र बना देती है। आप भी सतवस्तु की कमाल व विशाल ब्रह्म वृत्ति धारण कर अपने हृदय, घर-परिवार व समाज का वातावरण सतयुगी बना आनन्द को पाओ।

इस संदर्भ में अंततः याद रखो, प्राणी मात्र जो बाहर से दिखाई पड़ता है, उससे अधिक उसका पसारा भीतर है। जैसा कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा भी गया हैः-

तूं पिण्डे तूं है ब्रह्माण्डे, पसर रिहा जग सारा,
अखियाँ देख रहियाँ।

अर्थात् जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड में है और जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है। अन्तस और बाह्य में मात्र लघु व दीर्घ

का अन्तर है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्तित्व का विकास आकस्मिक नहीं अपितु क्रमशः और भीतर से बाहर की ओर होता है। इस विश्लेषण के अनुसार व्यक्ति अपनी धारणा के अनुसार ही बाह्य क्रिया-क्लापों की परम्परा बनाता है। हीन धारणा का व्यक्ति कभी महान नहीं बन पाता जबकि महान धारणा से व्यक्ति अभावग्रस्त स्थिति में संतोष व पूर्णता, विपत्ति में धैर्य व संकट में शील को धारण करता है और निर्भयता से सच्चाई-धर्म के रास्ते पर अग्रसर हो निष्कामता से परोपकार कमाता है। इस तरह धारणा का धनी वह मानव, महामानव ही नहीं अपितु देवत्व को प्राप्त कर, अंततः परमपद को प्राप्त कर लेता है।

आप सब भी सजनों अपनी धारणा को निर्मल रख सको इस हेतु अभ्यास की परम आवश्यकता है, अतः आगामी सप्ताह हम इसी के विषय में बातचीत करेंगे।

अभ्यास

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों कहते हैं कि चित्त एक नदी है, जिसमें वृत्तियों का प्रवाह बहता है। इसकी दो धाराएँ हैं। एक संसार सागर की ओर तो दूसरी कल्याण सागर की ओर बहती है। जिसने पूर्व जन्म में सांसारिक विषयों के भोगार्थ कार्य किये हैं, उसकी वृत्तियों की धारा उन संस्कारों के कारण विषय मार्ग से बहती हुई संसार सागर में जा मिलती है और जिसने पूर्व जन्म में मुक्ति के निमित्त सुकर्म किए हैं, उसकी वृत्तियों की धारा उन संस्कारों के कारण विवेक मार्ग से बहती हुई कल्याण सागर में जा मिलती है। संसारी लोगों की प्रायः पहली धारा तो जन्म से ही खुली हुई होती है किंतु दूसरी धारा को शब्द गुरु

द्वारा प्रदत्त आत्मिक ज्ञान, सत्-शास्त्र के विचार यानि ईश्वर चिंतन द्वारा खोला जा सकता है। पहली धारा को बंद करने के लिए विषयों के स्रोत पर वैराग्य का बन्ध लगाया जाता है और अभ्यास के बेलचे यानि खुरपे से दूसरी धारा का मार्ग गहरा खोद कर वृत्तियों के समस्त प्रवाह को विवेक स्रोत में डाल दिया जाता है। तब जाकर प्रबल वेग से वह सारा प्रवाह कल्याण रूपी सागर में जाकर लीन हो जाता है। इस प्रकार अभ्यास तथा वैराग्य दोनों ही इकट्ठे मिलकर चित्त की वृत्तियों के निरोध का साधन माने जाते हैं।

इस संदर्भ में यह भी जानो कि जिस प्रकार पक्षी का आकाश में उड़ना न केवल एक पक्ष के अपितु दोनों ही पक्षों के अधीन होता है, उसी प्रकार समस्त वृत्तियों का निरोध न केवल अभ्यास से ही और न केवल वैराग्य से ही हो सकता है। उसके लिए अभ्यास और वैराग्य दोनों का ही समुच्चय होना आवश्यक है। ऐसा इसलिए भी क्योंकि तमोगुण की अधिकता से चित्त में लय रूप निद्रा, आलस्य, निरुत्साह आदि मूढ़ावस्था का दोष उत्पन्न होता है और रजोगुण की अधिकता से चित्त में चंचलता रूप विक्षेप यानि बाधा व दोष उत्पन्न होता है। अभ्यास से तमोगुण की निवृत्ति होती है और वैराग्य से रजोगुण की। आत्मनियन्त्रण/आत्मसंयम द्वारा मन-इन्द्रियों के नियमन/वशीकरण में अभ्यास व ध्यान, धारणा, समाधि में वैराग्य अधिक सहायक होता है। इस अर्थ से चित्त का स्वाभाविक बहिर्मुख प्रवाह वैराग्य द्वारा निवृत्त होता है तथा अभ्यास द्वारा आत्मोन्मुख प्रवाह स्थिर हो जाता है। इसलिए गीता में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को चंचल मन को वश में करने हेतु अभ्यास व वैराग्य दोनों ही साधनों को उचित बताया है।

इस संदर्भ में सजनों चित्त की स्थिति के विषय में यत्न करना अभ्यास कहलाता है। यहाँ स्थिति से तात्पर्य चित्त के वृत्ति रहित होकर शांत प्रवाह में बहने से है। उस स्थिति को प्राप्त करने के लिए पूर्ण सामर्थ्य और उत्साहपूर्वक यत्न करना आवश्यक है। इस प्रकार लगातार अभ्यास करने से यानि एक ही विषय का बार-बार चिंतन करने से मन अभिमान-शून्य हो जाता है व चित्त एकाग्र व स्थिर हो जाता है। हम कह सकते हैं कि बार-बार अनुष्ठान रूप प्रयत्न यानि नियमानुसार शास्त्र विहित कर्म करना अभ्यास का स्वरूप है और वृत्तियों का निरोध यानि नाश, अभ्यास का प्रयोजन। इस प्रयोजन सिद्धि से परम-प्रकाश स्वरूप दिव्य पुरुष को जानना सहज हो जाता है और ब्रह्म पद की प्राप्ति सम्भव हो पाती है। अभ्यास की इसी महत्ता के दृष्टिगत आओ आज इसे भली भांति समझते हैंः-

शाब्दिक अर्थ

अभ्यास शब्द का अर्थ है, नियमित रूप से किसी कार्य को बार-बार करने की क्रिया यानि उसकी आवृत्ति। इसे प्रयत्नपूर्वक साधना भी कहते हैं। किसी काम/विषय का लगातार अभ्यास करने से साधना करने वाला साधक यानि अभ्यासी उस कार्य विशेष में दक्ष/निपुण हो जाता है। यही नहीं उस कार्य के निरंतर अभ्यास से वह कार्य हमारी प्रकृति का अभिन्न अंग भी बन जाता है और हमारी आदत व स्वभाव का रूप ले लेता है। जैसे सदा सत्य बोलने का अभ्यास करने से सत्यभाषण हमारा स्वभाव बन जाता है।

सजनों आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण की दृष्टि से

सामान्य कार्यों यथा ज्ञानार्जन, शस्त्र संचालन, पुरातत्त्व, चिकित्सा, साहित्य, ललित कला, भूगर्भ आदि से लेकर आध्यात्मिक साधना तक के क्षेत्र में सफलता हेतु अभ्यास की निरन्तरता आवश्यक है। यद्यपि सामान्य जीवन में देखा/पढ़ा/सुना पाठ मनुष्य को बिना अभ्यास के भूल जाता है इसलिए उसे देखे/पढ़े-सुने का ज्ञान ग्रहण कर बार-बार उसका सूक्ष्म गहन अध्ययन, मनन, चिन्तन व क्रियान्वयन करना परम आवश्यक होता है।

इसके लिए शरीर के सुख-आराम की चिन्ता छोड़कर, इन्द्रियों को वशीभूत कर, इच्छाओं पर नियन्त्रण रखते हुए, एक तपस्वी/साधक की भान्ति एकाग्रचित्तता से ध्येय की साधना करनी जरूरी होती है। इस प्रकार मनुष्य विषय की अधिकारिक गहराई में उतरता जाता है। विषय से सम्बन्धित अनेकानेक सूक्ष्म पहलू स्पष्ट होने लगते हैं और मनुष्य उस विषय, क्रिया या कला विशेष की नियमित आवृत्ति द्वारा उसको स्वयं सीखकर उसमें पारंगत हो जाता है। इस प्रकार चित्त की चंचलता को समाप्त कर, मन को एकाग्र कर, सम्बन्धित विषय या ईश्वर में केन्द्रित करने हेतु अभ्यास यानि निरन्तर प्रयत्न करने का महत्त्व है। जान लो कि अभ्यासरत रहने हेतु, सम्बन्धित विषय की निरंतर साधना करने वाला व्यक्ति ही कालजयी खोजों और आविष्कारों को करने में सफल होता है। इसके विपरीत गहरी पैठ यानि गहराई में घुसने या प्रवेश करने के अभाव में समुद्र से केवल कंकड़-पत्थर ही मिलते हैं, जबकि समुद्र की गहराई में पहुँचने वाला अमूल्य रत्न खोजकर ले आता है।

परिभाषा

किसी भी अर्जित ज्ञान, कला या क्रिया की निरन्तर आवृत्ति द्वारा उसमें गहरे पैठने यानि प्रवेश करने का प्रयास, उसके विभिन्न आयामों को व्यापकता व विस्तार के साथ आत्मसात् करने का प्रयास ही 'अभ्यास' कहलाता है। सामान्य प्रयास अभ्यास नहीं कहला सकता। प्रयास जब 'साधना' बन जाये, तभी वह अभ्यास की संज्ञा पाता है।

यहाँ साधना से अभिप्राय लक्ष्य प्राप्ति के लिए किए गए सतत् अभ्यास से है। इस अर्थ से अभ्यास, साधना का विषय है जिसके अंतर्गत कठिन परिश्रम, निरंतर प्रयास, त्याग और धैर्य द्वारा मनोयोगपूर्वक कार्य की पूर्ति अथवा सिद्धि का प्रयास होता है। इस अर्थ से साधक या पुरुषार्थी के लिए, लक्ष्य के अनुकूल स्वयं को अभ्यास और प्रयत्न से ढालना अनिवार्य होता है। संयमपूर्ण ऐसा पुरुषार्थ दिखाने पर वह उस किसी कार्य विशेष में पारंगत हो जाता है। इसके विपरीत आलस्य और प्रमाद के वशीभूत कायरतापूर्ण कार्यों से अभीष्ट सिद्धि संभव नहीं होती।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से आत्मस्वरूप का बोध करने हेतु सतत् अभ्यास, गहन चिंतन, केन्द्रित ध्यान, पूर्ण श्रद्धा-विश्वास व नैतिक आचरण द्वारा चित्त-वृत्तियों का निरोध करके उन पर अधिकार कर लेना व सांसारिकता के प्रति उदासीन होकर, निर्मम व एकनिष्ठ भाव से शुद्धता, निर्लिप्तता, एकता-एक अवस्था को धार मुक्ति प्राप्त कर लेना साधना का लक्ष्य है। इसी प्रयत्न द्वारा प्रकृति एवं आत्मा-परमात्मा का अंतर्ज्ञान होता है और व्यक्ति अपने-

पराए, तेरी-मेरी, बड़े-छोटे, दंभ-अहंकार, आधि-व्याधि आदि से रहित होकर वीतरागी, शांतचित्त, संतोषी, धीर/सहनशील, सत्यवादी, धर्मशील, तपस्वी, उत्साही, क्षमाशील, जितेन्द्रिय, भयमुक्त व स्थिर हो पाता है।

इसी संदर्भ में लक्ष्य की पूर्ति तक अभिलाषित वस्तु के लिए किये गये श्रमपूर्ण प्रयोग के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्द 'अनुशीलन' को भी अभ्यास का समानार्थक माना जाता है। अनुशीलन से तात्पर्य सतत् तथा गंभीर अभ्यास, चिंतन, मनन, आवृत्ति तथा बारंबार की जाने वाली सेवा से है। यह किसी विषय का सर्वांगीण चिंतन है, मनन है व अध्ययन का विषय है।

अनिवार्य तत्त्व

अभ्यास की क्रिया में मन का प्रवृत्त होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अभ्यास के लिए आत्मसंयम, सत्यानुसरण, निर्भीकता, आत्मानुशासन, दृढ़ संकल्प, जागरूकता, उद्देश्य में अटूट श्रद्धा एवं विश्वास, एकनिष्ठ भाव से उत्साहपूर्वक होने की भावना, अनेक अवरोधों के आने पर भी कार्य को रुकने या टूटने से बचाने की भावना, निरंतर प्रयास और अथक परिश्रम अनिवार्य है।

उत्तम अभ्यास

सजनों मनुष्य के समस्त कर्मों का लक्ष्य व्यष्टि और समष्टि दोनों का समान रूप से हित साधन करना है। इस लक्ष्य की पूर्ति में सहायक समस्त कर्मों का अभ्यास आदर के योग्य है।

जिन कार्यों व कर्मों से व्यक्ति का व्यक्तित्व सम उन्नत होता है और उसे निर्द्वन्द्व, सुखी, शान्त होकर लोक-कल्याण के मार्ग पर प्रशस्त करता है, उन्हीं का अभ्यास स्तुत्य है, अन्यथा त्याज्य है। गीता के अनुसार इसे सतोगुणी अभ्यास की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसा अभ्यास मानव को महामानव बनाकर उसे विश्व वन्दनीय बना देता है। ऐसे लोग पुण्यात्मा, धर्मध्वजाधारी कहे जाते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति विरले ही होते हैं, परन्तु ऐसा एक ही व्यक्ति अनेक का उद्धारकर्ता व युग निर्माता होता है।

दोषपूर्ण अभ्यास

जो आदतें मनुष्य के व्यक्तित्व के लिए भी हानिकारक हैं और समाज पर भी दूषित प्रभाव छोड़ने वाली हैं, उन्हें हम दोषपूर्ण अभ्यास की संज्ञा देते हैं। दीर्घसूत्रिता यानि प्रत्येक कार्य में आवश्यकता से अधिक देर या विलम्ब करने का स्वभाव, प्रमाद यानि भ्रम-भ्रांति, अकर्मण्यता यानि आलस्य, मद्यपान, कटुभाषण, दुर्वचन, गाली-गलौच, लड़ाई-झगड़ा जैसे कर्म व्यक्ति व समाज दोनों पर नकारात्मक प्रभाव छोड़ने वाले हैं। ऐसा अभ्यास दोषपूर्ण कहलाता है। इसी तरह कुछ आदतें निरर्थक होती हैं, जैसे अकारण अधिक बोलना, खाली बैठे सोचना, पिष्ट पेषण यानि कही हुई बात को फिर से कहना, इन आदतों को अधिक न बढ़ने देना ही उचित होता है अन्यथा ये हानिकारक रूप ले लेती हैं।

एकांगी अभ्यास

कुछ कर्म जैसे कि निजी जिज्ञासाओं को शान्त करने के लिए

ज्ञानार्जन का अभ्यास, आत्मोद्धार हेतु आध्यात्मिक साधना, इच्छाओं की पूर्ति के लिए किया गया धनोपार्जन, व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए किये हुए प्रयत्न केवल व्यक्तिगत होते हैं और समाज को उनसे कोई लाभ नहीं मिलता, उन्हें एकांगी अभ्यास कहते हैं। निःसंदेह सजनों समाज में ऐसे व्यक्ति अधिक हैं जो स्वयं लोकहित के प्रति उदासीन रहते हैं। ऐसे में यदि उनको लोकमंगलकारी व्यक्ति का संग-साथ प्राप्त हो जाता है और वे इनके नायक बन जाते हैं तो ये भी लोकहित के मार्ग को स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि अच्छे गुणों का अभ्यास यदि व्यक्ति का हित संपादन करता है तो समाज का भी हित कर सकता है।

सारतः सजनों जान लो कि उत्तम कर्मों का अभ्यास कठिन साधना द्वारा सम्भव है, जबकि दूषित आदतें अनायास जन्म ले लेती हैं क्योंकि मन, जल के समान अधोगामी है, इसे उर्ध्वमुखी बनाने का जब तक प्रयत्न चलता रहता है, तभी तक यह ऊपर उठता है अन्यथा क्षणिक असावधानी होते ही अपने आप अधोगामी हो जाता है। इस संदर्भ में सजनों उत्तम कार्यों का अभ्यास भले ही कठिन है, फिर भी वही मनुष्य का आदर्श है। इसीलिए तो कहा गया है- साधना ही जीवन है।

विकसित करने के साधन

किसी भी विषय का ज्ञान अर्जित कर उसमें अधिकाधिक पारंगत होने के लिए नियमित्तता, चित्त की स्थिरता, एकाग्रता, प्रबल इच्छा शक्ति, कर्मण्यकर्म के प्रति अभिरुचि,

उत्साह, आत्म-विश्वास, आशावादिता, संकल्प-शक्ति, स्फूर्ति, तन-मन की शुद्धता और स्वस्थता आदि गुणों का होना आवश्यक है। कोई भी लक्ष्य कितना भी दुर्लभ हो - मैं पाकर ही रहूँगा, इस भावना को लेकर अभ्यासरत होना निःसन्देह फलदायक है।

अभ्यास का महत्त्व

नियमित अभ्यास व्यक्ति को तन-मन से सक्रिय रखते हुए उसके व्यक्तित्व को प्रमाद, आलस्य, अति-निद्रा, दीर्घ-सूत्रता, अकर्मण्यता, व्यर्थता, दिशाहीनता, निराशा, अवसाद, क्षोभ आदि दुर्बलताओं से बचाता है। उसकी दिनचर्या नियमित आत्मानुशासित जीवन शैली का पर्याय बन जाती है। वह शारीरिक, मानसिक रूप से स्वस्थ, समस्त परिस्थितियों में सहज, प्रफुल्ल, उत्साही व स्फूर्तिवान बना रहता है। उसके जीवन में सोद्देश्यता रहती है। जीवन के अन्तिम क्षण तक एक-एक पल का पूर्ण सार्थक उपयोग करने का चाव रहता है, वृद्धावस्था भी युवावस्था जैसी प्रिय लगती है। वह अपने को प्रत्येक क्षेत्र में सन्तुष्ट और सफल पाता है, साथ ही समाज के लिए अनुकरणीय उदाहरण बनकर उसका उन्नायक बन जाता है।

याद रखो आरम्भिक विफलता से निराश न होकर अभ्यास की निरन्तरता को बनाये रखने वाला सुनिश्चित रूप से सफलता प्राप्त करता है यानि अभ्यास सफलता का मूल है। अभ्यास के द्वारा आरम्भ में कठिन लगने वाले कार्य सरल प्रतीत होने लगते हैं। असम्भव सम्भव हो जाता है, असाध्य

साध्य बन जाता है। इस तरह अभ्यास अज्ञानी को पारंगत, अनाड़ी को प्रवीण, असमर्थ को समर्थ बना देता है। इस संदर्भ में सजनों जिस प्रकार औज़ारों की धार को पैनी, चमकदार तथा असरदार बनाने के लिए उसे घिसते रहना आवश्यक है अन्यथा वह जंगयुक्त, मोथरी या खुट्टल होकर बेकार हो जाती हैं, उसी तरह प्रतिभा को भी अभ्यास रूपी सान (वह पत्थर जिस पर रगड़ कर अस्त्रों की धार तेज की जाती है) पर घिसते रहने से उसे निष्क्रिय होने से बचाया जा सकता है। यही नहीं जिस तरह घर्षण की अविरल क्रिया से पत्तों से भी अग्नि प्रगट हो जाती है, उसी प्रकार अनवरत अभ्यास से सक्रिय चेतना में भी नया आविष्कार अप्रत्याशित रूप से प्रगट हो जाता है। इसलिए अभ्यास द्वारा पीसे हुए को पीसने जैसी प्रक्रिया भी बार-बार करनी पड़े तो घबराओ मत क्योंकि इसी से किसी कार्य या कला में अधिकाधिक निखार आ जाता है।

स्पष्ट है सजनों पठन-पाठन, लेखन, पाक, क्रय-विक्रय, सीवन, नृत्य-गायन आदि सब कार्य अभ्यास से ही सिद्ध होते हैं। अभ्यास के आगे कोई कार्य दुष्कर नहीं है। अभ्यास के बल से रस्सी पर चढ़े हुए नट तथा सरकस आदि में न केवल मनुष्य अपितु सिंह आदि पशु भी अपनी प्रकृति के विरुद्ध आश्चर्यजनक कार्य करते हुए देखे जाते हैं। अभ्यास के प्रभाव से दुःसाध्य कार्य भी सिद्ध हो सकते हैं। यहाँ तक कि अभ्यास में हठी और चंचल मन भी, एकाग्रचित्त होकर प्रभु के संग जुड़ जाता है। फिर इस जुड़ाव के अभ्यस्त हुए मन को प्रियतम के अतिरिक्त कोई नहीं भाता यानि कुछ समय का भी व्यवधान/बाधा उसको सहन नहीं होती। इस प्रकार

जब मुमुक्षु चित्त की स्थिरता के लिए अभ्यासनिष्ठ होता है तो वह अवश्य ही स्थिरता को प्राप्त कर चित्त को वशीभूत कर लेता है और आत्मानुशासन उसका सहज स्वभाव बन जाता है।

इस संदर्भ में यह भी जानो कि विषयभोगों के वासनाजन्य संस्कार मनुष्य के चित्त में जन्म-जन्मांतरों से जमे हुए हैं। उनको थोड़े ही समय में बीज सहित नष्ट करना इतना सहज नहीं है। वे निरोधक संस्कारों की तनिक सी भी असावधानी होने पर मानव को दबा सकते हैं। अतः अभ्यास को सुदृढ़ बनाने के लिए लगातार श्रद्धा और विश्वासपूर्वक प्रयत्न करते रहना आवश्यक है यानि शीघ्र ही निराश हो सुपथ छोड़ना उचित नहीं अपितु धैर्य के साथ, एकाग्रता के निमित्त, दृढ़ अवस्था के लिए अभ्यास करते रहना चाहिए। दूसरा अभ्यास में लगातार निरन्तरता आवश्यक है। ऐसा न हो कि एक मास अभ्यास किया, फिर दस दिन के लिए छोड़ दिया फिर तीन मास किया, पुनः एक मास बंद कर दिया। इस प्रकार व्यवधान यानि बाधा युक्त अभ्यास बहुत समय में भी दृढ़ नहीं हो पाता। अतः बिना व्यवधान के अभ्यास को निरंतर यानि उठत-बैठत, स्वप्न-जाग्रत करते रहना चाहिए। तीसरा अभ्यास को ठीक तरीके से युक्ति संगत श्रद्धा, विश्वास, भक्ति भाव, पूर्ण सामर्थ्य और उत्साहपूर्वक करना चाहिए। याद रखो इन आवश्यक कारकों के अभाव में दीर्घ काल तक किया हुआ अभ्यास भी स्थिर नहीं हो पाता।

अतः सजनों सत्-शास्त्र का संग कर जो भी शब्द ब्रह्म विचारों के विषय में पढ़ते-समझते हो या फिर सत्संग में जो कुछ

सुनते-समझते हो, जहाँ तक हो सके, उसको याद रख कर अपने जीवन में उतारने का भरसक यत्न किया करो। हम देखते हैं कि प्रायः सजन वचन पढ़-सुन कर अत्याधिक प्रेरित हो जाते हैं परन्तु जो कुछ सुना-समझा है, उसे जल्दी ही भूल भी जाते हैं। अतः समझो सत्-शास्त्र और सत्संग में बताए शब्द ब्रह्म विचारों को पढ़ने-सुनने में और उसमें निहित सत्य को अपने जीवन में उतारने में बहुत अंतर है। इस हेतु दैनिक कार्यव्यवहार करते हुए अन्य महत्त्वहीन कार्यों को जैसे-तैसे निपटाकर उनमें व्यर्थ उलझने के स्थान पर आध्यात्मिक प्रधानताओं को सर्वोपरि रखना आवश्यक होता है। इस संदर्भ में सजनों दिनचर्या के दौरान सच्चेपातशाह जी की निर्धारित नीति-नियमों यथा तीन वक्त का अखंड पाठ, काम करते हुए नाम-अक्षर चलाते रहना यानि हथ कार वल चित्त यार वल रखना, सात्विक आहार का सेवन करने से पूर्व उसे ईश्वर के निमित्त समर्पित करके भोग लगाना, बुधवार-वीरवार के बोर्डों का पढ़ना, मंगलवार का हवन, तीनो यज्ञों की आचार-संहिता की पालना आदि के महत्त्व को समझो और इनके निरंतर अभ्यास द्वारा शब्द ब्रह्म विचारों को आत्मसात् कर व्यवहार में ले आओ। नियमित अभ्यास द्वारा इन नीति नियमों को जीवन में उतारने से निरर्थक नकारात्मक बातों, विचारों एवं व्यक्तियों के कुसंग से बच जाओगे और अधिकाधिक समय ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल जुड़ा रहेगा और आत्मज्ञानी बन ब्रह्म पद को पा लोगे। परिणामतः सहजता से अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति कर जीवन का आनन्द मान सकोगे। अंततः याद रखो मानवीय चेतना की कठोर परतों को भेद कर, सत्य को

अन्दर ठहराने के लिए बार-बार दोहराई यानि अभ्यास करना आवश्यक है। ऐसा करने से सद्-विचार जीवन में घुलमिल जाएंगे और जब वे आपकी प्रकृति का अभिन्न अंग बन जाएंगे तो निश्चित रूप से आप श्रेष्ठ मानव बनने में सफ़ल हो जाओगे। इस महत्ता के दृष्टिगत सजनों पुनरावृत्ति यानि दोहराई द्वारा बताए सबक़ों को अभ्यास द्वारा जीवन में सम्मिलित करने का अदम्य पुरुषार्थ दिखाओ और जगत विजयी हो जाओ। क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ भी कह रहा हैः-

पुरुषार्थ सजनों यत्न करो,
ओन्हां इक सवाल समझाया है।
अनेक सवाल छुड़ाए के नगरनिवासियो,
महाबीर जी पर उपकार दिखाया है।।

सबकी जानकारी हेतु आगामी सप्ताह हम वैराग्य के महत्त्व को जानेंगे।

वैराग्य

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

जैसा कि सजनों हमें बताया जा चुका है कि सारी प्रकृति त्रिगुणात्मक है यथा सत्, रज और तम् से युक्त है। इस संदर्भ में जो जीवधारी आत्मतत्त्व की सार को जानता है, उस अपने वास्तविक अस्तित्व को जानने वाले के अन्दर सतोगुण प्रधान रहता है और वह धीरता से अपनी जीवनी शक्ति का चैतन्यता से प्रयोग करते हुए प्रकृति के गुण अनुसार अच्छे कामों की ओर प्रवृत्त रहता है। इस प्रकार वह सत्त्वगुणी उत्तम प्रकृति वाला मानव कहलाता है। जानो जिस काल में ऐसी उत्तम प्रकृति वाले मानव होते हैं वह समय काल ही सतयुग कहलाता है। सजनों फिर जैसे ही

मानवों के ख़्याल की पकड़ से आत्मतत्त्व का विचार छूटता है तो रजोगुण व तमोगुण की प्रधानता से वह मूढ़ अवस्था को प्राप्त हो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार का गुलाम बन, विषय-वासना में आसक्त हो, दुराचार व व्यभिचार का अमानवीय स्वभाव अपना बैठता है।

हम में से किसी से ऐसी भूल न हो इसलिए ही अभ्यास से तमोगुण की निवृत्ति और वैराग्य से रजोगुण की निवृत्ति करते हुए हमें सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की युक्ति अनुसार प्रयत्नपूर्वक सत्य को साधना होगा ताकि हम सदा संकल्प रहित व आत्मतुष्ट बने रह धर्मपरायण बने रहें। अन्यथा तो हम जानते ही हैं कि यह सकल संसार विशाल भव सागर है। सत्त्वगुण की अल्पज्ञता और रजोगुण व तमोगुण की प्रधानता के प्रभाववश इसमें पल-पल उठने वाले तृष्णा, वासना रूपी भँवर व काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी मगर जीव को डस कर, तड़पा-तड़पा कर भवसागर में डुबो डालते हैं और अन्त में मार देते हैं। इस तरह सजनों आरम्भ में यह मिथ्या संसार अज्ञानी व्यक्तियों को अपनी मायावी चकाचौंध में लुभाता है पर अन्त मंझधार में ले जाकर डुबाता है। तभी तो कलुकालवासियों के दोषपूर्ण स्वभावों को दृष्टिगत रखते हुए व इससे उबरने की युक्ति प्रदान करते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

चौपाई

बल बल बल बल बल बलिहार।
बेड़ा कीता महाबीर जी ने पार।।

कई जन्मां दे रुड़दे होयां नूं।
बलधारी लाया कंधी नाल।।
किश्ती डोले अध विचकार।
न उरवार ते न हाई पार।।

निकली चीक पहुँचे बलधार।
बचा लिया ने पहली वार।।

मच्छ कच्छ नाले संसार।
जीव विचारा होया लाचार।।

निकली चीक पहुँचे बलधार।
बचा लिया ने दूजी वार।।

इक पासे हड़ दूजे पासे गार।
जीव फसया अध विचकार।।

निकली चीक पहुँचे बलधार।
बचा लिया ने तीसरी वार।।

कर्मां दा तूं कोट उसारें।
कोट पवे तां चीकां मारें।।

निकली चीक पहुँचे बलधार।
बचा लिया ने चौथी वार।।

बलधारी जी रस्ता उलटावन।
दर्शन पाया बारम्बार।।

ध्वनिः रघुनाथ जी दे लाड, महाबीर जी दा प्यार।

सजनों निःसंदेह वैराग्य, विवेक, आत्मज्ञान, शब्द ब्रह्म विचारों के अनुशीलन व अनासक्ति से, अंतर्मन में उपजने वाले व प्रकृति को विकृत करने वाले इन भँवरों से व कठिन शत्रुओं पर विजय पाई जा सकती है। इस संदर्भ में यदि हृदय में जन्म-मरण के चक्रव्यूह से छूटने की प्रबल इच्छा हो, बन्धु-बान्धवों के प्रति अनुराग-शून्यता हो, कामजन्य विकारों का अभाव हो तथा संसर्ग दोषों सें विमुक्ति हो तो इन्द्रियों की विषयों के साथ बाह्यासक्ति और अहंकार आदि के साथ आन्तरिकासक्ति इन दोनों का परित्याग कर प्राणी सम्पूर्ण भोग्य पदार्थों से विरक्त होकर आत्मतत्त्व को जान सकता है और ब्रह्मनिष्ठ होने का आनन्द मान सकता है। इस आनन्द को मानने हेतु ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अंतर्गत तीनों तापों से संतप्त सुरत सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के आगे प्रार्थना करते हुए कहती हैः-

वैराग दी हनेरी चला ही दियो,
सूरज अग्गों कंध हटा ही दियो।
दासियां नूं चरणां विच बिठा ही दियो,
मेरे महाबीर प्यारे जी।।

इस संदर्भ में सजनों हम सब यह भी जानते हैं कि यह कार्य सुनने में जितना आसान प्रतीत होता है, उतना है नहीं क्योंकि यह सारी सृष्टि राग बद्ध है। राग से ही इसकी उत्पत्ति हुई है। इसी कारण जन्म-मरण के वृत्त में घूमने वाले सब प्राणी यानि सब संसारी तृष्णामय हैं, राग बद्ध हैं व आसक्त हैं। यह इनकी सहजात वासना है। अतः इससे छूट पाना इन्हे सहज प्रतीत नहीं होता। यद्यपि निष्काम कर्म या

आत्मज्ञान प्राप्ति द्वारा ही इससे कुछ हद तक छुटकारा मिल सकता है और व्यक्ति धीरे-धीरे बौद्धिक परिपक्वता आने पर वैरागी हो जाता है तथापि वैराग अवस्था में निरंतर बने रहने के लिए भी अभ्यास चाहिए होता है। थोड़ी सी असावधानी के कारण इन्द्रियाँ शिथिल हुई नहीं कि, वैराग पर राग हावी हो जाता है। अतः चौकसी व कदम-कदम पर निरंतर विचार को पकड़ना आवश्यक होता है। इस विचार को पकड़ने से ही इंसान के व्यक्तित्व में संतोष, धैर्य, सच्चाई, त्याग, सादगी, ईमानदारी आदि जैसे आवश्यक गुण विकसित होते हैं और न केवल उसका व्यक्तिगत जीवन अपितु पारिवारिक व सामाजिक जीवन भी उन्नत होता है। याद रखो सजनों, अपने अन्तर को निखारे बिना बाहर की सफ़ाई निरर्थक है। अतः विषयों से/उपभोक्ता वस्तुओं से यथा संभव परहेज करना ही श्रेयस्कर समझो। यदि ऐसा कर लिया तो लौकिक कामनाओं से तो विराग होगा ही, साथ ही अनायास ही काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार के प्रति भी वितृष्णा हो जाएगी और एक जितेन्द्रिय पुरुष की तरह, निज धर्म पर स्थिर बने रहने वाले, पूर्ण मानवीय व्यक्तित्व के रूप में निखर कर सामने आओगे। इस उपलब्धि के दृष्टिगत ही दासी महाबीर जी से कुछ अन्य सांसारिक भौतिक पदार्थ माँगने के स्थान पर प्रेम, वैराग की याचना करते हुए कहती हैः-

महाबीर जी तों दासी की कुझ मंगदी,
प्रेम वैराग सांवले चरणां दा प्यार।।

जीवन लक्ष्य प्राप्ति में वैराग्य की इसी महत्ता को समझते हुए आओ सजनों आज वैराग्य के विषय में जानते हैंः-

विराग/वैराग्य-शाब्दिक अर्थ

सजनों जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि विराग शब्द वि और राग दो शब्दों के योग से मिलकर बना है। इसका अर्थ है राग नहीं यानि राग हीनता, आसक्ति रहित या विरक्ति का भाव। इस अर्थ से वैराग्य मन-चित्त की राग रहित अवस्था यानि विषय-वासना-लालसा और सांसारिक सम्बन्धों से मन की विमुखता का नाम है। इसे सांसारिक कामों और सुख भोगों या किसी विशेष बात से होने वाली विरक्ति भी कहते हैं। विरक्ति से तात्पर्य सभी सांसारिक आसक्तियों/वासनाओं से मुक्ति प्राप्ति की स्थिति से है। यह स्थिति जीवन की चरम सार्थकता है। इस स्थिति में मन की सांसारिक सभी कामनाओं का सर्वथा अवसान हो जाता है और आगे उनके मन में कभी उठने की स्थिति नहीं बनती।

इस प्रकार इस दशा में मन में उठने वाले समस्त उद्वेग, द्वि-द्वेष व द्वंद्व समाप्त हो जाते हैं यानि मन संकल्प रहित हो, प्रसाद भाव को प्राप्त हो जाता है और उसे पूर्ण शान्ति मिलती है। सजनों यह स्थिति उस आप्तकाम (जिसकी सब कामनाएँ पूरी हो गई हों) जैसी है, जिसे अपने भीतर ही दिव्य आनन्द का उत्कर्ष प्राप्त होता है। यह स्थिति मानव जीवन की सार्थकता की सर्वोच्च सीढ़ी है, परित्याग की पराकाष्ठा है, समस्त कामनाओं का निषेध है तथा वैराग्य का उच्चत्तम सोपान है। विरक्त मन प्रशान्त एवं अविचल होता है तथा सभी स्थितियों में समभाव से रहता है यानि उसमें न सुख होता है न दुःख, न हर्ष होता है न विषाद। इसलिए ऐसे व्यक्ति का न कोई शत्रु होता है, न कोई मित्र, न अपना होता

है, न पराया। उस समदृष्टि को तब सब समरूप सजन नज़र आते हैं। यही सजनों संसार के समस्त आकर्षणों पर विजय की यानि वीतराग भाव की स्थिति है तथा समभाव-समदृष्टि का सबक़ आत्मसात् कर परस्पर निष्काम भाव से सजनता का व्यवहार करते हुए परोपकार करने में सक्षम होने की बात है।

विरक्ति का मूल कारक

सजनों जब प्राणी की संसार से आसक्ति छूटती है, तब विरक्ति की स्थिति निर्मित होती है। अतः 'चित्त में परिवर्तन' विरक्ति का मूल कारक तत्त्व है। इस तथ्य को समझने हेतु सजनों धैर्य से अपने दैनिक जीवन का अध्ययन करो। ध्यान से देखोगे तो आपको ज्ञात होगा कि कभी-कभी किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति हमारी अत्यधिक आसक्ति होती है। अचानक परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनती हैं, जिससे उस आसक्ति में परिवर्तन आता है और उस प्रिय वस्तु/व्यक्ति के प्रति हमारे चित्त में बदलाव आ जाता है यानि हमारी आसक्ति, विरक्ति में परिवर्तित हो जाती है। इस परिवर्त्तन के पश्चात् हमें लगने लगता है कि तृष्णा के समान कोई दुःख नहीं और त्याग के समान कोई सुख नहीं। इस तरह इस विरक्ति के कारण मन में इच्छा का अभाव होने लगता है। जब तक मन में पूर्णतः इच्छाओं का अभाव नहीं होता, तब तक पूर्ण विरक्ति की स्थिति नहीं बन पाती यानि वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा/कामना का निषेध ही उस वस्तु के प्रति विरक्ति को जन्म देता है। इस तथ्य को आप भरत के उदाहरण से भी समझ सकते हो जिसके मन के अन्दर माता

कैकयी के अनेक प्रयास करने के पश्चात् भी राज्य प्राप्त करने की इच्छा कभी नहीं पैदा हुई और अयोध्या के राजपद के प्रति उनके मन में सदा विरक्ति की भावना बनी रही। इस तरह विरक्ति की स्थिति में उदासीनता का भाव मन में स्वाभाविकता से उदित हो विकसित हो जाता है और विरक्त व्यक्ति की दृष्टि संसार के समस्त पदार्थ समूह के प्रति निरपेक्ष हो जाती है।

यही नहीं किसी वस्तु की अप्राप्ति की स्थिति भी विरक्ति का कारण है। कभी-कभी अभीष्ट वस्तु की अप्राप्ति, असन्तोष व अतृप्ति से भी विरक्ति की स्थिति निर्मित होती है। असंतोष अथवा असंतृप्ति के कारण विशिष्ट वस्तु को अधिकाधिक प्राप्त करने की चाह रहती है। चाही हुई वस्तु सदा प्राप्त ही हो, यह आवश्यक नहीं है। उसकी भी सीमा होती है। जब ऐसी स्थिति बनती है, तो असंतृप्त मन में घोर निराशा का भाव उत्पन्न होता है और वह निराशा विरक्ति को जन्म देती है।

विरक्ति के लिए अनिवार्य तत्त्व

राग से रहित होना इसका अनिवार्य तत्त्व है। विरक्ति में मन की दृढ़ता भी अत्यावश्यक है। चंचल मन यदि विरक्ति का स्वांग रचे तो उसे सच्ची विरक्ति नहीं कह सकते क्योंकि शीघ्र ही उस व्यक्ति का चंचल मन उसे आसक्ति की गर्त में धकेल देता है। अतः हम कह सकते हैं कि बाहरी विरक्ति प्रपंच है, ढोंग है, छल है। मन की दृढ़ता से उद्भूत विरक्ति ही यथार्थ विरक्ति है। विरक्ति में मन की चंचलता महान अवरोधक है यानि अचंचल मन ही विरक्ति का साधक तत्त्व है। अतः मन का अचंचल होना आवश्यक है। उसे यहाँ-वहाँ विचरने/भटकने की छूट नहीं होनी चाहिए अन्यथा यह संसार

में भटकता रहेगा और संसार के समस्त आकर्षणों के समक्ष झुकता रहेगा। परिणामस्वरूप संकल्प-विकल्प की तरंगें उठती रहेंगी और मन की दुर्बलता कभी भी विरक्ति की कल्पना को साकार नहीं होने देगी। इस संदर्भ में हम मानते हैं कि आज के प्रतिकूल वातावरण के बीच मन को सम्भालकर रखना यद्यपि दुष्कर है, किन्तु सच्चेपातशाह जी द्वारा बताई युक्तियों का सतत् अनुसरण करने से यह सम्भव हो जाता है इसलिए निरंतर युक्तिसंगत अभ्यासरत रहो। याद रखो सांसारिक कामनाओं पर विजय प्राप्त कर लेने पर विरक्ति का मार्ग स्वयं प्रशस्त हो जाता है।

विरक्ति का विधि एवं निषेधपरक प्रयोग

त्याग, विरक्ति, वितृष्णा, मोह त्याग, अनासक्ति, उदासीनता आदि इस विरक्ति के विधि-तत्त्व हैं। इन गुणों के साथ इस मूल्य का संवर्द्धन होता है तथा इनके प्रतिकूल आसक्ति, राग, लोभ, मोह, तृष्णा, वासना, माया-ममता, अनुरक्ति आदि के द्वारा इस भाव का निषेध होता है। अतः यह सब त्याज्य हैं। अनुचित लाभ या प्राप्य जैसे जुआ आदि भी इसके निषेधक हैं। अतः इनसे बचना चाहिए।

कसौटी

सजनों सन्यासियों की तरह घर-बार छोड़कर या सांसारिक आकर्षणों/बन्धनों से विमुक्त रह कर, जंगलों में या तीर्थ स्थानों पर जाकर रहना, वैराग की कसौटी नहीं है अपितु मन की दृढ़ता को चुनौती देने वाले विभिन्न आकर्षणों के मध्य अपने मन को स्थिर बनाये रखना ही विरक्ति का उच्चत्तम

सोपान है। इसी के साथ-साथ त्याग को भी वैराग्य की कसौटी मानना चाहिए। यदि दूसरों के सुख के निमित्त अपनी इच्छाओं या सुख-भोगों का त्याग करना आ जाए तो वैराग्य तो अपने आप ही आ जाता है। यहाँ समस्या यह है कि यह त्याग मोहवश सध नहीं पाता। अधिकाधिक पाने का लालच सताता है। रातों-रात करोड़पति बनने के चक्कर में अधिकतर बिना श्रम के ही सब कुछ पाना चाहते हैं। इसी अभिलाषा में इंसान हैवान होता जा रहा है। हम कह सकते हैं कि लाचारी में ही आज कोई ब्रह्मचारी है अन्यथा तो व्यभिचारी है। आदमी की यही झूठी आन, बान व शान आदमीयता में सबसे बड़ी बाधा है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि आधुनिक होड़ भरे उत्तेजक परिवेश में दिखावटीपन का ही बोलबाला है यानि मीडिया, मल्टीचैनल, विज्ञापन, बाजारवाद, उपभोक्ता संस्कृति, सट्टा व्यापार, कौन बनेगा करोड़पति के जन गण व्यापी नारों में कौन बनेगा आत्मज्ञानी, सदाचारी, वैरागी - यह प्रश्न तो अनुत्तरित ही रह जाते हैं। अतः आवश्यकता है आदिकालीन संस्कृति की सादगी, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म जैसे उच्च विचारों को आत्मसात् कर निष्कामता से उन्नति पथ पर अग्रसर होने की। इसी से आत्मत्याग की भावना विकसित हो सकती है और 'मैं' और 'मेरा' का भाव यानि 'स्व' के प्रति मोह भाव सर्वथा समाप्त हो सकता है। परिणामस्वरूप जीवन में निखार आ सकता है।

विरक्त व्यक्ति की पहचान

सजनों संसार के प्रति जिस व्यक्ति में राग या अनुराग है उसे

अनुरागी कहते हैं और इसके प्रति जिसमें विराग है उसे वैरागी कहते हैं। वैरागी को विषय भोगों के प्रति कोई आकर्षण नहीं होता इसलिए उसका मन सांसारिक विषयों और सम्बन्धों से हट जाता है। वह सांसारिक विषय-वासना, राग-रंग सम्बन्धों आदि के प्रति आसक्ति रहित होता है और उस उदासीन व्यक्ति में राग, मोह-ममता, लगाव आदि का अभाव होता है। यही नहीं वह परस्पर विरोधी पक्षों तथा झगड़े-बखेड़ों से अलग/बेपरवाह व तटस्थ यानि न्यूट्रल रहता है। हम कह सकते हैं कि उस निरपेक्ष/निस्पृह व्यक्ति के लिए संसार के सारे वैभव पदार्थ तुच्छ होते हैं इसलिए उन्हें देखकर भी उसके मन में किसी बात की अपेक्षा, चाह/कामना या लोभ/लालसा उत्पन्न नहीं होती। यही कारण है कि वह त्यागी किसी शुभ या अच्छे कार्य के निमित्त सांसारिक सुख-भोगों और वस्तुओं या पदार्थों पर से अपना स्वत्व हटा, खुशी-खुशी अपने स्वार्थ या हित/लाभ का त्याग करने वाला होता है। अन्य शब्दों में वैरागी के मन में सांसारिक वस्तुओं के प्रति न तो प्रीति का भाव होता है और न ही अप्रीति का। बस यही विरक्ति की स्थिति है। संसार में दुःखों के प्राप्त होने पर उसके मन में उद्वेग नहीं होता और सुखों की प्राप्ति के प्रति वह निस्पृह रहता है। अपनी कामनाओं पर विजय प्राप्त कर लेने के कारण उसके मन में विरक्ति का भाव उदित हो जाता है जो उसे स्थितप्रज्ञ यानि स्थिर बुद्धि बना देता है।

अंततः सजनों जानो कि किसी विषय को मात्र त्यागने का नाम वैराग्य नहीं है क्योंकि रोग आदि के कारण भी कई बार विषयों में अरुचि हो जाती है जिससे उन्हें त्यागना पड़ता है।

किसी विषय के अप्राप्त होने पर भी उसका भोग नहीं किया जा सकता। दिखावे के लिए तथा भय, लोभ और मोह के वशीभूत होकर अथवा दूसरों के आग्रह से भी किसी विषय को त्याग दिया जाता है परन्तु उसकी तृष्णा सूक्ष्म रूप से मन में बनी रहती है। अतः विवेक द्वारा विषयों को अनन्त दुःख रूप और बन्धन का कारण समझकर उनमें पूर्णतः अरुचि का हो जाना तथा उनके सर्वथा संग दोष से निवृत्त हो जाना ही वैराग्य है।

सजनों हम कह सकते हैं कि यह वैराग्य ही मानव जीवन की महान उपलब्धि है क्योंकि इसको पा लेने पर किसी सांसारिक पदार्थ या कुछ और प्राप्त करने की इच्छा ही नहीं रहती यानि मन संकल्प रहित हो जाता है। यद्यपि इस स्थिति तक पहुँचने के लिए मन की अपार दृढ़ता परम आवश्यक है तथापि अभ्यास द्वारा अपने चंचल मन को उपशम कर लेने पर, जीवन का कोई भी कार्य असाध्य अथवा असम्भव नहीं रहता। इस प्रकार मन के नियन्त्रित हो जाने पर उसे सही दिशा में मोड़ना सरल हो जाता है। इस उपलब्धि से मन में महान वृत्तियों का उदय होता है एवं हीन वृत्तियाँ मन से पलायन करती हैं। तब अपने और पराए का भाव समाप्त हो जाता है, भेद-बुद्धि नहीं रहती यानि द्वंद्वात्मक स्थिति समाप्त हो जाती है और समभाव स्थापित हो जाता है। सजनों यही जीवन का अभीष्ट है। यही सबसे महान उपलब्धि है। इस उपलब्धि के दृष्टिगत सजनों चंचल मन व इन्द्रियों को अभ्यास, ध्यान, ज्ञान, सत्संग और अनुशासन द्वारा धीरे-धीरे एकाग्र, शान्त, स्थिर, व दमित करो। याद रखो गृह, धन, स्त्री, पुत्र आदि का त्याग कर

अपने फ़र्ज़ अदा से मुख मोड़ने वाला सन्यासी तो पलायनवादी व अविचारी माना जाता है जबकि घर-परिवार में रहते हुए अपने समस्त कर्त्तव्यों का कुशलता से हँस कर संपादन करते हुए भी उनसे निर्लिप्त रहने वाला ही सच्चा वैरागी कहलाता है। अतः कभी भी पलायनवादी मत बनो अपितु परिवार और समाज से घिरे रहने के बावजूद कभी भी अपना पारमार्थिक लक्ष्य न भूलो। इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ की इन पंक्तियों को सदा याद रखोः-

फर्ज़ अदा जेहड़ा करे इन्सान,
बुद्धि लई उस अपनी पहचान।
इन्सानां विच्चों अक्लवान,
उस जीवन अपना बना ही लिया,
पा लिया आत्मिक ज्ञान।।

आत्मिक ज्ञान उसने पा लिया,
ओहदी जोत जगे निर्वाण।
ओहदा रूप रंग न रेखा राहवे,
ओ पहुँच गया परमधाम।
परमधाम ओ पहुँच गया,
बेअन्त है ओहदा नाम।।

इस तथ्य के दृष्टिगत सजनों मानो कि जीवन की सार्थकता संसार की विरक्ति में है, उसमें लिप्त रहने में नहीं। आसक्ति क्षण भर के लिए भले ही सुख प्रदान करे, किन्तु परिणाम रूप में यह कष्टप्रदायक व समस्त दुःखों की हेतु है। इससे

मुक्ति पाने के लिए मन को मारो या मनोरथ की चाल नियन्त्रित कर सांसारिक सुखों के प्रति अपने मन में विरक्ति उत्पन्न करो। याद रखो यह जगत रूपी कीचड़ से कमल के फूल के समान ऊपर उठ कर श्रेयस्कर जीवन जीने की बात है। यकीन मानो यदि एक बार आपका मन ऐसा जीवन जीने के प्रति दृढ़ निश्चयी हो गया तो मार्ग के सभी कंटक अपने आप दूर हो जाएंगे और यह विरक्ति आपको मानव जीवन की सार्थकता यानि चरम परिणति तक पहुँचा देगी। इस संदर्भ में गीता में भी कहा गया है 'विशुद्ध बुद्धियुक्त तथा हल्का, सात्विक और नियमित भोजन करने वाला, सकल विषयों का त्याग करके जनता की निष्काम भाव से सेवा करने वाला तथा सात्विक धारणाशक्ति के द्वारा चित्त और इन्द्रियों को संयमित करके मन, वाणी और अंगों को वश में करने वाला और राग-द्वेष को नष्ट कर वैराग्य का आश्रय लेने वाला ध्यानयोगी ही सच्चिदानंद में लीन होने का सुपात्र होता है।

सजनों आप सब भी अभ्यास द्वारा वैराग्य अवस्था को धार, सच्चिदानंद में लीन हो अमर पद प्राप्त कर सको इस हेतु हमारी शुभकामनाएँ आप के साथ हैं। सबकी जानकारी हेतु अमरता के विषय में बातचीत हम आगामी सप्ताह करेंगे।

दिनाँक 11 मार्च 2018 का सबक

अमरता-1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों जैसा कि हम सब जानते ही हैं कि मोक्ष मानव जीवन का चरम पुरुषार्थ है। मोक्ष से अभिप्राय बार-बार जन्म लेने और मरने के बंधन से छुटकारा पाने यानि आवागमन से मुक्ति प्राप्त करने से है। अध्यात्म विद्या मोक्ष विद्या है इसलिए सजनों आत्मज्ञान के अभाव में मोक्ष प्राप्ति नहीं होती। इसी विद्या के द्वारा ही जीव, यथार्थ रूप से अपने स्वरूप को जान कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

इस संदर्भ में सजनों जानो कि वस्तुतः जीव (आत्मा) स्वभाव से ही शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वरूप वाला है यानि मुक्ति की न

उत्पत्ति होती है, न प्राप्ति। जब सजन की सुरत अर्थात् ख़्याल का अंतर्विद्यमान शाश्वत शब्द गुरु से सम्पर्क स्थापित हो जाता है और उस द्वारा आत्मज्ञान का उपदेश उसे सतत रूप से प्राप्त होता रहता है, तो उसके हृदय में विवेक ज्ञान का उदय होना आरम्भ हो जाता है। परिणामस्वरूप जगत का मिथ्या ज्ञान उसकी बुद्धि को भ्रमित कर अपने विषयों में बंधनमान नहीं कर पाता और उस स्थिर बुद्धि इंसान को यह बोध होना आरम्भ हो जाता है कि शरीर से इन्द्रियाँ श्रेष्ठ हैं, इंद्रियों से मन, मन से बुद्धि व जो बुद्धि से भी श्रेष्ठ है, वह मेरी आत्मा है। यह आत्मा अजर-अमर है जबकि शरीर नाशवान है। संपूर्ण शारीरिक क्रियाओं का अधिष्ठाता यही आत्मा ही है, क्योंकि जब तक शरीर में प्राण रहते हैं तभी तक वह क्रियाशील रहता है। इस तरह इस सत्य का यथातथ्य बोध हो जाने पर कि आत्मा कभी किसी काल में भी नहीं जन्मता और न ही मरता या नष्ट होता है, वह ब्रह्म जान जाता है कि आत्मा अजन्मा, सनातन और पुरातन है। वही ब्रह्म है, अमर है व सर्व है और इंसान आत्मादिष्ट होकर ही यानि स्वतः आत्मज्ञान प्राप्त कर, इसमें लीन होने के वास्तविक सुख का अनुभव कर सकता है। इस तरह आत्मतुष्ट होकर आत्मभाव से इस जगत में सहजता व निर्लिप्तता से विचर सकता है और अमर नाम कहा सकता है। कहने का आशय सजनों यह है कि ऐसा इंसान सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित इस सत्य को जान जाता हैः-

संसार है ओ आत्मा, परमात्मा आधार है।
निराकार आकार न कोई, है ओ अपरम्पार है।।

इस प्रकार सजनों समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार इस सर्व एक आत्मा के परम तत्त्व यानि परमेश्वर को जानने वाला ही, मृत्यु से निर्भय हो, अपने जीवन का परम प्रयोजन सिद्ध कर सकता है। इस प्रयोजन सिद्धि के उपरांत फिर कोई प्रिय-अप्रिय, अपना या पराया नहीं रहता। सब अपने सम ही प्रिय जान पड़ते हैं। सजनों इस प्रकार सर्वव्याप्त अपने ब्रह्ममय स्वरूप से एकाकार होने पर ही मुक्ति की प्रतीति होती है।

इस परिप्रेक्ष्य में जिस प्रकार गले में पड़ी सुवर्ण-जंजीर को भ्रमवश बाहर ढूँढ-ढूँढ कर परेशान हुए व्यक्ति को, जब कोई बुद्धिमान गले में होने का संकेत करता है तो उसे ध्यान आता है और सुवर्ण-जंजीर पाकर बड़ा प्रसन्न होता है, उसी प्रकार सजनों आत्म यथार्थ की खोज में घर-बार छोड़कर, दर-दर, जंगलों में, देवालयों में, चारों धामों में भटक रहे व्यक्ति को जब आत्मज्ञान प्राप्ति द्वारा, उस अनमोल वस्तु के अपने मन-मंदिर में ही व्याप्त होने का पता चलता है तो उसकी खुशी का भी ठिकाना नहीं रहता। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार वह प्रकाशित व स्थिर बुद्धि जान जाता है कि 'इन दस इन्द्रियों के दरमियान में जिसकी रोशनी है व जो हर जगह मौजूद है वह सच्चिदानन्द भगवान आप ही है।' इस तरह अपने शरीर की नश्वरता व आत्मिक शाश्वत अवस्था का बोध कर वह जान जाता है कि 'मैं वह वस्तु हूँ जिसे हथियार काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, पवन उड़ा नहीं सकती, पानी बहा या गला नहीं सकता यानि मैं अजर-अमर हूँ। यह आत्मा तो इस तरह शरीर रूपी चोले को बदलती रहती है, जैसे पुराना

वस्त्र उतार कर नया पहन लिया जाता है। शरीर ही केवल नाशवान है, लेकिन वह असलियत सदा अजर अमर है। शरीर एक घड़े की तरह है, लेकिन वह असलियत सूरज की तरह है। यह शरीर रूपी घड़ा तो टूट जाता है, परन्तु वह सूरज सदा अटल है। मैं भी सदा अटल रहने वाला सूरज हूँ।'

इस प्रकार सजनों पूर्ण आत्मविश्वास व आत्मबल के साथ, सही दिशा में सही तरीके से प्रयत्नरत होने पर वह शीघ्र ही 'मुक्ति' के आनन्द से सराबोर हो, सांसारिक हर्ष-विषाद से ऊपर उठ जाता है। यही 'जीवन्मुक्त' की स्थिति है। इस अवस्था में यानि नित्यता के भाव पर स्थिर हो जाने के पश्चात् चाहे दूसरों को देखने में वह सामान्य व्यक्तियों जैसा आचरण करता दिखता है, परन्तु वस्तुतः स्थिति उससे भिन्न होती है। वह सत्य का पारखी कर्त्ता-भोक्ता के भाव से ऊपर उठ जाता है। फिर उसे कर्म का पाप-पुण्य के रूप में कोई प्रतिफल नहीं प्राप्त होता। जो प्रारब्ध कर्म है, उन्हीं के अनुसार जीवन-क्रम चलता रहता है यानि दग्ध बीज की तरह उनसे नये कर्म का अंकुरण नहीं होता। सजनों जैसे कुलाल चक्र (कुम्हार के चक्र) की तरह जीवन क्रम, पहले की गतिशीलता के क्रम में गतिशील रहता है वैसे ही प्रारब्ध कर्मों के क्षीण हो जाने पर उसका हाड़-माँस का शरीर अपने पंचतत्वों में विलीन हो जाता है और फिर उसका पुनर्जन्म नहीं होता क्योंकि पुनर्जन्म में जिस कर्म बीज की अनिवार्यता होती है, वह ज्ञानाग्नि से दग्ध हो जाता है। इस तरह सजनों पूर्ण मुक्त होकर वह अमरत्व को प्राप्त कर लेता है और परब्रह्म के साथ एकाकार हो रोशन नाम कहाता है। सजनों

उपरोक्त तथ्य के दृष्टिगत जीवन लक्ष्य प्राप्ति हेतु आत्मा की अमरता को जानना और आत्मभाव अनुसार इस मिथ्या जगत में निर्लिप्तता से विचरना अनिवार्य है ताकि हम भी समभाव नज़रों में कर, समदर्शिता के नियम-नीति अनुसार, परस्पर सजन भाव का निपुणता से व्यवहार करते हुए, एकता, एक-अवस्था में आ अफुरता से जीवन का आनन्द उठा सकें। आओ आज इसी विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं:-

'अमर' का शाब्दिक अर्थ क्या है?

सजनों 'अमर' का शाब्दिक अर्थ है जो कभी न मरे, जिसका कभी क्षय या नाश न हो वह अमर कहलाता है। अन्य शब्दों में जो सदा जीवित रहने वाला, अविनाशी, चिरस्थायी, शाश्वत, स्थिर, नित्य, ब्रह्म है वही अमर है। तभी तो ऐसे परमेश्वर के संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

अजर अमर अडोल निश्चल, परषोतम अपरापरम्

अमरपद क्या है?

देवपद, मुक्ति या मोक्ष को अमरपद कहते हैं।

इसकी प्राप्ति कैसे होती है?

इस संदर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

दुनियां वालियो आद् अक्षर जैं पहिचान लिया,
अमर उसने अपना नाम किया।

सर्व आत्मा विच परमात्मा नूं उसने ही सजनों जान लिया।।

अविनाशी अमर का ही पर्याय है, इससे क्या तात्पर्य है?

सजनों जिसका कभी विनाश न हो वह अक्षय, अक्षर यानि अच्युत, नित्य, शाश्वत स्थिति, अविनाशी अवस्था कहलाती है। इस संदर्भ में सजनों जानो परमात्मा/ब्रह्म ही अविनाशी है।

अमरता के लिए अनिवार्य तत्त्व क्या हैं?

1. अमरता के लिये पहला अनिवार्य तत्त्व है, एक ऐसी परम सत्ता में विश्वास जो प्रत्येक स्थिति में मान्य हो।

2. अमरता के लिये दूसरा अनिवार्य तत्त्व है - ऐसे आत्म तत्त्व का स्वीकार जिसे आत्मबोध हो।

3. तीसरा अनिवार्य तत्त्व है - परम सत्ता और आत्मा के बीच सनातन रिश्ते का बोध।

4. चौथा अनिवार्य तत्त्व है - उन साधनों का बोध, जिनके द्वारा अमरता की उपलब्धि की जाती है।

5. पाँचवां अनिवार्य तत्त्व है - निष्काम मनः स्थिति को स्वीकारना, जिसके बाद कुछ पाना शेष नहीं रह जाता और किसी प्रकार की कमी का अनुभव नहीं होता।

अमरता के भेद स्तर कौन कौन से हैं?

अमरता के दो भेद माने जाते हैं - लौकिक और पारलौकिक।

लौकिक अमरताः-यह अमरता अपने व्यावहारिक रूप में मत्यर्सापेक्ष है यानि इस अमरता के अंतर्गत चाहे मृत्यु व्यक्ति का अस्तित्व देशकाल के भीतर से मिटा देती है, लेकिन व्यक्ति की पहचान जीते जी अपने देशकाल में और मरने के बाद यशोगान के रूप में कर्म-गुण द्वारा अनन्तकाल तक बनी रहती है। आशय यह है कि देश-काल बद्ध होने के कारण मनुष्य का जीवन चाहे मृत्यु के बाद समाप्त हो जाता है और उसके शरीर की सत्ता मिट जाती है, लेकिन वह कई काम ऐसे कर जाता है, जिसके कारण लोग उसे मरने के बाद भी याद करते हैं। उदाहरणस्वरूप जितने भी युग पुरुष या महान आत्माएँ हैं, चाहे उनका शरीर तो काल कवलित हो गया है, लेकिन अपने विशिष्ट कर्म, बल, ज्ञान, भक्ति, गुण, उदात्त चरित्र, विचार और आचरण आदि के बल पर वे आज भी देशकाल की सीमा पार कर अमर हैं। इस प्रकार कालजयी यशोपलब्धि का नाम ही लौकिक अमरता है।

पारलौकिक अमरताः- अमरता का दूसरा भेद स्तर परमार्थिक है। देश-काल, जन्म-मृत्यु से परे होने के कारण इसे अमरता की शाश्वत अवधारणा माना जाता है। ब्रह्म, आत्मा आदि का सम्बन्ध अमरता की शाश्वत अवधारणा से ही है। इस संदर्भ में सजनों चूंकि ब्रह्म अपने निर्गुण रूप में जन्म-मृत्यु, प्रकृति इत्यादि विकारों, पंच-भौतिक विकारों, त्रिगुणों से परे और अतीत है इसीलिए वह अविनाशी है, अक्षर है। अमरता उसकी मूल प्रकृति है। अपने इसी मूल स्वभाव के कारण ब्रह्म उन सभी चीज़ों से अलग यानि निर्लेप हो जाता है जिनकी प्रकृति मर्त्य है। इसलिए उपनिषद्कारों ने उसे 'नेति-नेति' कहकर इसी तथ्य की ओर संकेत किया

है। अमरता का सम्बन्ध एक ओर अमर प्रकृति वाले ब्रह्म से है तो दूसरी ओर आत्मा के रूप मे मर्त्य शरीर से भी है। ब्रह्म और आत्मा दोनों अजर अमर हैं। आत्मा अमर इसलिए है क्योंकि उसकी सत्ता सार्वकालिक है यानि उसका सम्बन्ध भूत, वर्तमान, भविष्य आदि काल विशेष से न होकर एक ही साथ सबसे है। काल के प्रभाव से परे होने के कारण वह कालजयी और कालातीत है। दूसरी बात वह प्रकृति के त्रिगुणों, पंचमहाभूतों, पंचतन्मात्राओं, शरीर सम्बन्धी विकारों से अतीत है, इसीलिए वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत, अविनाशी, अव्यय, अचल, स्थिर तथा सनातन है। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया हैः-

अमर है मेरी आत्मा
न जन्म में है, न मरन में है
न रोग में है, न सोग में है
न खुशी में है, न ग़मी में है
न मान में है, न अपमान में है
न अमीरी में है, न गरीबी में है
वह अमीरों का भी अमीर है।

इस तरह सजनों शरीर और शरीरी (आत्मा) की दृष्टि से भी अमरता पर विचार होता है। याद रखो अलौकिक अमरता आध्यात्मिक साधना की चरम स्थिति से प्राप्त होती है। यह साधनात्मक भी होती है और ज्ञानात्मक भी। इस संदर्भ में गीता में कहा गया है कि ज्ञान, योग, भक्ति और सत्कर्म करने वाले मनुष्य को ही यह अमरता प्राप्त होती है। सच्चा त्यागी भी इसका हक़दार होता है। संसार में मात्र

मूल्यपरायण व्यक्ति ही अपने सत्कर्मों के द्वारा अमरता को प्राप्त कर सकते हैं, शेष नहीं।

अमर पद की प्राप्ति में मुख्य बाधाएँ क्या हैं?

अज्ञानता, अविवेक और प्रमाद अमर पद प्राप्ति के पथ की बड़ी-बड़ी बाधाएँ हैं। अज्ञानता, अविवेक के कारण जीव करणीय, अकरणीय के भेद को ही नहीं समझता। वह अकरणीय कर लेता है और करणीय की उपेक्षा कर देता है यानि विचार युक्त सवलड़ा रास्ता छोड़, अविचार युक्त कवलड़े पथ पर अग्रसर हो जाता है। यही नहीं, इसके अतिरिक्त वह जीवन में कर्त्तव्य पालन के अवसर भी ठीक से नहीं पहचान पाता इसलिए वह अपने प्रति, अपने परिवार व समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करने से चूक जाता है। परिणामतः सत्य-धर्म का निष्काम रास्ता छोड़, असत्ययुक्त अधर्म के मार्ग पर चलने वाले उस कामी को अमर-पद से वंचित रहना पड़ता है।

उपरोक्त आधार पर सजनों स्पष्ट होता है कि संसार में दो प्रकार की वस्तुएँ हैं - एक नाशवान, दूसरी अविनाशी। सभी प्राणियों के शरीर नाशवान हैं लेकिन उस में स्थित आत्मा अविनाशी है। शरीर - जाति, कुल, अवस्था व देश कालबद्ध है यानि अन्ततः विनाश को प्राप्त होने वाला है। लेकिन आत्मा शरीर के नाश होने पर भी नष्ट नहीं होती, वह पर-काया प्रवेश कर जाती है। इस संदर्भ में सजनों गीता में श्री कृष्ण जी ने साफ़ तौर पर कहा है किः-

'जो तीनों वेदों में विधान किये हुए सकाम कर्मों को करने

वाले, सोमरस को पीने वाले एवं पापों से मुक्त पुरुष यज्ञों द्वारा मेरी पूजा करके बदले में स्वर्ग प्राप्त करना चाहते हैं, वे अपने पुण्यों के फलस्वरूप इन्द्रलोक (स्वर्गलोक) में देवताओं के समान दिव्य सुख भोगते हैं, लेकिन स्वर्ग का सुख भोगने के बाद उनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं और वे फिर मृत्युलोक में लौट आते हैं।' इस प्रकार सकाम कर्म वाले पुरुष पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग और पुण्य क्षीण होने के पश्चात मृत्युलोक में जाते-आते रहते हैं और उनके आवागमन का चक्र निरन्तर स्वर्ग-मृत्युलोक के बीच में चलता रहता है। इसी परिप्रेक्ष्य में सजनों औपनिषदिक ऋषियों ने अपने समय में ऐसा तत्त्व खोज निकाला जो स्वर्ग की तुलना में स्थाई और आनन्द में असीम हो। इसी को उन्होंने कभी अमृत-तत्त्व कहा तो कभी मोक्ष और परमगति। यह स्वर्ग की तुलना में हुए उत्कृष्ट तत्त्व की खोज थी, जिसे प्राप्त कर लेने के बाद मनुष्य को दुबारा मृत्युलोक में नहीं आना पड़ता।

स्पष्ट है सजनों अमरता, अमरत्व/शाश्वतता/चिरजीवन की स्थिति है। यह ऐसे आप्रकाम (पूर्ण जीवन) की उपलब्धि है जिसमें कुछ पाना या खोना शेष नहीं रहता यानि सारे अभाव मिट जाते हैं और मृत्यु का भय नहीं रहता। यह परम असाध्य अवस्था है। इसके अलावा सनातनता के अर्थ में यानि परमार्थिक सत्ता की सदा स्थिति जैसे - ब्रह्म, आत्मा स्वभावतः अमर हैं, इस अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है।

सारतः सजनों जान लो कि अमरता आध्यात्मिक चिन्तन का केन्द्रिय प्रस्थान है क्योंकि आत्मा अजर अमर है। अमरता बोध की महादशा है। अमरता एक सत्तात्मक भाव है, यहाँ

सत्तात्मक से तात्पर्य सत् से है और यही भाव जब अधिकाधिक उत्तम दशा को प्राप्त करता है, तो उसे परमात्मा की संज्ञा से अभिहित कर दिया जाता है। इस प्रकार अमरता का क्षेत्र सार्वभौमिक, सार्वलौकिक और सार्वदर्शिक है क्योंकि अमरता जब व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख होती है, जिसमें पूरा चर-अचर सब कुछ आ जाता है तो वह अमरता की पराकाष्ठा को छू परमानन्द को प्राप्त कर लेती है। सबकी जानकारी हेतु अमरता के विषय में इससे आगे बातचीत हम आगामी सप्ताह करेंगे।

दिनाँक 18 मार्च 2018 का सबक़

अमरता-2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि अपनी आत्मा की अजरता-अमरता को पहचानने वाला व्यक्ति कर्म करने वाला सच्चा योगी होता है इसलिए सदा निष्काम कर्म करता है और इस तरह अपनी ज्ञान की अग्नि में अज्ञानता का नाश करने में सक्षम हो जाता है। उसके आचार-विचार उच्च होते हैं। उसके मन के भाव गूढ़ होते हैं और उस की उस सच्चिदानन्द प्रभु के चरणों में सच्ची प्रीत होती है। वह मन, वचन, कर्म द्वारा सब कामों को सच्चाई और निष्काम भावना से करता है। उसके लिये खुशी-गमी एक समान होती है। इसलिये वह सब हालातों में अपने हृदय, दिमाग और शरीर

को ठीक रखता है और अपने स्वरूप और आत्मा को इन चीज़ों से निर्लेप अर्थात अलग समझता है। उसकी किसी से वैर और प्रीति नहीं होती। उसका शरीर सब से अलग रहता है लेकिन उसके प्राण सब में मिले हुए होते हैं। उसके सामने सब चीज़ें पड़ी होती हैं परन्तु उन्हें उन से कोई प्रीति नहीं होती क्योंकि उसका असली मकसद बड़ा महान होता है। मान और अपमान उसके लिये एक समान होते हैं। उसके दिल में ऊँच-नीच का कोई भेद भाव नहीं होता। प्रसन्नता और शोक उसके लिये एक समान होता है। इस तरह उसे नित्य प्रति प्रसन्नता मिलती रहती है। आओ अब आगे जानते हैं:-

अमृत को अमर का पर्याय माना जाता है। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी अमृत शब्द का प्रयोग हुआ है, इससे क्या अभिप्राय है?

सामान्य तौर पर अमृत का अर्थ है वह पदार्थ (द्रव) जिसका पान करने वाले व्यक्ति को मृत्यु का भय न रहे अर्थात जीवित प्राणी अजर अमर हो जायें और मृत जी उठें। अध्यात्म चिन्तकों की दृष्टि में अध्यात्म ज्ञान ही अमृत है। इस अमृत का पान करने से समस्त मनो-ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं और मरणधर्मा मानव समस्त सांसारिक बन्धनों और भयों से मुक्त हो अमरता को प्राप्त कर लेता है। इस अर्थ से अमृत का अभिप्राय ज्ञान से है अर्थात् वह ज्ञान जो लोक की नश्वर उपलब्धियों के प्रति वैराग्य भाव उत्पन्न कर जीव को लौकिक संघर्ष से दूर ले जाकर मानसिक-आत्मिक शान्ति की प्रतीति कराता है, वह अमृत है। इसीलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

पी अमृत ह्रदय खिड़या, श्री राम चरण संग जुड़या।

साथ ही एक अन्य कीर्तन में यह भी कहा गया है:-

एहो फल खाओ मेरे साजना,
फल है बड़ा सुआदला।
एहो है जे अमृत संजीवनी,
एहो फल खांदा है कोई विरला प्यारड़ा।।

अमरता की कसौटी क्या है?

सजनों आत्मज्ञान ही वह कसौटी है जिसके द्वारा पता लगाया जा सकता है कि हम अमरता से दूर हैं या अमरता हमें उपलब्ध हो गई है। यदि कोई इच्छा, वासना बाकी है और हम स्वार्थी हैं तो हम अमरता से दूर हैं। इसके विपरीत यदि समभाव-समदृष्टि की युक्ति अपनाकर, नितोनित अपने आप को पकड़ते हुए, निष्कामता से सत्य-धर्म के पथ पर अग्रसर होना आरंभ कर दिया है तो आज नहीं तो कल यह अवस्था प्राप्त कर ही लेंगे। इस संदर्भ में सजनों धार्मिक ग्रन्थों में कहा गया है कि जिससे अपना अभ्युदय हो, लोक का अभ्युदय हो यानि कल्याण हो, वही अमरता की सिद्धि है। अतः अमरता यदि लोकहिताय है तो वह सार्थक है अन्यथा वह अमरता नहीं, प्रसिद्धि है। अमरता की कसौटी तो लोक-स्वभाव को सत्तोन्मुखी बनाना है, सत्कर्मों के लिए प्रेरित करना है, सुसुप्ति (अचेतन) भाव का विनाश करना है और समाज में एकात्म-भाव स्थापित करना आदि है।

अमरता के भाव का विकास कैसे करें?

इस संदर्भ में सजनों जानो कि मन-वचन-कर्म से जो एक भाव है यानि सत्यनिष्ठ व धर्मपरायण इंसान है, वही महात्मा है। इसके विपरीत जिसके मन-वचन-कर्म में भिन्न-भाव है, वह दुरात्मा है। यह महात्मा भाव विकसित कर लेना ही अमरता है। अपने आचरण की शुचिता और सर्वजन हिताय कार्यों के द्वारा अपनी आत्मा को समचित्तता के धरातल पर लाकर लौकिक व पारलौकिक दोनों स्तरों की अमरता प्राप्त की जा सकती है। इस संदर्भ में सजनों सजन श्री शहनशाह हनुमान जी हमारे सामने प्रत्यक्ष उदाहरण हैं जिन्होंने नीतियों पर चलकर न केवल आप अमर पद प्राप्त किया अपितु युगों युगों में अपने प्यारों की रक्षा कर उन्हें भी इस प्राप्ति के योग्य बनाया। उनकी इसी महानता का वर्णन सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में किया गया है कुछ इस प्रकार:-

आप अमर प्यारे अमर करन,
जन्म-मरण दी पीड़ा नूं हरण।
जेहड़ा चरण पकड़े ते सीस निवावे,
क्यों न याद करां उसनूं।।

अतः यदि आवागमन से मुक्ति चाहते हो तो उनके वचन प्रवान कर अपना आप पहचान लो और समचित्त हो जाओ। याद रखो उन सर्वमहान द्वारा बख़्शी समभाव-समदृष्टि की युक्ति का अनुशीलन करके ही समचित्त हो सकते हो और सहजता से अमर पद प्राप्त कर सकते हो। इस संदर्भ में इस ग्रन्थ में कहा गया है:-

महाबीर जी दे वचनां ते चल के ते,
अपना आप लवो पछान सजनों।
आप अमर इन्सान ओ अमर होवे,
जेहड़ा वचन करे प्रवान सजनों।।

अतः सजनों तेरी-मेरी, अपना-पराया मत करो क्योंकि यह अपना है, यह पराया है ऐसी गणना छोटी बुद्धि वाले लोग करते हैं। जिनका हृदय विशाल होता है उनके लिए तो पूरी वसुधा ही एक परिवार के समान होती है। ऐसी सोच रखने से ही व्यक्ति महान बनता है। उसमें समता का भाव जाग्रत होता है व समरसता का विकास होता है। इस तरह वह समदृष्ट अपने दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार कर , अमरता का अनुभव कर सकता है। यही तो एक निगाह एक दृष्टि हो संकल्प पर पूरी तरह से फ़तह पा आवागमन के चक्कर से छुटकारा पाने की बात होती है। याद रखो सजनों इन सबका क्रियात्मक प्रयोग ही अमरता की प्राप्ति का साधन बनता है।

स्पष्ट है सजनों आत्मोत्थान की दृष्टि से अमरता की भूमिका एक मानव के जीवन में अपरिहार्य यानि आदरणीय व अत्याज्य है। इस स्थिति में साधक की आत्मा ऊपर उठकर ब्रह्म से एकात्म स्थापित कर लेती है। अतः यह मृत्यु से अमृत की ओर बढ़ते हुए परमतत्त्व को जानने की प्रक्रिया है अर्थात मृत्युलोक से ब्रह्मलोक की ओर प्रयाण यानि प्रस्थान करने का नाम है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने वाला मनुष्य हृदय-स्थित, सभी ग्रन्थियों, हृदयाश्रित सभी कामनाओं - लोभ, मोह, काम, क्रोध, पाप, शोक का

उच्छेदन कर, शारीरिक दु:खों से मुक्ति पा जाता है और ए विध् जन्म-जन्मान्तरों के जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्त हो अमर पद प्राप्त कर लेता है। इस तरह यह अवस्था जीते जी साधक को इस लोक में अमरता का स्वाद चखा देती है।

इस संदर्भ में सजनों याद रखो अमरता की आकांक्षा करना एक बात है परन्तु अमरता के लिए समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुकूल निष्काम साधना करना बिल्कुल दूसरी बात है। अतः इस विषय में महज बातें करने के स्थान पर, समभाव-समदृष्टि की युक्ति अपनाकर, अमरता की साधना को महत्त्व दो। यदि ऐसा कर लिया तो आत्म-कल्याण की दृष्टि से निजी स्वार्थ, अपने-पराये, तेरी-मेरी के भेदभाव से ऊपर उठकर अपना परिष्कार तो कर ही लोगे साथ ही लोक-कल्याण की भावना यानि परोपकारी प्रवृत्ति से ओत प्रोत हो दूसरे लोगों को भी इस दिशा में प्रेरित कर सकोगे और महान आत्मा कहलाओगे। सजनों यही अमरता की चरम सिद्धि है।

इस चरम सिद्धि की प्राप्ति हेतु सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ अनमोल धरोहर के रूप में आपके पास है। अमर पद प्राप्त करने हेतु इसमें वर्णित युवावस्था की भक्ति यथा समभाव-समदृष्टि की सशक्त युक्ति व शब्द ब्रह्म विचारों को अमल में लाओ। इस तरह अमरत्व के भाव अनुसार इस जगत में विचरते हुए उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो जाओ और नौजवान युवावस्था को धारण कर मौत के भय से आजाद हो जाओ यानि मृतलोक पर फतह पा श्रेष्ठ मानव कहलाओ। सजनों यही तो हमारे जीवन का परम लक्ष्य है। इस लक्ष्य

प्राप्ति हेतु सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ किस प्रकार 'अमरत्व' प्राप्ति की महिमा और महत्त्व का वर्णन कर रहा है, ध्यान से सुनोः-

सोपान-द्वितीय

आप अमर प्यारे अमर करन,
जन्म मरण दी पीड़ा नूं हरण।

(की० 82)

ओ हीरा है अनमोल, चलो रघुवर प्यारे कोल।
अजर अमर अडोल निश्चल, परषोतम अपरापरम।।

(की० 89)

हनुमान जी अजर अमर वी ओही,
हनुमान जी अजर अमर वी ओही।
जन्म-मरण मिटावे सोई,
महाबीर जी नूं देखके आवे आनन्द,
देखो महाबीर पूरण।।

(की० 30)

सोपान-तृतीय

महाबीर जी दे वचनां ते चल के ते,
अपना आप लवो पछान सजनों।
आप अमर इन्सान ओ अमर होवे,
जेहड़ा वचन करे प्रवान सजनों ।।

(की० 33)

अजर अमर हो आप स्वामी, घट घट दे हो अन्तर्यामी।
यह बेअन्त नाम प्रगटाना पड़ेगा।।

(की० 44)

सोपान - चतुर्थ

आप हो अमर अमर हो गये अमर ही ओ नाम कहाये।
अमर हो गये ओ जगत ते, अमर ही ओ कैसा सुहाये।।

(की० 1)

आप अमर प्यारे अमर हो गये ओन्हां दे।
ओ पहुंच गये परमधाम, सजनों कैसी युक्ति बताई हिने।।

(की० 7)

अमर हो गये गृहस्थी, रोशन हो गये गृहस्थी।
आप हो कैसी ओ हस्ती,
हां हां आप हो कैसी ओ हस्ती ओ दिखाना पड़ेगा।

(की० 13)

संहसर हिन तेरे नाम जगत विच कई विरले ही तैं तारे।
विरले सजन कई जीवन बना गये, कई अमर हो गये सारे।
करन ओ चरण वन्दना, करन ओ चरण वन्दना।।

(की० 15)

सुन्दर चरणा नूं लोचे सब कोई,

परिश्रम करदा है कोई कोई।
ओजी अमर नाम पुकारे जग सारा।
आ हा ओ हो ओ जी अमर नाम पुकारे जग सारा।।

(की० 50)

दुनियां वालियो आद अक्षर जैं पहिचान लिया,
अमर उसने अपना नाम किया।
सर्व आत्मा विच परमात्मा नूं उसने ही सजनों जान लिया।।

(की० 62)

किस दा धरो ध्यान साजन जी किस दा धरो ध्यान।
अमर आपदा नाम साजन जी, किस दा धरो ध्यान।
ब्रह्मा महेश श्री विष्णु जी तों
आप हो महान साजन जी किस दा धरो ध्यान।।

(की० 65)

जगत हितकारी हुये न्यायकारी हुये,
परउपकार ओ दुनियां ते दिखा करके।
जैनूं दुनियां मन्ने नगरी ओ पूजे,
अपना नाम अमर ओ कहलवा करके।।

(की० 72)

सोपान - पंचम

साजन अमर हो गया, साजन रोशन हो गया।
रोशन हो गया, ओ रोशन हो गया,
साजन रोशन हो गया ।

साजन अमर हो गया, साजन रोशन हो गया।।

(की० 24)

धर्म दे मार्ग चढ़ पिया, चढ़े विभीषण राज जी।
उसी मार्ग में मिले श्री रामचन्द्र महाराज जी।
अमर ओ हो गया लंका दा पाया उस राज जी।।

(की० 77)

कलुकाल हटे सतवस्तु आसी,
इक नाम चतुर्भुजधारी होसी।
हनुमान जी हैन ओ अमर,
फिर रोग न कोई रहसी।।

(की० 84)

अमर नाम अमर ओ युक्ति,
श्री राम दीदार ओ पांदा नी सब कोई कैहंदा।
नी रैहंदा साजन नाल हो,
नी रैंहदा साजन नाल।।

(की० 99)

हीरा सजनों परखना जे,
मिल करो हनुमान जी दा संग।
शहनशाह अमर है दुनियां ते,
इक नाम ओन्हां दा बजरंग।।

(की० 113)

हनुमान जी दे चरण ओ दयालु जी सीस ताज हमारे।
है अमर नाम उस शहनशाह दा, कैसे लगदे ने प्यारे।

(की० 115)

सोपान - षष्ठम

जदों असां बन पधारे, मिल पये हनुमान जी प्यारे।
जदों असां बन पधारे।
विपत्ति आन पड़ी जद सजनों,
तां आप बने साडे ओही सहारे।
है अमर ओन्हां दा नाम करो सजनों चरण वन्दना।।

(की० 8)

सानूं चिन्ता और फिकर क्या है,
जैंदा दाता है हनुमान बलवान।
जैंदा नगरी ते अमर है नाम।।

(की० 11)

नीतियां मुताबिक चले हनुमान जी,
अमर जगत ते कर लिया नाम।
नीति विरुद्ध सीता लै गया रावण,
हनुमान जी सोने दी लंका करन वैरान।।

(की० 14)

देखो हनुमान बलवान जी,
हनुमान बलवान जैंदा अमर है दुनियां ते नाम जी।

(की० 18)

है ओ नाम दिवन्दडा, है ओ युक्ति बक्षन्दडा।
श्री राम जी दे दर्शन करवन्दड़ा,
अमर है ओ जैंदा नाम।

(की० 22)

जुड़या राहवे जुड़या राहवे,
मेरा ध्यान दाता तुहाडे वल जुड़या राहवे।
अमर है जैंदा नाम, दाता मेरा जुड़या राहवे।।

(की० 25)

हनुमान बलवान ओ हैन ओ शक्तिवान।
ओन्हां दी उच्ची है शान, अमर है ओन्हां दा नाम।।

(की० 34)

सोपान - सप्तम(प्रथम)

ओ मेरे दाता, ओ मेरे दाता,
दाता हिन हनुमान बलवान, अमर है जैंदा नाम।।
उच्ची है जे ओन्हां दी पदवी,
उच्ची है जे ओ शान, अमर है जैंदा नाम।।

(की० 1)

गरुड़ खड़ा उतावला हां हां हां,
साजन जी चढ़ना है जे ओ साथ।
हनुमान जी वी संग चढ़नगे, अमर है जैंदा नाम,
संग रैंहदे दिन ते रात देखो कैसी है करामात।।

(की० 7)

त्रेता में महाबीर जी फ़स्ट निकले, जिनका नाम आद
अन्त से अमर है और अमर रहेगा।

(की० 11)

हनुमान जी हैन शहनशाहवां दे शाह,
अमर है जैंदा नाम।

(की० 17)

हनुमान बलवान अमर है जैंदा नाम,
ओ कैसे शक्तिवान।
दुनियाँवासी कई इन्सान,
तैतीस करोड़ देवता वी होये हैरान।।

(की० 24)

सुनो मेरे साजना, सुनो मेरे साजना,
सुन लौ अपनी अमर कहानी।
अमर कहानी अमर ही जानी, अमर आप नूं मानी।
सुनो मेरे साजना, सुनो मेरे साजना,
सुन लौ अपनी अमर कहानी।।
ठीक साजन जी जो कह रहे, हनुमान बलवान
शक्तिवान दी सजनों हिवे मेहरबानी।
सुनो मेरे साजना, सुनो मेरे साजना,
सुन लौ अपनी अमर कहानी।।

(की० 33)

सोपान - सप्तम (द्वितीय)

अनादि जोत जगे ओ जगमग हां-हां-हां-हां,
प्रमादि सर्व रौशनी फैलाये ओ दाता।
दाता अमर, अमर है जे नाम उस शहनशाह दा,
ते ओ रौशन नाम कहाये ओ दाता।।

(की० 7)

शहनशाह हनुमान बलवान, ऊंची है ओन्हां दी शान।
है अमर ओन्हां दा नाम, हैन ओ शक्तिवान।
है अमर ओन्हां दा नाम, हैन ओ शक्तिवान।।

(की० 12)

तन ठरे मेरा मन ठरे मैं देखां
शहनशाह हनुमान दाते जी दा चेहरा।
पर उपकारी कुल दीपक कुल नगरी दे ओ दाता।।
अमर पिता है मेरा, अमर पिता है मेरा।
निर्वाण दे अन्दर रैहंदे मेरे साजन
क्या कहूं मैं कह नहीं सकदा।।

(की० 38)

सोपान - सप्तम (तृतीय)

शक्तिवान दी शक्ति कोई मुश्किल फड़दा,
जेहड़ा आप दे वचन करे प्रवान ओ दाता।
अमर आप ते अमर है जे नाम आपदा,
अमर हो आप जगत जहान दाता।।

(की० 33)

सोपान - सप्तम (चतुर्थ)

शक्तिवान दाता है बड़ा महान,
अमर अमर है आपदा नाम।
अमर है आपदा नाम प्रसन्न राहवो दिन ते रात बेटा।।

(की० 30)

अंततः सजनों हम समझते हैं कि हर सजन ने अमरता के विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ से उद्धृत ऊपरलिखित पंक्तियों को पढ़-समझ कर अपने मन में अमर पद प्राप्त करने का पक्का इरादा कर लिया होगा। अगर ऐसा ही है तो मिथ्यता का भाव त्याग सजन श्री शहनशाह हनुमान जी द्वारा प्रदत्त नाम-ध्यान की युक्ति अपनाकर अमरता के भाव में आ जाओ। इस तरह उस भाव अनुकूल जीवन शैली अपना कर अमरता प्राप्त करने में सुनिश्चित रूप से सफल हो जाओगे। याद रखो इस महान कार्य की सिद्धि हेतु समय समय पर अपने भावात्मक स्वरूप का आत्मनिरीक्षण करते हुए खुद पर ऐसा आत्मनियन्त्रण रखना होगा कि नित्यता का भाव आपके ख़्याल की पकड़ से न छूटे यानि वह आपकी सहज प्रकृति का अभिन्न अंग बन जाए और आपके लिए अफुरता व प्रसन्नचित्तता से इस जगत में विचरना सहज हो जाए। अंत में हम सबसे प्रार्थना करते हैं कि 'ईश्वर है अपना आप' इस विचार को आत्मसात् कर, सत्य प्रकाशी बन जाओ और अमर पद प्राप्त कर, परिपूर्ण हो जाओ। इस तरह सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की बताई युक्ति प्रवान कर उन्ही की तरह सबसे श्रेष्ठ, सबसे विद्वान, सबसे गुणवान,

सबसे बलवान, सबसे धनवान, सबसे बुद्धिमान व सारी दुनियां विचों ज्ञानवान बन त्रिलोकी में चानणा फैलाओ और परोपकारी नाम कहाओ।

सबकी जानकारी हेतु आगामी सप्ताह हमने जो भी पढ़ा है उसका आत्मनिरीक्षण करेंगे।

आत्मनिरीक्षण

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं, ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं, नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह,
इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहो:-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों ध्यान-कक्ष में हमें अब तक जो भी समझाया गया है उससे हमें ज्ञात हुआ कि परमात्मा, अमल यानि निर्मल, विमल यानि पवित्र, धवल यानि उजला/सुन्दर/मनोहर, करुणावतार और समदर्शी है। चूंकि मनुष्य भी उसकी अनुपम कृति है, अतः अपने आचार-विचार व व्यवहार द्वारा, कर्त्ता को ही प्रतिबिम्बित करना उसका परम कर्त्तव्य व सौभाग्य है। इस संदर्भ में विडम्बना यह है कि आधुनिकीकरण के नाम पर, भौतिकता की होड़ में व्यस्त और व्यवसाय बुद्धि के फेर में पड़े हुए स्वार्थपर अतिरेकी जीवन पद्धति (हर काम में अति करने) वाले कलियुग बुद्धि

जीव, सहज प्रकृति से च्युत होकर व अविचारी चलन अपना कर, अपने जीवन व्यापारों को जटिल व दुःखमय बना लेते हैं। यही कारण है कि उनका मूल सत्य स्वरूप, अज्ञान आवरण से आच्छादित हो जाता है यानि वह अपने अंतःकरण में स्थित परमेश्वर को नहीं देख पाते और अपने कृतिकार की महान कृति कहाने के सौभाग्य से वंचित हो जाते हैं।

स्पष्ट है सजनों यह विडम्बनीय स्थिति स्वयं को प्रकृति से दूर रखने यानि उसी की भांति निर्मल व उज्ज्वल न बने रह पाने के कारण ही उत्पन्न होती है अन्यथा मानव ईश्वरीय प्रभा से विलग नहीं। अन्य शब्दों मे मनुष्य जीवन के प्राकृतिक मानसरोवर के चारों ओर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, स्वार्थ इत्यादि की काँटेदार बाड़ ही उसे अपने अस्तित्व व सहजात क्षमताओं के प्रति गुमराह किए हुए है और व्यक्ति अपना शत्रु आप बना हुआ है। इसलिए अंतःकरण में स्थित परमसत्ता उसे अदृश्य प्रतीत हो रही है और वह बाह्य आडम्बरों व कर्मकांडों में उलझ उसे कहीं बाहर खोज रहा है।

इस अत्यन्त कठिन स्थिति के दृष्टिगत ही सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हम सांसारिक झंझटों व झमेलों में पड़े हुए विकारी जीवों को, समस्त द्वि-द्वैत व द्वेष मिटाकर, युवावस्था का ताकतवर भक्ति-भाव यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति अपनाने का आवाहन् दे रहा है ताकि हम पुनः संतोष, धैर्य, सत्य, धर्म से युक्त निज आत्मप्रकृति में स्थित हो जाएं और उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल होकर विचार, सत्-ज़बान, एक

दृष्टि, एकता और एक अवस्था में आने का परम पुरुषार्थ दिखा पाएं। निःसंदेह आत्मप्रकृति में यह स्थिति व्यक्ति की तीव्र अभिलाषा व वैराग्य के साथ-साथ उसके सहज स्वाभाविक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है जिसके द्वारा न केवल मन को उपशम व चित्त वृत्तियों को शांत बना, सीधे-साधे ढंग से गुणों-दोषों व राग-द्वेष आदि से मुक्त प्राकृतिक जीवन जिया जा सकता है अपितु परमात्म-चिन्तन में लीन हो, सर्वत्र व्याप्त अपने अखंड आत्म/ब्रह्म स्वरूप का अनुभव कर परस्पर सजन भाव अनुसार विचरण भी किया जा सकता है। इसके विपरीत मूल प्रकृति से च्युत/पतित होने पर विकृतियों से नहीं बचा जा सकता।

सजनों सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर होने के बावजूद हमारे साथ ऐसा न हो, इसलिए परमार्थ के प्रति हमारा उचित मार्गदर्शन करने के साथ-साथ, हमें बार-बार आत्मनिरीक्षण व आत्मसंयम द्वारा आत्मसुधार करने के लिए भी कहा जाता है। इस संदर्भ में सजनों जानो कि आत्मनिरीक्षण वह क्रिया है जिसके द्वारा हम अपने मनः दर्पण में झाँक कर, उसमें छिपे उन बुरे भावों/वृत्तियों/गलतियों/त्रुटियों/दोषों/विकृतियों/विकारों/बुराईयों को ढूँढ सकते हैं, जिन्होने हमारे अंदर असंतुलन व अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न कर हमें असीम परमानंद की प्राप्ति से वंचित रख रखा है। अतः परमपद की प्राप्ति हेतु सजनों इस क्रिया की अनिवार्यता को समझो और आत्मसंयम रख जीवन उद्धार करने में जुट जाओ। इसी परिप्रेक्ष्य में आओ सजनों सर्वप्रथम गत सप्ताहों में पढ़ाए गए सबक़ों के विषय में अपना-अपना आत्मनिरीक्षण करते हैं:-

1. क्या हम सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित जीवनदायक उच्च विचारों को ग्रहण कर जीवन की हर परिस्थिति में उन पर स्थिरता से एकरस बने रहने का पराक्रम दिखा पा रहे हैं?

2. क्या हम मूलमंत्र शब्द गुरु के रूप में सर्वत्र अभिव्यक्त अपनी ब्रह्म सत्ता का ग्रहण कर, अपने अन्दर सत्य/सात्विक धारणा का विकास करने में सक्षम हो पा रहे हैं?

3. क्या हम अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में अपनी धारणा की पवित्रता सुनिश्चित करने हेतु, सांसारिक चिंतन/बातों के कनरस का निषेध कर अपने तन-मन को निश्चल यानि स्थिर व दृढ़ रख पा रहे हैं? यदि नहीं तो जान लो कि मन मे खोट या स्वार्थपरता की स्थिति में धारणा सिद्ध नहीं हो सकती। इस हेतु मन का निग्रही (दमन) व एकाग्र (एक ओर स्थिर) होना अति आवश्यक है। अतः नियम अनुसार नाम-अक्षर की औषधि का ठीक से सेवन करो और अफुर अवस्था में आ जाओ।

4. क्या हम चित्त की वृत्तियों का निरोध करने हेतु निरंतर अभ्यास द्वारा अपने हठी और चंचल मन को एकाग्रचित्त व अनुशासित कर प्रभु के संग जोड़ने में कामयाब हो पा रहे हैं?

5. ध्यान कक्ष में इतना कुछ जानने समझने के पश्चात् भी कहीं अभी भी हमारे मन में विषय भोगों के प्रति किसी प्रकार का कोई आकर्षण या वासना तो उत्पन्न नहीं होती यानि संसार के वैभव देखकर हमारे मन में उनको प्राप्त करने की चाह/कामना या लोभ/लालसा तो पैदा नहीं हो जाती? यदि ऐसा है तो याद रखो तृष्णा के समान कोई दुःख नहीं और

त्याग के समान कोई सुख नहीं। अतः त्यागी बनो और वैरागी बनो।

6. क्या आवागमन से मुक्ति प्राप्त करने हेतु हम पूर्ण गंभीरता व सजगता से अध्यात्म विद्या/आत्मज्ञान प्राप्ति में जुट, यथार्थ रूप से अपने स्वरूप को जानने के प्रयत्न में सफल हो पा रहे हैं?

7. क्या अमर पद प्राप्त करने हेतु हम निष्कामता से सर्व एक आत्मा यानि सर्वोच्च परम सत्ता में विश्वास रख आत्मबोध कर पा रहे हैं?

8. क्या हम अपने मन, वचन, कर्म द्वारा सब कामों को सच्चाई और निष्काम भावना से करते हैं?

9. क्या अपने स्वरूप और आत्मा को सब चीज़ों से निर्लेप समझते हुए हम सब हालातों में अपने हृदय, दिमाग और शरीर को ठीक रख पाते हैं?

10. क्या हम समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुशीलन द्वारा समचित्त हो यानि अपने मन-वचन-कर्म को एक भाव में साधे रख एक महात्मा की तरह सत्यनिष्ठ व धर्मपरायण इंसान बनने में कामयाब हो पा रहे हैं?

11. क्या आत्म-कल्याण की दृष्टि के निमित्त हम निजी स्वार्थ, अपने-पराये, तेरी-मेरी के भेदभाव से ऊपर उठ, समूचे जगत को एक परिवार के समान समझते हुए, अपने हृदय में समता का भाव जाग्रत कर समरसता का विकास करने में सक्षम हो पा रहे हैं ?

सजनों इस आत्मनिरीक्षण को करने के पश्चात् आज आपको जो भी परिणाम प्राप्त हुआ हो, उस नतीजे को किसी प्रकार से भी सोच बनाकर कमज़ोर मत पड़ना क्योंकि युक्ति के प्रति अनभिज्ञ हो, नासमझी व नादानी वश ऐसा करना, अपने जीवन लक्ष्य प्राप्ति की ओर से कमज़ोर पड़ने की बात होगी। इस संदर्भ में हम तो यही कहना चाहेंगे कि अगर आपके दिल में सजन पुरुष बन, परमपद पाने की प्रबल चाहना है तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में आत्मिक ज्ञान के रूप में विदित शब्द ब्रह्म विचारों को प्रवान कर, आप स्वयमेव इस कार्य को इसी जन्म में सिद्ध कर सकते हो।

अतः सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के द्वारे पर होने के नाते अपने आप को सौभाग्यशाली समझते हुए सजनों विचार में आओ और समर्पित भाव से समभाव-समदृष्टि की युक्ति अपनाकर व उनके वचनों को धर्मसंगत अमल में लाते हुए उस परमपिता के आज्ञाकारी उत्तम सुपुत्र बन जाओ। इस संदर्भ में जानो कि यह जो युक्ति युवा-अवस्था की है, इसका महत्व बहुत भारी है। इसका फल चारों धाम का तीर्थ है, बाहर के तीर्थ नहीं। अतः इस को धारण कर गृहस्थ आश्रम ठीक निभाओ व इस शरीर को पवित्र कर, खालस सोना होकर प्रभु के साथ प्रभु हो जाओ। फिर एकता में आओ और महाराज जी के साथ मेल खावो। इस तरह संतोष, धैर्य अपना व प्रसन्नता में आ घर सतयुग बनाओ और इस मानव जीवन का भरपूर आनन्द उठाते हुए व सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चलते हुए ऐसा परोपकार कमाओ कि आपकी यश कीर्ति नित्य बनी रहे।

याद रखो इसके लिए आपको जो भी अब तक ध्यान-कक्ष की कक्षाओं में पढ़ाया-समझाया गया है उस सबकी पुनरावृत्ति कर उसे यथावत् स्मृति में बिठाना होगा। सब की जानकारी हेतु पुनरावृत्ति का अर्थ है किए हुए काम को दोहराना या दोबारा करना। यह क्रिया निर्धारित उद्देश्य की सिद्धि हेतु खुद में रही हुई कमी-पेशी/कमज़ोरी का सज्ञान ले, उसे समय रहते ही पूरा करने के लिए अति आवश्यक है। इसी के द्वारा पढ़ाई के दौरान जो जाना-समझा है, उसकी गुढ़ाई कर पाओगे यानि जो जाना-समझा है उसे निष्कामता व ध्यान से साध ब्रह्म पदवी पा जाओगे। फिर अनेकों का एक हो, जगत में नीतियों के अनुसार विचरोगे भी और नहीं भी विचरोगे यानि फिर ब्रह्म पदवी ओ पा के कर्त्ता भी आप होंगे और अकर्त्ता भी आप होंगे।

अंततः सदा याद रखना कि इस संसार में विचरते हुए आपकी पकड़ से 'ईश्वर है अपना आप' व सत्य-धर्म के रास्ते पर निष्काम भाव से बने रहने का विचार कदापि न छूटे। इस संदर्भ में हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि यदि आपने 'साडा है सजन राम, राम है कुल जहान' के अर्थ अर्थात् 'ईश्वर हमारा मित्र, प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो मानो व वैसे ही गुण अपनाओ', इस सत्य को आत्मसात् कर तद्नुरूप गुण अपनाना सुनिश्चित कर लिया तो आप अवश्यमेव जान जाओगे कि 'ओ३म', अमर है आत्मा, और आत्मा में है परमात्मा। निःसंदेह ऐसा शुभ होने पर यानि इस पर सुदृढ़ता से अटल बने रहने पर आप ब्रह्म नाल ब्रह्म हो अपने वास्तविक सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप में स्थित हो

जाओगे और परमपद प्राप्त कर त्रिकालदर्शी नाम कहोगे।

आप सब ऐसा करने में कामयाब होवो इस हेतु मानो कि परमेश्वर सदा आपके साथ है।

निवेदन

इस पुस्तक को और अधिक जीवन उपयोगी बनाने हेतु आपके सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

SATYUG DARSHAN TRUST (REGD.)

ALLEVIATING PHYSICAL, MENTAL AND SPIRITUAL SUFFERINGS OF HUMAN BEINGS.

info@satyugdarshantrust.org | www.satyugdarshantrust.org

Institutions under the aegis of Satyug Darshan Trust (Regd.)

SATYUG DARSHAN CHARITABLE DISPENSARIES & LABORATORIES
Multidiscipline dispensaries, labs & diagnostic centres spread in 15 cities
www.satyugdarshandispensaries.org

SATYUG DARSHAN VIDYALAYA
Nursery-XII, Co-Ed. English medium, residential & day boarding school. Affiliated to CBSE.
www.satyugdarshanvidyalaya.net

SATYUG DARSHAN INSTITUTE OF EDUCATION & RESEARCH
B.Ed. College for Girls. Affiliated to CRS University, Jind.
www.sdier.org

SATYUG DARSHAN INSTITUTE OF ENGINEERING & TECHNOLOGY
UG College, offering B.Tech. and BBA courses. Co-Ed., residential & day boarding facilities. Affiliated to YMCA University, Faridabad.
www.satyug.edu.in

DHYAN KAKSH
World's first School of Equanimity & Even-sightedness. It is open to all age and gender.
www.schoolofequanimity.com

SATYUG DARSHAN SANGEET KALA KENDRA
Imparting true teachings of music and dance, open to all age and gender. Present in 15 cities. Affiliated to Prayag Sangeet Samiti, Allahabad.
www.satyugdarshansangeet.org

Initiatives of Satyug Darshan Trust (Regd.) on Humanity and Ethics

INTERNATIONAL EQUANIMITY OLYMPIAD
www.equanimityolympiad.in

HUMANITY DEVELOPMENT CLUB
www.awakehumanity.org